गांधी-साहित्य—९

आत्म-संयम

ब्रह्मचर्यके लाभ तथा भोगकी हानियों पर
महात्मा गांधीके लेखोंका संग्रह

●

१९६०

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशककी ओरसे

इस पुस्तकमें गांधीजीके उन लेखोंका संग्रह किया गया है, जिनमें उन्होंने ब्रह्मचर्यके लाभ और भोगकी हानियोंपर प्रकाश डाला है। इसमें ३ पुस्तकें सम्मिलित हैं, जो पाठकोंके लिए उपयोगिताकी दृष्टिसे अलग-अलग भी छापी गई हैं: १, अनीतिकी राहपर २, ब्रह्मचर्य—१, ३. ब्रह्मचर्य—२। सन् १९३५ तकके लेख पहलीमें आ गये हैं, १९३६ से १९३८ तकके दूसरीमें और १९३८के बादसे अंतिम समय तकके तीसरीमें। इस प्रकार इस समूची पुस्तकमें ब्रह्मचर्य-विषयक गांधीजीके लगभग सभी लेख आ गये हैं।

विषय और सामग्रीके विचारसे पुस्तक स्थायी महत्त्वकी है। आशा है, पाठक इसके अध्ययन तथा तदनुसार आचरणसे लाभ उठावेंगे।

—मंत्री

विषय-सूची

आत्म-संयम

अनीतिकी राहपर

ब्रह्मचर्य—१.

ब्रह्मचर्य—२.

: १ :

अनीतिकी राहपर

अनीतिकी राहपर

: १ :

नीतिनाशकी ओर

कृपालु मित्र मुझे भारतीय पत्रोंके ऐसे लेखोंकी कतरनें भेजा करते हैं जिनमें गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोंसे काम लेकर सन्तति-नियमनके विचारका समर्थन होता है। युवकोंके साथ उनके वैयक्तिक जीवनके विषयमें मेरा पत्र-व्यवहार दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। मुझे पत्र लिखने-वाले भाई जो सवाल उठाते हैं उनके बहुत ही छोटे भागकी चर्चा मैं इन पृष्ठोंमें कर सकता हूं। अमरीकावासी मित्र भी इस विषयके लेख, पुस्तकें मेरे पास भेजते हैं। और कुछ तो गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोंके उपयोगका विरोध करनेके कारण मुझपर खफा भी हैं। उन्हें यह देखकर दुःख होता है कि अन्य अनेक विषयोंमें तो मैं बहुत आगे बढ़ा हुआ सुधारक हूं, पर संतति-नियमनके विषयमें मेरे विचार मध्य-युगके हैं। मैं यह भी देखता हूं कि गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोंसे काम लेनेके हिमायतियोंमें कुछ ऐसे स्त्री-पुरुष भी हैं जिनकी गणना दुनियाके बड़े-से-बड़े विचारशील जनोंमें है।

अतः मैंने सोचा कि कृत्रिम साधनोंसे काम लेनेके पक्षमें कोई बहुत ही पक्की दलील होनी चाहिए, और यह भी सोचा कि अबतक इस विषयपर जो-कुछ मैंने कहा है उससे मुझे कुछ अधिक कहना चाहिए। मैं इस प्रश्नपर और इस विषयका साहित्य पढ़नेके बारेमें विचार कर ही रहा था कि 'नीतिनाशकी ओर' ('टुवर्ड्स मॉरल बैंकरप्सी') नामकी पुस्तक मुझे पढ़ने-को दी गई। इस पुस्तकमें इसी विषयका विवेचन है और मेरी समझसे

वह शुद्ध शास्त्रीय रीतिसे किया गया है। मूल पुस्तक फ्रांसीसी भाषामें श्रीपाल ब्यूरोने लिखी है, जिसके नामका शाब्दिक अर्थ 'नैतिक अराजकता' होता है। अंग्रेजी उलथा कान्स्टेबल एंड कंपनीने प्रकाशित किया है और उसकी प्रस्तावना डाक्टर मेरी स्कारली सी० बी० ई०, एम० डी० ने लिखी है। उसमें ५३८ पृष्ठ और १५ अध्याय हैं।

पुस्तक पढ़ जाने के बाद मैंने सोचा कि लेखकके विचारोंका सारांश करनेसे पहले विषयके प्रति न्याय करनेकी खातिर कृत्रिम साधनोंसे काम लेनेके पक्षका पोषणकरनेवाली प्रमाणभूत पुस्तकें मुझे अवश्य पढ़ लेनी चाहिए। अतः मैंने भारतसेवक-समितिसे अनुरोध किया कि इस विषयका जो साहित्य उसके पास हो वह मुझे थोड़े दिनोंके लिए मंगनी देनेकी कृपा करें। समिति ने कृपाकर अपने संग्रहकी कुछ पुस्तकें भेज दीं। काका कालेलकरने, जो इस विषयका अध्ययन कर रहे हैं, हैवलॉक एलिसके ग्रंथके इस विषयका विवेचन करनेवाले खंड दिये, और एक मित्रने 'प्रैक्टिशनर' पत्रका विशेषांक भेजा जिसमें कुछ सुप्रसिद्ध चिकित्सकोंको बहुमूल्य सम्मतियां संगृहीत हैं।

इस साहित्य-संग्रहका उद्देश्य यह था कि श्री ब्यूरोके निष्कर्षोंकी परख, जहां तक एक चिकित्साशास्त्रका ज्ञान न रखनेवाला साधारण मनुष्य कर सकता है, कर लें। यह बात अक्सर देखनेमें आती है कि जब शास्त्र-विशेषके पंडित किसी प्रश्नपर बहस करते हैं तब भी उसके दो पक्ष होते हैं और दोनोंके पोषणमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है। अतः मैं चाहता था कि ब्यूरोकी पुस्तक पाठकोंके सामने रखनेके पहले गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोंके समर्थकोंका दृष्टिकोण समझ लूं। अब मेरी पक्की राय है कि कम-से-कम हिन्दुस्तानमें तो कृत्रिम साधनोंके उपयोगकी आवश्यकता सिद्ध नहीं की जा सकती। जो लोग भारतमें उनके उपयोगका समर्थन करते हैं वे या तो यहांकी हालत नहीं जानते या जान-बूझकर उसकी ओरसे आंखें मूंद लेते हैं। पर अगर यह बात साबित कर दी जाय कि उपदिष्ट उपाय पच्छिममें भी हानिकर सिद्ध हो रहे हैं तो भारतकी विशेष परिस्थितिकी छान-बीन करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती।

अतः अब हम यह देखें कि श्री ब्यूरो कहते क्या हैं। उन्होंने केवल फ्रांसकी स्थिति पर विचार किया है। पर फ्रांस कोई छोटी चीज नहीं। दुनियाके जो देश सबसे आगे बढ़े हुए हैं उनमें उसकी गणना है। ऊपर बताए हुए साधन जब वहां विफल हो गये तब अन्यत्र उनके सफल होनेकी आशा नहीं रखी जा सकती।

विफलताके अर्थके विषयमें मतभेद हो सकता है। अतः यहां मैं किस अर्थमें उसका व्यवहार कर रहा हूं यह मुझे बता देना चाहिए। अगर हम यह दिखा सकें कि इन साधनोंके व्यवहारसे नीतिके बंधन ढीले हुए हैं, व्यभिचार बढ़ा है और जहां केवल स्वास्थ्य-रक्षा तथा आर्थिक दृष्टिसे कुटुम्बका अति विस्तार न होने देनेके उद्देश्यसे स्त्री-पुरुषोंको उनसे काम लेना चाहिए था, वहां मुख्यतः भोग-वासनाकी तृप्तिके लिए उनका व्यवहार हो रहा है, तो मानना होगा कि उनका विफल होना साबित कर दिया गया। यही मध्यमा वृत्ति है। चरम नैतिक दृष्टि तो प्रत्येक परिस्थितिमें गर्भ-निरोधके साधनोंके उपयोगका निषेध करती है। उस पक्षकी दलील तो यह है कि स्त्री-पुरुषका संयोग तभी जायज है जब उसका प्रयोजन सन्तानोत्पादन हो, उस हेतु के बिना उनका काम-वासना की तृप्ति करना सर्वथा अनावश्यक है; वैसे ही जैसे शरीर-रक्षाको छोड़कर और किसी उद्देश्यसे उनका भोजन करना आवश्यक नहीं होता। एक तीसरा पक्ष भी है। यह ऐसे लोगोंका वर्ग है जिनका कहना है कि दुनियामें नीति नामकी कोई चीज है ही नहीं, और है तो उसका अर्थ विषय-वासना का संयम नहीं बल्कि हर तरहकी भोग-वासनाकी पूर्ण तृप्ति है; हां, इतना ध्यान रहे कि उससे हमारा स्वास्थ्य इतना न बिगड़ जाय कि हम वासनाओंकी तृप्तिके, जो हमारे जीवनका उद्देश्य है, काबिल ही न रह जायं। मैं समझता हूं कि श्री ब्यूरोने ऐसे प्रतिवादियोंके लिए अपनी पुस्तक नहीं लिखी है। कारण यह कि उन्होंने उसकी समाप्ति टाममानके इस वचनसे की है—

"भविष्यका मैदान उन्हीं जातियोंके हाथ है जो सदाचारिणी हैं।"

२ : अविवाहितोंमें नीति-भ्रष्टता

अपनी पुस्तकके पहले भागमें श्री ब्यूरोने ऐसे तथ्य इकट्ठे किये हैं जिन्हें पढ़कर चित्तको अतिशय खेद होता है। उनसे प्रकट होता है कि फ्रांसमें कैसे विशाल संघठन खड़े हो गये हैं जिनका काम केवल मनुष्यकी अधम वासनाओंकी तृप्तिके साधन जुटा देना है। गर्भ-निरोध के कृत्रिम उपायोंके समर्थकोंका सबसे बड़ा दावा यह है कि उनके इस्तेमालसे गर्भपात-का पाप बंद हो जायगा। पर यह भी टिक नहीं सकता। श्री ब्यूरो कहते हैं--"फ्रांसमें इधर २५ बरससे गर्भ-निरोधके उपायोंका विशेष रूपसे प्रचार रहा है। पर अपराधरूप गर्भपातोंकी संख्या कम न हुई।" श्री ब्यूरोकी रायमें उनकी तादाद उलटे और बढ़ी है। उनका अंदाजा है कि वहां हर साल २॥। से ३। लाख तक गर्भपात होते हैं। कुछ बरस पहले लोकमत उनके समाचार सुनकर कांप उठता था, अब यह बात भी नहीं रही।

श्री ब्यूरो लिखते हैं—"गर्भपातके पीछे-पीछे बाल-हत्या, कुल-कुटुम्बके भीतर व्यभिचार और प्रकृति-विरुद्ध पापोंकी पांत पहुंचती है। बाल-हत्याके बारेमें तो इतना ही कहना है कि अविवाहिता माताओंके लिए सब तरहके सुभीते कर दिये गए हैं, और गर्भ-निरोधके साधनोंका उपयोग और गर्भपात बढ़ गया है। फिर भी यह पाप घटनेके बदले और बढ़ा ही है। सभ्य प्रतिष्ठित कहलानेवाले लोग अब उसे वैसी नफरतकी निगाहसे भी नहीं देखते, और मुकदमोंमें जूरी आम तौरसे अभियुक्तको 'निरपराध' ही ठहराया करते हैं।"

गंदे, अश्लील साहित्यकी वृद्धिपर श्री ब्यूरोने एक पूरा अध्याय लिख डाला है। उसकी व्याख्या वह इस प्रकार करते हैं—"साहित्य, नाटक और चलचित्र मनुष्यके थके मनको विश्रांति देने और फिर तरो-ताजा कर देनेके जो साधन उसे दे रहे हैं उनका काम-वासनाको जगाने, भड़काने या दूसरे गन्दे उद्देश्यकी पूर्तिके लिए दुरुपयोग करना।" वह कहते हैं— "इस साहित्यकी हरएक शाखाकी जितनी खपत हो रही है उसका कुछ अंदाजा इस बातसे किया जा सकता है कि इस धधेको चलानेवाले कैसे चतुर-

चूड़ामणि हैं, उनका संघठन कितना बढ़िया हैं, कितनी विशाल पूंजी इस कारबारमें लगा दी गई है और उसे चलानेके तरीके सर्वांगपूर्णतामें कैसे बेजोड़ हैं।" "इस साहित्यका मनुष्योंके मनपर इतना जबर्दस्त और ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ा है कि व्यक्तिका सारा मानस जीवन उसके रंगसे रंग गया है, और एक प्रकारके गौण काम-जीवनका निर्माण हो गया है जिसका अस्तित्व सर्वांशमें उसकी कल्पनामें ही होता है।"

अनन्तर श्री ब्यूरो श्री रूइसांका यह करुणा-जनक पैराग्राफ उद्धृत करते हैं—

"यह सारा अश्लील और कामज क्रूरतासे भरा साहित्य अगणित मनुष्योंके लिए अति प्रलोभनकी वस्तु बन रहा है, और इस साहित्य-की जबर्दस्त खपत असंदिग्धरूपमें बताती है कि कल्पनामें दूसरे काम-जीवनका निर्माण कर लेनेवालोंकी संख्या लाखों तक पहुंचती है। जो लोग इसकी बदौलत पागलखानोंमें पहुंच गये है उनका तो जिक्र ही क्या; खासकर आजके-से समयमें जब अखबारों और पुस्तकोंका दुरुपयोग सब ओर उन अन्तःकरणोंकी सृष्टि कर रहे हैं, जिन्हें डब्लू जेम्स 'अन्तर्जगत्की अनेकता' कहते हैं और जिसमें विचरण कर हर आदमी वर्तमान जीवनके कर्तव्योंको भूल सकता है।"

याद रहे, ये सारे घातक परिणाम एक ही मूलगत भ्रमके कुफल हैं। वह यह है कि विषय-भोग, सन्तानकी इच्छाके बिना भी मानव-प्रकृतिके लिए आवश्यक है और उसके बिना पुरुष हो या स्त्री किसीका भी पूर्ण विकास नहीं हो सकता। ज्यों ही यह भ्रम दिमाग में घुसा और मनुष्य जिसे बुराई समझता था उसे भलाईके रूपमें देखने लगा कि फिर वह विषय-वासनाको जगाने और उसकी तृप्तिमें सहायक होनेके नित नये उपाय ढूंढ़ने लगता है।

इसके बाद श्री ब्यूरोने प्रमाण देकर दिखाया है कि आजके दैनिकपत्र, मासिक परचे, उपन्यास, चित्र और नाटक-सिनेमा किस तरह इस हीन रुचिको दिन-दिन अधिकाधिक भड़का और उसकी तृप्ति की सामग्री जुटा रहे हैं।

३ : विवाहितोंमें नीति-भ्रष्टता

अबतक तो अविवाहित जनोंके नीति-नाशकी कथा कही गई है। इसके बाद श्री ब्यूरो यह दिखाते हैं कि विवाहित जनोंकी नीति-भ्रष्टता किस हद तक पहुंच रही है। वह कहते हैं—"अमीर, मध्यवित्त और कृषक वर्गोंमें बहुसंख्यक विवाह बड़प्पन दिखाने या धन-संपत्ति पानेके लिए किये जाते हैं।" बहुतसे ब्याह अच्छा ओहदा पाने, दो जायदादों, खासकर जमींदारियोंके मालिक बनने, नाजायज सम्बन्धको जायज बनाने, अवैध सन्तानको वैध बनवाने, बुढ़ापे और गठियेकी बीमारीके समय कोई मनसे सेवा-टहल करनेवाला हो इसका उपाय करने और सेनामें अनिवार्य भरतीके समय कौन-सी छावनी पसन्द करें यह तै कर सकनेके लिए भी किये जाते हैं। कुछ ब्याह व्यभिचारके जीवनसे ऊबकर दूसरे प्रकारका थोड़ा संयमवाला भोग-जीवन प्राप्त करने के उद्देश्यसे भी किये जाते हैं।

इसके बाद श्री ब्यूरोने उदाहरण और आंकड़े देकर सिद्ध किया है कि इन ब्याहोंसे व्यभिचार घटनेके बदले वस्तुतः और बढ़ता है। पत्नीके उन तथोक्त वैज्ञानिक साधनोंने, जो संयोग में बाधक न होते हुए उसके फलसे बचनेके लिए बनाये गये हैं, इस पतनको जबर्दस्त मदद पहुंचाई है। पुस्तकके उस दुःखद भागको तो मैं छोड़ देता हूं जिसमें व्यभिचार-वृद्धिका विवरण और अदालतकी डिगरीसे होनेवाले पतिपत्नी-बिलगाव और तलाकोंके चौंकानेवाले आँकड़े दिए गये हैं। इन बिलगावों और तलाकोंकी संख्या पिछले बीस बरसके अंदर दूनीसे अधिक हो गई है। "स्त्री-पुरुष दोनोंके लिए समान नैतिक मानदंड होना चाहिए" इस सिद्धांतके नामपर स्त्रीको जो भोग-वासनाकी मनमानी तृप्तिकी स्वतंत्रता दे दी गई है उसकी भी मैं चलती चर्चा भर कर सकता हूं। गर्भाधान न होने देनेकी क्रियाओं और गर्भपात करानेके उपायोंके पूर्णता प्राप्त कर लेनेसे स्त्री-पुरुष दोनोंको नैतिक बंधनोंसे पूर्ण मुक्ति मिल गई है। ऐसी दशामें अगर खुद ब्याहका ही मजाक उड़ाया जा रहा है तो इससे किसीको अचरज-अचंभा न होना चाहिए। ब्यूरोने एक लोकप्रिय लेखकके कुछ वाक्य उद्धृत किये हैं। उनका आशय

यह है—"मेरे विचारसे ब्याह उन बड़े-से-बड़े जंगली रिवाजोंमेंसे एक है जिन्हें आदमीका दिमाग अबतक सोच सका है। मुझे इस बातमें तनिक शक-शुबहा नहीं कि मानव-समाज अगर न्याय और विवेककी ओर कुछ भी बढ़ा तो यह प्रथा दफना दी जायगी।....पर पुरुष इतना मट्ठर और स्त्री इतनी कायर है कि जो कानून उनका शासन कर रहा है उससे अच्छे ऊंचे कानूनकी मांग करनेकी हिम्मत वे नहीं कर सकते।"

श्री ब्यूरोने जिन क्रियाओंकी चर्चा की हैं उनके नतीजों और जिन सिद्धांतोसे उन क्रियाओंका समर्थन किया जाता है उनकी उन्होंने बड़ी बारीकीसे समीक्षा की है। वह कहते हैं—"यह नीति-बंधन तोड़ फेंकनेका आंदोलन हमें नई भवितव्यताओंकी ओर खींचे लिये जा रहा है। पर वे हैं क्या ? जो भविष्य हमारे आगे आ रहा है वह क्या प्रगति, प्रकाशन-सौन्दर्य और उत्तरोत्तर बढ़नेवाले अध्यात्म-भावका होगा ? या पीछे लौटने, अंधकार, कुरूपता और पशुभावका होगा, जिसकी भूख दिन-दिन बढ़ती जा रही है ? यह नैतिक स्वच्छंदता, जिसकी स्थापना की गई है, क्या दकियानूसी नियमोंके विरुद्ध किये जानेवाले उन फलजनक विद्रोहों, हितकर विप्लवोंमेंसे है जिन्हें आनेवाली पीढ़ियां कृतज्ञताके साथ याद किया करती हैं, इसलिए, कि उनकी प्रगति उनके उत्थानके लिए विशेष कालोंमें अनिवार्य हो जाती है ? अथवा वह मानव-मनकी वही आदिम वृत्ति है, जिसकी विरासत उसे अपने आदिपुरुष बाबा आदम[1] से मिली है—जो उन नियमोंके विरुद्ध विद्रोह किया करती है जिनकी कठोरता ही उसे इस योग्य बनाती है कि वह अपनी पाशव प्रेरणाओंके हमलों के सामने टिक सके ?

---

[1]आदम और होवाको ईश्वरने अदनके बागमें रखा और मालीका काम सौंपा था। उन्हें बगीचेके सब पेड़ोंके फल खानेकी इजाजत थी; पर एक ज्ञान-वृक्षका फल खानेकी मनाही थी। आदमने इस निषेधका उल्लंघन कर ज्ञान-वृक्षका फल चख लिया और इस पापके दंडस्वरूप अदनके उद्यानसे निकाल दिये गए और देवत्व तथा अमृतत्वसे वंचित होकर मृत्युधर्मा हुए।—अनु०

समाजकी रक्षा और जीवनके लिए आवश्यक नियम-बंधनके विरुद्ध यह विनाशकारी विद्रोह तो नहीं है ?" इसके बाद वह यह साबित करनेके लिए जबर्दस्त सबूत पेश करते हैं कि इस विद्रोहका फल हर लिहाजसे सत्यानासी हुआ है। वह खुद जीवनकी ही जड़ काट रहा है।

विवाहित स्त्री-पुरुषोंका अपनी वासनाओंको अंकुशमें रखकर जरूरतसे ज्यादा बच्चे न पैदा करनेका यथासंभव यत्न करना एक बात है और मनमाना भोग करते हुए उसके फलसे बचनेके उपायोंकी मदद लेकर सन्तति-नियमन करना बिलकुल दूसरी बात है। पहली सूरतमें मनुष्यको सभी प्रकारसे लाभ है और दूसरीमें हानिके सिवा और कुछ हाथ नहीं लगेगा। श्री ब्यूरोने आंकड़े और नक्शे देकर दिखाया है कि काम-वासनाकी मनमानी तृप्ति करते हुए भी उसके स्वाभाविक फलोंसे बचनेकी गरजसे गर्भ-निरोधक साधनोंका उपयोग दिन-दिन बढ़ रहा है। उसका फल यह हुआ है कि अकेले पेरिसमें ही नहीं, समूचे फ्रांसमें जन्म-संख्या मृत्यु-संख्याकी तुलनामें बहुत घट गई है। फ्रांस जिन ८७ प्रदेशोंमें बंटा हुआ है उनमेंसे ६८में जन्मकी संख्या मृत्युकी संख्यासे नीची है। लोते-गारोंमें १६२ मौतोंके मुकाबलेमें १०० जन्म होते हैं। इसके बाद ताने-गारोंका नंबर है। वहां १५६ मौतोंपर १०० जन्मोंका औसत रहता है। जिन १९ प्रदेशोंमें जन्म-संख्या मृत्यु-संख्या-से ऊंची है उनमेंसे भी कईमें तो यह अंतर महज नाम का है। केवल दसही रकबे ऐसे हैं जहां मृत्यु-संख्यासे जन्म-संख्याकी अधिकता कहने लायक हो। मोरव्यां और पास-दे-कैलेमें मृत्यु-संख्या सबसे कम है—१०० जन्म पीछे ७२। श्री ब्यूरो हमें बताते हैं कि आबादी घटनेका यह क्रम, जिसे वह 'मांगी हुई मौत' कहते हैं, अभी तक चल ही रहा है।

अनन्तर श्री ब्यूरो फ्रांसके सूबोंकी हालतकी तफ़सीलसे जांच-पड़ताल करते हैं और १९१४ में नारमंडीके बारेमें लिखी हुई श्री जीदकी पुस्तकसे नीचेलिखा पैराग्राफ उद्धृत करते हैं—"५० बरसके अंदर नारमंडीकी आबादी ३ लाखसे अधिक घट चुकी है। यानी उसकी जन-संख्यामें उतनेकी कमी हो चुकी जितनी समूचे ओर्न जिलेकी आबादी है। हर २० सालमें वह एक जिलेकी जितनी आबादी गंवा देता है और चूंकि उसमें कुल पांच

जिले हैं इसलिए सौ सालमें ही उसके हरे-भरे मैदान फ्रेंच जनोंसे बिलकुल खाली हो जायंगे। 'फ्रेंच जन' शब्द का व्यवहार मैं जान-बूझकर कर रहा हूं, क्योंकि निश्चय ही दूसरे लोग आकर उनपर कब्जा जमा लेंगे। और ऐसा न हुआ तो यह बड़े दुःखकी बात होगी। जर्मन आस-पासकी खानोंको खोद रहे हैं और अभी कल ही पहली बार चीनी मजदूरोंका अग्रगामी दस्ता उस जगह उतरा है जहांसे विजयी विलियम[1] का जहाज इंगलैंड-विजयके लिए रवाना हुआ था।" इस पैराग्राफ़की आलोचनामें श्री ब्यूरो कहते हैं—"अन्य अनेक प्रांत हैं जिनकी दशा इससे कुछ अच्छी नहीं।"

इसके बाद श्री ब्यूरो यह लिखते हैं कि जनसंख्याके इस ह्राससे राष्ट्रकी शक्ति भी घटती जा रही है। उनका विश्वास है, फ्रांससे जो दूसरे देशोमें जाकर लोगों का बसना बंद हो गया है उसका कारण भी यही है। फ्रांस के औपनिवेशिक साम्राज्य, व्यापार, फ्रेंच भाषा और संस्कृति इन सबके ह्रासका कारण भी वह इसीको मानते हैं।"

अनन्तर वह पूछते हैं—"क्या संयत सहवासके पुराने रास्तेको छोड़ देनेवाले फ्रेंचजन सुख, समृद्धि, स्वास्थ्य और मनःसंस्कारमें आज अधिक आगे हैं?" इस प्रश्न का उत्तर वह यों देते हैं—"स्वास्थ्यकी उन्नतिके विषयमें तो दो-चार शब्द कह देना ही काफी होगा। हम कितना ही चाहते हों कि सब एतराजोंका एक सिरेसे जवाब दे दें, इस दलीलपर संजीदगीके साथ विचार करना कठिन है कि भोगकी घूंटसे किसीका शरीर अधिक सबल और स्वास्थ्य अधिक अच्छा हो सकता है। हर तरफसे यही रोना सुनाई दे रहा है कि नौजवान और प्रौढ़ सभी पहलेसे निर्बल हो रहे हैं। (प्रथम) महायुद्धसे पहले सैनिक अधिकारियोंको रंगरूटों की शारीरिक योग्यताका मानदंड बार-बार नीचा करना पड़ता था, और सारे देशमें लोगोंकी कष्ट-सहन की शक्ति काफी घट गई है। अवश्य यह कहना अन्याय होगा कि केवल संयमका अभाव ही इस सारी गिरावटका कारण है।

---

[1] नारमंडीका ड्यूक—१०६६ से १०८७ ई० तक इंग्लैंडपर राज्य किया। (जन्म १०२७, मृत्यु १०८७ ई०)

पर वह और उसके साथ-साथ शराबखोरी, और घर-द्वारकी गंदगी आदि मिलकर इसका बहुत बड़ा कारण बन रहे हैं। और हम जरा बारीक निगाहसे काम लें तो सहज ही देख सकते हैं कि असंयम और उसके पोषक मनोभाव इन दूसरी बुराइयोंके सबसे बड़े सहायक हैं। ...जननेन्द्रियके रोगों— गरमी, सूजाक आदिकी भयानक बाढ़ने जन-स्वास्थ्यकी जो हानि की है उसका तो अंदाजा ही नहीं लगाया जा सकता।"

श्री ब्यूरो नव्य मालथ्यूसियन सिद्धांत—कृत्रिम साधनोंसे गर्भ-निरोधके समर्थकोंकी इस दलीलको भी अस्वीकार करते हैं कि जन्म-संख्या अथवा सन्तानोत्पादनका नियमन करनेवाले समाजमें व्यक्तियोंका धन उसके नियमनकी मात्राके हिसाबसे बढ़ता जाता है। अपने उत्तरकी पुष्टि वह फ्रांसकी स्थितिकी जर्मनीके साथ तुलना करके देते हैं। जर्मनीमें बच्चोंकी पैदाइश बढ़ रही है, और साथ-साथ राष्ट्रकी समृद्धि भी दिन-दिन बढ़ती जा रही है। पर फ्रांसमें जन्म-संख्याके साथ-साथ देशकी धन-सम्पत्ति भी बराबर घटती जा रही है। उनका कहना है कि जर्मनीके व्यापारका आश्चर्य-जनक वृद्धि-विस्तार भी इसलिए नहीं हो रहा है कि वहां श्रमिक वर्गका और देशोंकी अपेक्षा अधिक शोषण हो रहा है। वह ऐसिग्नोलका यह कथन प्रमाणमें पेश करते हैं—"जर्मनीमें जब केवल ४ करोड़ १० लाख आदमी बसते थे तब सैकड़ों आदमी भूखों मर गये, पर जबसे उसकी आबादी बढ़कर ६ करोड़ ८० लाख हो गई है तबसे वह दिन-दिन अधिक धनवान होता जा रहा है।" इसके बाद वह कहते हैं कि "ये लोग (जर्मन) जो कोई योगी-वैरागी नहीं हैं, साल-ब-साल सेविंग बैंकमें इतनी रकमें जमा करनेमें समर्थ हुए हैं कि १९११ ई० में उनका जोड़ २२ अरब फ्रांक (फ्रांसका सिक्का) हो गया था। १८९५ में उनका कुल ८ अरब ही उक्त खातेमें जमा थे। इसके मानी यह हुए कि उन्होंने हर साल ८५ करोड़ अधिक बचाए।"

जर्मनीकी कला-शिल्प-संबंधिनी उन्नतिका विवरण देनेके बाद श्री ब्यूरोने उसकी सामान्य संस्कृतिके विषयमें जो पैराग्राफ लिखा है वह बड़ी दिलचस्पीके साथ पढ़ा जायगा। उसका आशय यह है—

"समाजशास्त्रकी गहराईमें उतरे बिना यह बात निश्शंक होकर कही

जा सकती है—इसलिए कि वह बिलकुल स्पष्ट है—कि जर्मन मजदूर अगर अधिक संस्कृत न होते, फोरमैन अधिक पढ़े-लिखे न होते, वहां पूर्ण शिक्षाप्राप्त इंजीनियर उपलब्ध न होते, तो शिल्प-कलाकी इतनी उन्नति वहां कदापि न हुई होती । . जर्मनीके उद्योग-धंधे सिखानेवाले विद्यालय तीन तरहके हैं—१. पेशे (डाक्टरी आदि) सिखानेवाले, जिनकी संख्या ५०० से ऊपर और जिनमें शिक्षा प्राप्त करनेवालोंकी संख्या ७० हजार है; २. शिल्प-कलाकी शिक्षा देनेवाले, जिनकी संख्या और बड़ी है और जिनमेंसे कुछमें १ हजारसे अधिक विद्यार्थी हैं; ३. कालिज, जिनमें ऊंचे दर्जेकी शिक्षा दी जाती है और जिनकी शिष्य-संख्या १५ हजार है । ये कालिज विद्यार्थियोंकी तरह डाक्टर (आचार्य) की स्पृहणीय उपाधि प्रदान करते हैं।...३६५ विद्यालय वाणिज्य-व्यवसायकी शिक्षा देते हैं, जिनमें कुल ३१ हजार विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं । खेती-वारीकी शिक्षाका प्रबंध तो अनगिनत विद्यालयोंमें है और यह विद्या सीखनेवालोंकी संख्या ६० हजारसे ऊपर है। विविध धनोत्पादक धंधोंकी शिक्षा पानेवाले इन ४ लाख विद्यार्थियों-के सामने हमारे व्यवसायिक विद्यालयोंके कुल ३५ हजार विद्यार्थियोंकी क्या बिसात है। और जब हमारे १७ लाख ७० हजार जन, जिनमेंसे ७,७६,७६८ अठारह सालसे कमके हैं, खेतीसे ही जीविका चला रहे हैं तब हमारे कृषि-विद्यालयोंमें कुल जमा ३२५५ ही विद्यार्थी क्यों दिखाई देते हैं ?"

श्री ब्यूरो यह स्वीकार करते हैं कि जर्मनीकी यह सारी आश्चर्य-जनक उन्नति अकेले मृत्यु-संख्यासे जन्म-संख्याके अधिक होनेका ही फल नहीं है । पर कहते हैं, और ठीक कहते हैं, कि और अनुकूलताओंके साथ-साथ मरनेवालोंसे जन्म लेनेवालोंकी तादाद अधिक होना भी राष्ट्रके बढ़ने-पनपनेके लिए लाजिमी होता है । वस्तुतः वह जिस बातको साबित करना चाहते है वह यह है कि आबादीका बढ़ना देशके समृद्धिलाभ और नैतिक प्रगतिका विरोधी नहीं है । जहांतक जन्म-संख्याका सवाल है, हिन्दुस्तानमें हमारी स्थिति फ्रांसकी जैसी नहीं है । पर यह कह सकते हैं कि यह जन्मकी अधिकता हमारे यहां राष्ट्रकी बाढ़में सहायक नहीं हैं, जैसा कि जर्मनीमें है। पर श्री ब्यूरोके तथ्यों, अंकों और निष्कर्षोंकी दृष्टिसे भारतकी परि-

स्थिति पर हमें अलग अध्यायमें विचार करना होगा। इसलिए यहां इस विषयकी चर्चा अकर्तव्य है।

जर्मनीकी परिस्थितिकी, जहां मृत्युसे जन्मकी संख्या बढ़ी हुई है, समीक्षा करनेके बाद श्री ब्यूरो कहते हैं—"क्या हमें यह मालूम नहीं है कि राष्ट्रीय संपत्तिमें फ्रांसका स्थान दुनियाके देशोंमें चौथा है और तीसरे नंबरवाले देशसे बहुत पीछे? फ्रांसने वाणिज्य-व्यवसायमें जो पूंजी लगा रखी है उससे उसे सालाना २५ अरब फ्रांककी आमदनी होती है, जर्मनीको ५० अरबकी होती है।...हमारी जमीनकी मालियत ३५ बरस के अन्दर—१८७९ से १९१४ के बीच—४० अरब फ्रांक घट गई—९२ अरबसे ५२ अरबकी हो गई। देशके सभी जिलोमें खेती-किसानीका धंधा करनेवालोंकी कमी है और कुछ जिलोंकी दशा तो यह है कि जहां देखो वहां बूढ़े ही-बूढ़े दिखाई देते हैं।" वह और कहते हैं—"नैतिक उच्छृंखलता और व्यवस्थित प्रयत्नसे प्राप्त वंध्यत्वाका अर्थ यह होता है कि समाजकी स्वाभाविक शक्तियां क्षीण हो जायं और सामाजिक जीवनमें बूढ़ोंका पक्का प्राधान्य स्थापित हो जाय।......फ्रांसमें हजार आदमी पीछे केवल १७० बच्चोंका औसत आता है, जब कि जर्मनीमें वह २२० और इग्लैंडमें २१० है। ...बूढ़ोंकी संख्याका अनुपात जितना होना चाहिए उससे अधिक है, और दूसरे लोग, जिन्होंने नीति-रहित जीवन और प्रयत्न-प्राप्त वध्यात्वके फलस्वरूप जवानीमें ही बुढ़ापेको बुला लिया है, गतबल राष्ट्रके सारे वृद्धजनोचित कायरपनमें हिस्सेदार हो रहे हैं।

इसके बाद श्री ब्यूरो कहते हैं—"हम जानते हैं कि फ्रांसकी जनताका ७०–८० प्रतिशत भाग अपने शासकोंकी इस 'घरेलू बात, (ढीली-ढाली नीति) की ओरसे उदासीन है; क्योंकि किसीकी खानगी जिन्दगीके बारेमें पूछ-ताछ करना ठीक नहीं समझा जाता।" और श्री लियो पोल्डमोनोकी निम्नलिखित उक्तिको बड़े खेदके साथ उद्धृत करते हैं—

"निन्दित बुराइयोंके निष्कासनके लिए युद्ध करना और उनसे पीड़ित जनोंका उद्धार करना प्रशंसनीय कार्य है। पर उन लोगोंका क्या उपाय है जिनकी भीरुता यह नहीं जान पाई है कि प्रलोभनोंसे अपनी अन्तरात्मा,

अपनी विवेकवृत्तिकी रक्षा किस तरह करनी चाहिए; जिनका साहस एक प्यार या रूठनेकी एक भावभंगीके सामने घुटने टेक देता है;......जो लज्जाको तिलांजलि देकर, बल्कि शायद अपने इस कारनामेपर गर्व करते हुए, उस प्रतिज्ञाको भंग करते हैं जो उन्होंने अपनी युवा-कालकी जीवन-संगिनीके साथ बड़े उल्लाससे और विधि-विधानके साथ की थी; जो अपनी अति-रंजित और स्वार्थमयी अहन्ताके अत्याचारसे अपने कुटुम्बियोंको त्रस्त किये रहते हैं, ऐसे आदमी दूसरोंका उद्धार किस तरह कर सकते हैं?

श्री ब्यूरो अपने कथनका उपसंहार यों करते हैं—

"इस प्रकार हम चाहे जिधर निगाह डालें, हम सदा यही देखते हैं कि हमारे नीति-सदाचारके बन्धन तोड़ देनेका फल व्यक्ति, कुटुम्ब और समाज सबके लिए बहुत बुरा हुआ है, उससे हमारी इतनी हानि हुई है कि वह सचमुच अवर्णनीय है। हमारे युवाजनोंका कामुक आचरण, वेश्या-वृत्ति, गन्दी पुस्तकों, चित्रोंके प्रचार और पैसे, बड़प्पन या भोग-विलासके लिए ब्याह करना, व्यभिचार और तफाक, अपनेसे बुलाया हुआ बांझपन और गर्भपात—इन सबने मिलकर राष्ट्रका तेजबल नष्ट कर दिया और उसकी बाढ़ मार दी है। व्यक्तिमें शक्ति-संचयकी योग्यता नहीं रह गई और जो बच्चे पैदा हो रहे हैं वे संख्यामें कम होनेके साथ-साथ शारीरिक एवं मानसिक शक्तिमें भी पिछली पीढ़ियोंसे हीन होने लगे। 'प्रौढ़ बच्चे और अधिक अच्छे स्त्री-पुरुष' का नारा उन लोगोंको मोह लेता है जो वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके विषयमें अपनी जड़वादी दृष्टिके कैदखानेमें पड़े रहकर यह सोचा करते हैं कि हम आदमियोंकी नस्ल भी भेड़-बकरियों और घोड़ोंकी तरह पैदा की जा सकती है। आगस्त काम्तेने इन लोगोंपर तीखा व्यंग्य करते हुए कहा था—'अच्छा होता कि हमारे सामाजिक रोगोंका इलाज करनेके ये दावेदार पशु-वैद्य बने होते, क्योंकि व्यक्ति और समाज दोनोंकी जटिल मनोरचनाका समझ लेना तो उनके वशकी बात नहीं।'

"सच यह है कि मनुष्य जीवनमें जितनी भी दृष्टियोंको ग्रहण करता है, जितने भी निश्चय करता है, जितनी भी आदतें लगाता है उन सबमें एक भी ऐसी नहीं, जो उसके वैयक्तिक और सामाजिक जीवनपर वैसा असर डाले

जैसा काम-वासनाकी तृप्तिके विषयमें उसकी दृष्टि, उसके निश्चयों और उसकी आदतोंका पड़ा करता है। चाहे वह उसको वशमें रखे या खुद उसके इशारे पर नाचता रहे, सामाजिक जीवनके दूर-से-दूरके कोनेमें भी उसकी प्रतिध्वनि सुनाई देगी; क्योंकि प्रकृतिका यह विधान है कि हमारे गुप्त-से-गुप्त और निजी-से-निजी कामकी प्रतिक्रिया भी अति व्यापक हो।

"इसी गुप्त विधानकी कृपासे जब हम नीति-नियमका किसी रूपमें उल्लंघन करने लगते हैं तो अपने-आपको यह भुलावा देनेकी कोशिश करते हैं कि हमारे कुकर्मका कोई अधिक बुरा फल न होगा। खुद अपने बारेमें तो पहले हम उससे सन्तुष्ट होते हैं, क्योंकि अपनी रुचि या सुख ही हमारे उस कार्यका हेतु होता है। समाजके विषयमें हम सोचते हैं कि हमारी तुच्छ हस्तीसे वह इतना ऊंचा है कि वह हमारे दुष्कर्मकी ओर आंख उठाकर देखनेका कष्ट भी न करेगा। सर्वोपरि, हम मन-ही-मन यह आशा रखते हैं कि दूसरे सब लोग सच्चे और सदाचारी बने रहेंगे। सबसे बुरी बात यह है कि जबतक हमारा आचरण असाधारण और अपवाद-रूप कार्य होता है तबतक यह कापुरुषोचित आशा प्रायः सफल होती रहती है। फिर इस सफलतासे फूलकर हम बार-बार वही आचरण करने लगते हैं और जब उसे करना होता है उसे जायज मान लेते हैं। यही हमारे कर्मका सबसे बड़ा दण्ड है।

"पर एक वक्त आता है जब इस आचरणके द्वारा उपस्थित किया हुआ उदाहरण हमें और तरहसे धर्म-च्युत करनेका भी कारण होता है। हमारा हर एक दुष्कर्म 'दूसरों' में जिस धर्मनिष्ठताका हम विश्वास रखते आये हैं उसको अपनेमें पैदा करना अधिक कठिन, अधिक विरोचित कार्य बना देता है। हमारा पड़ोसी भी बार-बार ठगे जानेसे खीझकर हमारी नकल करनेको अधीर हो जाता है, बस उसी दिनसे हमारा अधःपात प्रारम्भ होता है और हर आदमी यह सोच सकता कि उसके दुष्कर्मोंके क्या-क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं और उसकी जिम्मेदारी कितनी बड़ी है।

"अपने गुप्त कर्मको हम जिस तहखानेमें छिपा हुआ मानते थे उससे वह निकल आता है। उसमें अंतःप्रवेशकी शक्ति होती है जिससे वह समाजके

अंगोंमें व्याप्त हो जाता है। सभी सबके रोषका फल भुगतते हैं, क्योंकि हमारे कर्मोंका प्रभाव भंवरसे उठनेवाली नन्हीं लहरोंकी तरह समाज-जीवनके दूर-से-दूरके कोनों तक पहुंचता है।

"नीति-नाश जातिके रस-स्रोतोंको तुरंत सुखा देता है और जवानोंको झटपट बुढ़ापेकी ओर ढकेलकर शरीर और मन दोनोंसे निर्बल बना देता है।"

४ : इलाज—संयम और ब्रह्मचर्य

नीति-नाश और गर्भनिरोधके कृत्रिम साधनोंके उपयोगसे उसकी वृद्धि तथा उसके भयावह परिणामोंकी चर्चा करनेके बाद श्री ब्यूरोने इस बुराईको दूर करनेके उपायोंपर विचार किया है। उन्होंने पहले कानून-कायदोंकी मदद-से इसे रोकनेके प्रश्न और उनकी आवश्यकतापर विचार किया है और उन्हें नितांत व्यर्थ बताया है। पुस्तकके इस अंशकी चर्चा मुझे छोड़ देनी होगी। इसके बाद उन्होंने अविवाहितके लिए ब्रह्मचर्यकी, मानव-जातिका जो बहुत बड़ा भाग सदाके लिए अपनी काम-वासनाको जीत नहीं सकता उसके लिए ब्याहकी, विवाहित स्त्री-पुरुषके लिए एक-दूसरेके प्रति सच्चा, वफादार रहने तथा विवाहित जीवनमें संयमकी और इनके पक्षमें लोकमत तैयार करनेकी आवश्यकतापर विचार किया है। "ब्रह्मचर्य स्त्री-पुरुषकी प्रकृतिके विरुद्ध है और उसके स्वास्थ्यके लिए हानिकारक है। वह व्यक्तिकी स्वतंत्रता और उसके सुखपूर्वक जीने तथा जिस जगह चाहे रहने-सहनेके अधिकार पर असह्य आघात है।" इस तर्ककी उन्होंने समीक्षा की है। वह इस सिद्धांतको सही माननेसे इन्कार करते हैं कि 'जननेंद्रिय भी और इंद्रियों-जैसी है और उसे भी काम मिलना ही चाहिए।' वह पूछते हैं—"ऐसा है तो हमारी संकल्प-शक्तिको जो काम-वासनाको पूरी तरह रोक रखनेकी शक्ति प्राप्त है, उससे या इस तथ्यसे हम इसका मेल किस तरह बैठायंगे कि कामवासनाका जगना उन अगणित उत्तेजनाओंका फल होता है जिन्हें हमारी सभ्यता वय:प्राप्तिके कई बरस पहले ही हमारे नवयुवकों और नवयुवतियोंके लिए जुटा देती है?"

संयमसे स्वास्थ्यकी हानि नहीं होती, बल्कि वह स्वाथ्यके लिए आवश्यक है और सर्वथा साध्य है। इस दावेकी पुष्टिमें, पुस्तकमें जो बहुमूल्य डाक्टरी शहादतें इकट्ठी की गई हैं, उन्हें उद्धृत करनेका लोभ मैं रोक नहीं सकता।

टबिंगन विद्यापीठ (जर्मनी) के प्रोफेसर ओस्टरलेन लिखते हैं—"काम-वासना इतनी प्रबल नहीं होती कि नीति-बल और विवेकसे वह दबाई, बल्कि पूरी तरह वशमें, न लाई जा सके। युवतियोंकी तरह युवकोंको भी योग्य वय प्राप्त होने तक उसे काबूमें रखना सीखना चाहिए। उन्हें जानना चाहिए कि इस इच्छाकृत त्यागका फल तगड़ा शरीर और हमेशा ताजादम बना रहनेवाला बल-उत्साह होता है।"

"इस बातको चाहे जितनी बार दुहराइये, अधिक न होगा कि भोग-विलास और पूर्ण पवित्र-जीवनका शरीरशास्त्र (फिजियालोजी) और नीतिशास्त्रके नियमोंके साथ पूरा मेल है, और असंयत विषय-भोगका शरीरशास्त्र तथा मानसशास्त्र भी उतना ही विरोध करते है जितना धर्म और नीति।"

लंदनके रायल कालिजके प्रोफेसर सर लायोनल बील कहते हैं—"श्रेष्ठ पुरुषोंके उदहरणोंसे यह बात सदा सिद्ध हुई है कि हमारी सबसे दुर्दम वासनाएं दृढ़ और पक्के संकल्पसे और रहने-सहनेके तरीके अथवा काम-धंधेके बारेमें काफी सावधानी रखकर काबूमें लाई जा सकती हैं। ब्रह्मचर्यसे कभी किसीको हानि नहीं हुई बशर्ते कि वह किसी तरहकी लाचारीसे नहीं बल्कि खुशीसे अपनाई हुई जीवन-विधिके रूपमें धारण किया गया हो। सार यह है कि कौमार्य इतना कठिन नहीं है कि चल न सके; पर शर्त यह है कि वह मनकी अवस्था-विशेषकी बाह्य अभिव्यक्ति हो।...ब्रह्मचर्यका अर्थ केवल इंद्रिय-संयम नहीं होता, मनके भावोंका निर्मल होना और वह शक्ति भी होती है जो पक्के विश्वाससे मिला करती है।"

स्विट्जरलैंडका मानसशास्त्री फारल कामसंबंधी अनियमितताओंकी चर्चा कैसे सौम्य भावसे करता है—जो उसके पांडित्यके सर्वथा अनुरूप है। वह कहता है—"व्यायामसे नाड़ी-संस्थानकी हर एक क्रिया तेज और सशक्त होती है। इसके विपरीत अंगविशेषकी निष्क्रियता उस उत्तेजित करनेवाली

बातोंका असर घटा देती है। काम-प्रवृत्तिको छेड़नेवाली सभी बातें भोगकी इच्छाको भड़काती हैं। इन उत्तेजनाओंसे बचते रहें तो वह कुछ मन्द हो जाती है और धीरे-धीरे बहुत घट जाती है। युवक-युवतियोंमें यह ख्याल फैला हुआ है कि संयम प्रकृतिविरुद्ध और अनहोनी बात है। पर बहुसंख्यक जन, जो उसका पालन कर रहे हैं, इस बातको सिद्ध कर रहे हैं कि स्वास्थ्य-की किसी तरह हानि किये बिना ब्रह्मचर्यका पालन किया जा सकता है।"

रिबिंगका कहना है—"२५, ३० या इससे भी ऊंची उम्रके कितने ही व्यक्तियोंको मैं जानता हूं, जिन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन किया, या जिन्होंने ब्याह होने तक नियमको निबाहा। ऐसे लोग इने-गिने नहीं हैं; हां, वे अपना ढिंढोरा नहीं पीटते फिरते। मुझे तन-मन दोनोंसे स्वस्थ कितने ही विद्यार्थियोंके गोपनीय पत्र मिले हैं, जिन्होंने मुझे इसलिए कोसा है कि विषय-वासनाको वशमें लाना कितना सहज है, इसपर मैंने उतना जोर नहीं दिया जितना देना चाहिए था।"

डाक्टर ऐक्टन कहते हैं कि "ब्याहके पहले युवकोंको पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए।"

ब्रिटिश राज-दरबारके चिकित्सक सर जेम्स पेजेटका कहना है कि "ब्रह्मचर्यसे जिस तरह आत्माकी हानि नहीं होती, उसी तरह शरीरकी भी नहीं होती। संयम सर्वश्रेष्ठ आचार है।"

डाक्टर ई० पेरियें लिखते हैं—"पूर्ण ब्रह्मचर्यको तन्दुरुस्तीके लिए खतरनाक मानना एक विचित्र भ्रम है। इस भ्रमकी जड़ खोद डालनी चाहिए, क्योंकि यह बच्चोंके ही नहीं, बापोंके मनको भी बिगाड़ रहा है। ब्रह्मचर्य युवकोंके लिए शारीरिक, मानसिक और नैतिक तीनों दृष्टियोंसे कवच-रूप है।"

सर ऐंड्रू क्लार्क कहते हैं—"संयमसे कोई हानि नहीं होती, शरीरकी बाढ़में बाधा नहीं होती। वह शक्तिको बढ़ाता और मन-इंद्रियोंको सतेज करता है। असंयम मन-इन्द्रियोंको वशमें रखनेकी शक्ति घटाता, ढिलाईकी आदत लगाता, जीवनकी सारी क्रियाओंको मंद करता और बिगाड़ता और ऐसे रोगोंको निमंत्रण देता है जिनकी विरासत कई पीढ़ियों तक चली जाय।

कामवासनाकी असंयत तृप्ति युवकोंके स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है, यह कहना भूल ही नहीं, उनके प्रति अत्याचार भी है। यह कथन असत्य और हानिकर दोनों है।"

डाक्टर सर ब्लेड लिखते हैं—"असंयत विषयभोगकी बुराइयां निर्विवाद हैं, पर संयमकी बुराइयां कपोल-कल्पना मात्र हैं। पहलीके विवेचनमें बड़े-बड़े पोथे लिखे गए हैं, पर दूसरीको अभी तक अपना इतहास लिखनेवाले का इन्तजार है। संयमसे होनेवाली हानिके बारेमें जो कुछ कहा जाता है, वह कुछ गोल-मटोल बातें हैं जिन्हें बातचीतके दायरेके बाहर आने और समीक्षाकी कसौटीपर चढ़नेकी हिम्मत नहीं होती।"

डाक्टर मोंते गाजा 'लाजिफियालोजी देलामूर' (कामका शरीरशास्त्र) नामकी पुस्तकमें लिखते हैं—"ब्रह्मचर्यसे किसीको कोई रोग हुआ हो, यह अबतक मैंने नहीं देखा।...सभी लोग, खासकर युवा पुरुष, उसके तुरंत होनेवाले लाभोंका अनुभव कर सकते हैं।"

बर्न (स्विट्जरलैण्ड) के नाड़ीसंस्थानके रोगोंकी चिकित्साके यशस्वी अध्यापक डाक्टर दुबॉय लिखते हैं—"नाड़ीसंस्थानकी दुर्बलता—दिल-दिमागकी कमजोरीके मरीज जितने उन लोगोंमें मिलते हैं, जो अपनी कामवासनाकी लगाम बिलकुल ढीली किये रहते हैं, उतने उन लोगोंमें नहीं जो जानते हैं कि अपनी पाशव प्रवृत्तियोंकी गुलामीसे कैसे बचा जा सकता है। बिसेत्र अस्पतालके चिकित्सक डाक्टर फेरे उनकी इस शहादतकी पूरी तरह पुष्टि करते हैं। वह कहते हैं कि "जो लोग अपने मनको निर्मल रख सकते हैं वे अपने स्वाथ्यकी ओरसे निर्भय रहकर ब्रह्मचर्यका पालन कर सकते हैं। स्वास्थ्य कामवासनाकी तृप्तिपर अवलंबित नहीं होता।

प्रोफेसर आलफ्रेद फूर्नियेे लिखते हैं—"ब्रह्मचर्य रखनेसे युवकोंके स्वास्थ्यके लिए खतरा होनेके बारेमें कुछ अयुक्त और गम्भीरतारहित बातें कही जाती हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि ये खतरे अगर सचमुच हैं तो मैं उनके बारेमें बिलकुल ही अनजान हूं और एक चिकित्सककी हैसियतसे मुझे अबतक उनके अस्तित्वका प्रमाण नहीं मिला है, यद्यपि अपने धंधेके सिलसिलेमें मुझे उनकी जानकारी होनेका पूरा मौका हासिल

था। इसके सिवा शरीर-शास्त्रका अध्ययन करनेवालेकी हैसियतसे मैं यह भी कहूंगा कि मोटे हिसाब २१ की उम्रके पहले सच्चा वीर्य या पुरुषत्व नहीं प्राप्त होता, और दूषित उत्तेजनाएं कामवासनाको समयसे पहले जगा न दें तो तबतक सहवासकी आवश्यकता भी नहीं पैदा होती। काम-वासनाका समयसे पहले जगना अस्वाभाविक बात है और आमतौरसे यह बच्चोंका लालन-पालन गलत तरीकेसे किये जानेका फल होता है।

"कुछ भी हो इतना तो पक्का समझिये कि काम-वासनाको समयसे पहले जगाने और तृप्त करनेमें जितना खतरा होता है उसे रोकने-दबानेमें उससे कहीं कम होता है।"

ये अति प्रामाणिक शहादतें, जो आसानीसे बढ़ाई जा सकती हैं, पेश करनेके बाद श्री ब्यूरो अन्तमें वह प्रस्ताव उद्धृत करते हैं जिसे १९०२ ई० में ब्रूसेल्स (बेल्जियम) में हुए रोगों से बचनेके उपायोंपर विचार करनेवाले दूसरे सार्वदेशिक सम्मेलनमें उपस्थित १०२ चिकित्सा-पंडितोंने एकमतसे स्वीकार किया था। इस सम्मेलनके प्रतिनिधि अपने विषयके दुनियामें सबसे अधिक प्रामाणिक पंडित थे। प्रस्तावका भाव यह है—"युवकोंको यह बता देना और सब शिक्षाओंसे अधिक आवश्यक है कि संयम और ब्रह्मचर्यसे उनके स्वास्थ्यकी कोई हानि नहीं हो सकती ; बल्कि शुद्ध चिकित्सा-शास्त्र और स्वास्थ्य-विज्ञानकी दृष्टिसे भी इन गुणोंको अपनानेकी उनसे पूरे जोरके साथ सिफारिश की जानी चाहिए।"

अनन्तर श्री ब्यूरो लिखते हैं—"क्रिस्टियानिया (नारवे) विद्यापीठ" के चिकित्सा-विभागके अध्यापकोंने कुछ बरस पहले सर्वसम्मतिसे यह घोषणा की थी कि 'संयमका जीवन स्वास्थ्यकी हानि करनेवाला है' यह कथन हमारे सर्वस्वीकृत अनुभवके अनुसार निराधार है। पवित्र और सदाचारयुक्त जीवनसे कोई हानि होनेकी बात हमें मालूम नहीं।"

"इस प्रकार सारा मुकदमा सुन लिया गया और समाजशास्त्री तथा नीतिशास्त्री अब श्री रूइसांके स्वरमें स्वर मिलाकर इस बुनियादी और शरीरशास्त्र-द्वारा अनुमोदित सत्यकी घोषणा कर सकते हैं कि 'काम-वासना आहार और अंगोंसे काम लेनेकी आवश्यकताओं जैसी वस्तु नहीं है जिसका

एक खास हद तक तृप्त होना आवश्यक हो। यह सत्य है कि कुछ असाधारण कोटिके, किसी तरहकी विकृतिसे पीड़ित जनोंको छोड़कर, और सभी स्त्री-पुरुष संयम, पवित्रताका जीवन बिता सकते हैं, इससे न उनके जीवनमें कोई बड़ा उपद्रव उपस्थित होगा और न कोई क्लेश ही होगा। इस बातको जितनी बार भी दुहराएं अधिक न होगा, क्योंकि ऐसी बुनियादी सचाइयोंकी उपेक्षा होना सामान्य बात है, कि ब्रह्मचर्यके पालनसे साधारण स्त्री-पुरुषोंको, जिनके तन-मनकी बनावटमें कोई खास खराबी नहीं है—और १०० में ९८-९९ ऐसे ही लोग होते हैं—कभी कोई रोग-कष्ट नहीं होता, पर अनेक भयानक और सर्वविदित बीमारियां असंयत विषय-भोगका ही प्रसाद होती हैं। शुक्र-शोणितके अतिरेकका अति सरल और अचूक उपाय प्रकृतिने स्वप्नदोष और रजोधर्मके रूपमें कर ही दिया है।

अतः डाक्टर वीरीका यह कहना बिलकुल सही है कि यह प्रश्न किसी सच्ची प्राकृतिक प्रेरणा या आवश्यकताकी तृप्ति-पूर्तिका नहीं है। हर आदमी जानता है कि क्षुधाकी तृप्ति न करने या सांस लेना बन्द कर देनेका दण्ड उसे क्या मिलेगा। पर कोई किसी तात्कालिक या लम्बी बीमारीका नाम नहीं बता सकता जो थोड़े दिनों तक यावज्जीवन ब्रह्मचर्य-पालनसे पैदा होती हो। साधारण जीवनमें हम ऐसे ब्रह्मचारियों को देखते हैं जिनका चरित्र किसीसे कम बलवान नहीं है, जिनका शरीर भी दूसरोंसे कम तगड़ा नहीं और ब्याह करें तो सन्तानोत्पादनके सामर्थ्यमें भी किसीसे पीछे नहीं है। जिस आवश्यकतामें इतना उतार-चढ़ाव हो सकता है, जो नैसर्गिक प्रेरणा-तृप्तिके अभावको इतनी आसानीसे सह लेती है, वह न आवश्यकता हो सकती है न प्रकृतिसे प्राप्त प्रेरणा।"

"कामवासनाकी तृप्ति बढ़नेवाली वयके बालककी किसी शारीरिक आवश्यकताकी पूर्ति नहीं करती, बल्कि उलटे पूर्ण ब्रह्मचर्य ही उसकी साधारण बाढ़-विकासके लिए अत्यावश्यक है; और जो लोग उसको भंग करते हैं वे अपने स्वास्थ्यकी कभी पूरी न हो सकनेवाली हानि करते हैं। कोई बालक या बालिका जब जवान होने लगती है तो उसके तन-मनमें बहुतसे गहरे उलट-फेर होते हैं, अनेक शारीरिक क्रियाओंमें सच्ची गड़बड़

पैदा हो जाती है। सारा शरीर बढ़ता, पुष्ट होता है। किशोर अवस्थावाले बालकको अपनी सारी शक्ति बटोर रखनेकी जरूरत होती है, क्योंकि इस उम्रमें अकसर रोगोंका आक्रमण रोकनेकी शक्ति घट जाती है और इस उम्रवाले और छोटी उम्रवालोंकी तुलनामें अधिक बीमार होते तथा मरते हैं। शरीरकी सामान्य बाढ़का लम्बा काम, विभिन्न अंगों, इन्द्रियोंका विकास, देह और मनमें लगातार होनेवाले वे बहु-संख्यक परिवर्तन, जिनके अन्तमें बालक पुरुष बनता है, ये सब ऐसे काम हैं जिनके लिए प्रकृतिको गहरी मेहनत करनी पड़ती है। ऐसे नाजुक वक्तमें हर तरहका अतिरेक, किसी भी अंग-इन्द्रिय-से अधिक काम लेना, खतरनाक है, जननेन्द्रियका समयसे पहले उपयोग तो खास तौरसे खतरनाक है।"

५ : व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी दलील

ब्रह्मचर्यके शारीरिक लाभोंकी चर्चा करनेके बाद श्री ब्यूरो उसके नैतिक और मानसिक लाभ बतानेके लिए प्रोफेसर मोंतेगाजाकी पुस्तकका निम्नलिखित अंश उद्धृत करते हैं—

"सभी लोग, खासकर युवक, ब्रह्मचर्यके तत्काल होनेवाले लाभोंका अनुभव कर सकते हैं। स्मृति स्थिर और धारक, मस्तिष्क सजीव और उद्भावनाक्षम हो जाता है। संकल्प-शक्ति सबल-सतेज हो जाती है। सारे चरित्रमें वह बल आ जाता है कामुक जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्यका तिनपहला शीशा हमारे आसपासकी सारी चीजोंको, हमारी दुनियाको जैसे स्वर्गीय रंगोंसे रंजित कर देना है वैसा और कोई कलम नहीं कर सकती। विश्वकी छोटी-से-छोटी चीजको भी वह अपनी किरणोंसे आलोकित कर देता है, हमें उस नित्य सुखके शुद्धतम आनन्दमें पहुंचा देता है जो न घटना जानता है और न छीजना। ब्रह्मचारीका आनन्द, हार्दिक उल्लास और प्रसन्नतासे भरा आत्मविश्वास और उसके विषयवासनाके गुलाम साथियोंके बेचैन किये रहनेवाले बद्धमूल विचार और बौखलाहटमें कैसा दिन-रातका-सा अन्तर है!"

संयमके लाभोंकी कामुकता और ऐयाशीके कुपरिणामोंसे तुलना करते

हुए लेखक कहता है—"संयमसे पैदा होनेवाले किसी रोगका नाम कोई नहीं बता सकता, पर असंयत विषयभोगसे होनेवाली डरावनी बीमारियोंको कौन नहीं जानता ? देह तो सड़ी-गली चीज बनती ही जाती है, कल्पना-शक्ति, हृदय और बुद्धिकी दशा और भी बुरी हो जाती है। हर तरफसे चरित्रके पतन, युवकोंकी उद्दाम कामुकता और स्वार्थरपताकी बाढ़का रोना सुनाई देता है।"

यह तो हुई वीर्य-व्ययकी तथोक्त आवश्यकता और उसके कारण ब्याहके पहले युवकोंके नीतिकी लगाम कुछ ढीली रखनेके औचित्यकी बात। इस आजादीके हिमायती यह भी कहते हैं कि कामवासनाका नियंत्रण मनुष्यके अपने शरीरसे चाहे जिस तरह काम लेनेकी स्वतत्रता का हरण है। लेखक सबल दलीलोंसे यह सिद्ध करता है कि समाजशास्त्र और मानसशास्त्रकी दृष्टिसे यह रोक आवश्यक है। वह कहता है—

"सामाजिक जीवन केवल बहुविध संबंधोंका एक जाल, क्रियाओं और प्रतिक्रियाओंका ताना-बाना है। उसके बीच कोई ऐसा काम हो ही नहीं सकता जिसे हम दूसरोंसे बिलकुल अलग, असम्बद्ध कह सकें। हम जो कुछ भी करनेका निश्चय या यत्न करें, हमारी अखण्डता, हमारा एक-दूसरेसे लगा-जुड़ा होना हमारे निश्चय और कार्यका संबंध हमारे भाइयोंके विचारों और कार्योंसे जोड़ देगा। हमारे छिपे विचार और क्षण भरके लिए मनमें उठनेवाली कामवासनाकी प्रतिध्वनि भी इतनी दूरतक पहुंचती है कि हमारा मन उस दूरीका अदाजा नहीं कर सकता। सामाजिकता मनुष्यका ऐसा गुण नहीं है जो बाहरसे लिया गया हो या जिसका काम किसी और गुप्त वृत्तिका पोषण-मात्र हो। वह तो उसका सहज गुण है, उसकी मनुष्यताका ही अंग है। वह सामाजिक इसीलिए है कि वह मनुष्य है। हमारे कामोंका दूसरा कोई भी मैदान इसके जितना सच्चे अर्थमें हमारा अपना नहीं। शरीरशास्त्र और नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति, बुद्धि और सौन्दर्य-भावनाके कार्य-क्षेत्र, हमारे धार्मिक और सामाजिक कार्य—सभी एक विश्वव्यापी विधानके साथ रहस्यभरे सूत्रोंसे बंधे और अनिर्दिष्ट संबंधोंसे जुड़े हुए हैं। यह बंधन इतना दृढ़ है, जाल इतना गठकर

बुना हुआ है कि बेचारा समाजशास्त्री देश और कालको अतिक्रमण करके उसके सामने खड़ी इस विराट्सत्ताको देखकर कभी-कभी चक्करमें आ जाता है। वह एक ही निगाहमें इसका अंदाजा कर लेता है कि कुछ विशेष अवस्थाओंमें व्यक्तिकी जिम्मेदारी कितनी बड़ी होती है, और कुछ सामाजिक हलके उसे जो आजादी देनेके इच्छुक हो सकते हैं उसे स्वीकार कर वह किस तरह क्षुद्र बन जानेकी जोखिम उठाता है।"

लेखक और कहता है—"अगर हम कह सकते हैं कि कुछ खास हालतोंमें हमें सड़कपर थूकनेकी आजादी नहीं है तो अपनी कामशक्ति, अपने वीर्यको जिस तरह चाहें खर्च करनेका अधिकार, जो उससे अधिक महत्त्वकी वस्तु है, हमें कैसे मिल सकता है? क्या यह शक्ति अखण्डताके विश्वव्यापी विधानके बाहर है? उलटा हर आदमी यह देख सकता है कि उक्त क्रियाके आत्यन्तिक महत्त्वके कारण वैयक्तिक कार्यकी समाजपर होनेवाली प्रतिक्रिया और बढ़ जाती है। इस नवयुवक और नवयुवतीको देखिये जिन्होंने अभी-अभी वह नाजायज संबंध जोड़ा है जिसका रूप पाठक को ज्ञात है। उन्होंने मान लिया है कि इस समझौतेका संबध केवल उन्हीसे है, और किसीसे नही। अपनी स्वाधीनताके भ्रममें वे यह मान लेते हैं कि हमारे निजी और गुप्त कार्योंसे समाजको कोई वास्ता-सरोकार नहीं, और वे उसके नियंत्रणसे बिलकुल बाहर हैं। ऐसा सोचना उनकी निरी खामखयाली है। समाजकी जो अखण्डता एक राष्ट्रके लोगोंको और उससे भी आगे जाकर सम्पूर्ण मानव-जातिको एक लड़ीमें पिरोती है उसे सभी तरहकी दीवारों—शयनागारोंकी दीवारोंका भेदन करनेमें भी कोई कठिनाई नहीं होती। परस्पर-संबंधकी एक जबर्दस्त जंजीर हमारे निजी माने जानेवाले कार्योंको जिस समाज-जीवनके विघटनमें वे सहायक हो रहे हैं उसके हजारों कोस दूरके कर्म-कलापोंके साथ भी जोड़ देती है। हर आदमी जो यह कहता है कि—किसीके साथ कुछ दिनोंके लिए या गर्भ-धारणका बचाव करते हुए पति-पत्नी-संबंध स्थापित करनेका अधिकार है, उसे इसकी आजादी है कि प्रकृतिसे प्राप्त अपनी जनन-शक्ति—अपने वीर्यका—केवल अपने आनंदके लिए उपभोग करे, वह चाहे या न चाहे पर वह समाजके अंदर भेद-बिलगाव और

विशृंखलताके बीज बो रहा है। हमारी सभी सामाजिक संस्थाएं हमारी स्वार्थपरता और उनके प्रति अपने कर्तव्यके अपालनसे विकृत तो हो ही रही हैं, वे यह मान लेती हैं कि कामवासनाकी तृप्तिके साथ जो जिम्मेदारी आती है हर आदमी उसे खुशीसे उठा लेगा। इस स्वीकृतिको मानकर ही समाजने श्रम और संपत्ति, मजदूरी और वरासत, कर और सैनिक रूपमें राष्ट्रकी सेवा आदि अगणित व्यवस्थाएं बनाई हैं। पार्लियामेंटके चुनावमें मत देनेका अधिकार और नागरिकताके इस बोझको उठानेमें अपना कंधा लगानेसे इनकार करके व्यक्ति सामाजिक समझौतेके मूल तत्त्वपर ही हरताल फेरता है, और चूंकि वह ऐसा करके दूसरोंका बोझ और बढ़ा देता है इसलिए वह दूसरोंका शोषण करनेवाले, दूसरोंकी कमाईपर जीनेवाले चार और ठगसे अच्छा कहलानेका अधिकारी नहीं है। हम अपनी और सभी शक्तियोंके समान अपनी शारीरिक शक्तिके सदुपयोगके लिए भी समाजके सामने जवाबदेह हैं, और चूंकि वह निहत्था और बाहरी दबावके साधनोंसे लगभग बिलकुल ही रहित होनेके कारण उस शक्तिको समझदारीके साथ और समाजके भलेका ध्यान रखते हुए काममें लानेका भार हमारे सद्भावको ही सौंप देनेको लाचार है, इसलिए हमारी यह जिम्मेदारी और बड़ी मानी जा सकती है।

लेखक मानसशास्त्रके आधारपर भी अपनी बात उतने ही जोरसे कहता है। उसका कहना है—"स्वाधीनता ऊपरसे देखनेमें तो राहत या कष्टसे छुटकारा है, पर वास्तवमें वह एक भारी बोझ है। यही उसकी महत्ता भी है। वह हमें बांधती और विवश करती है। जितनी कोशिश करना हर आदमी पर फर्ज है, वह उससे अधिक करनेका आदेश देती है। व्यक्ति स्वाधीन होना चाहता है, अपनी स्वतन्त्रताका विकास करके अपने आपको व्यक्त करने, अपनी आकांक्षाओंको कार्यरूप देनेकी इच्छा उसके अंतरमें प्रज्वलित है। यह काम देखनेमें तो बहुत सरल और बहुत सीधा जान पड़ता है। पर पहला ही अनुभव उसे बता देता है कि वह कितना टेढ़ा और पेचीदा है। एकता हमारी प्रकृति और हमारे नैतिक जीवनकी प्रधान विशेषता है। हम अपने अंतरमें बहुविध और परस्पर-विरोधिनी

प्रेरणाओंका अनुभव करते हैं; उनमेंसे हरएकमें हमें अपने-आपका पता होता है। फिर भी हर बात हमें बताती है कि हमें उनमें कुछका ग्रहण और कुछका त्याग करना होगा। युवा पुरुष, तुम कहोगे कि मैं अपनी इच्छाओं, विचारोंका जीवन बिताना चाहता हूं, अपने-आपको व्यक्त करना चाहता हूं। पर महान् शिक्षक फारेस्टरके शब्दोंमें हम तुमसे पूछते हैं कि तुम अपने व्यक्तित्वके किस भागको कार्यरूप देना चाहते हो? उसका कौन-सा अंश अच्छा है—जो तुम्हारी मानसशक्तिका केन्द्र है वह या वह जो तुम्हारी प्रकृतिमें सबसे नीचे रहता है, उसका वासनामय भाग? अगर यह बात सच है कि व्यक्ति और समाज दोनोंकी प्रगतिका आधार अध्यात्मभावकी उत्तरोत्तर वृद्धि और जड़ प्रकृतिपर आत्माका पूर्ण प्रभुत्व है तो हमारा चुनाव क्या होगा, यह निश्चित है। पर हर हालमें हममें कर्म-शक्ति तो होनी ही चाहिए, और यह काम आसान नहीं है। इसके जवाबमें शायद तुम कहो कि मुझे चुनाव नहीं करना है—एकको अपनाने दूसरेको छोड़नेके पचड़ेमें नहीं पड़ना है। मुझे तो अपने जीवनको अखण्ड सत्ताके रूपमें ही उपलब्ध करना है। ठीक है, पर याद रक्खो, यह निश्चय खुद ही एक चुनाव है। क्योंकि यह मेल विग्रहके बाद बना है। अमर जर्मन कवि गेटेने कहा था 'मरकर जन्मो' और ये शब्द १६०० साल पहले कहे हुए हजरत ईसाके इस वचनकी प्रतिध्वनि मात्र हैं—'तथास्तु', मैं तुमसे कहता हूं कि धरतीपर गिरनेवाला गेहूंका दाना जबतक मरता नहीं वह अकेला रहता है। पर वह मरता है तो बहुतसे नए दाने पैदा कर देता है।'

श्री जब्रील सीले लिखते हैं—"हम मर्द बनना चाहते हैं" यह कहना तो बहुत आसान है। पर यह अधिकार कर्तव्य, कठोर कर्तव्य बन जाता है जिसके पालनमें कमोवेश सभी विफल होते है। हम आजाद होना चाहते हैं, इसकी घोषणा हम धमकीके लहजेमें करते हैं। आजादीका मतलब अगर यह हो कि हम जो जीमें आये वह करें, अपनी पशु-प्रवृत्तियोंके गुलाम हो जायं, तो यह स्वाधीनता हमारे गर्वकी वस्तु न होनी चाहिए। हां, अगर हम सच्ची स्वाधीनताकी बात कह रहे हों तो हमें कभी समाप्त न होनेवाले संग्रामके लिए कमर कस लेनी चाहिए। हम अपनी एकता, भीतर-बाहरसे

बिलकुल एक होने और स्वाधीनताकी बातें करते हैं और गर्वके साथ मान लेते हैं कि हम ईश्वरके अमर पुत्र हैं। पर दुःख है कि इस आत्माको अगर हम पकड़ना चाहते हैं तो वह हमारी पकड़के बाहर हो जाती है। वह ऐसी असम्बद्ध वस्तुओंका समूह बन जाती है जो एक-दूसरेके अस्तित्वको अस्वीकार करती हैं, वह परस्पर विरोधी इच्छाओंकी खींचातानीका झूला झूलती रहती है। वह जिस स्वाधीनताके उपभोगका दावा करती है वह गुलामीके सिवा और कुछ नहीं। पर वह उसे गुलामी लगती नहीं, इसलिए वह उसका विरोध नहीं करती।"

रूइसां कहते हैं—"संयम शांतिसे भरा हुआ गुण और असंयम दुर्जय दोषोंको निमंत्रण देनेवाला दुर्गुण। काम-वासनाका जगना यों तो हर समय कष्टका कारण होता है, पर युवावस्थामें तो वह एक मूलगत विकृति इच्छा-शक्ति और इन्द्रियोंके सन्तुलनके सदाके लिए बिगड़ जानेका संकेत हो सकता है। किसी नवयुवकका किसी स्त्रीके साथ प्रथम सम्पर्क उसे जीवनका एक क्षणिक अनुभव-सा जान पड़ता है; पर वह नहीं जानता कि वह वास्तवमें अपने शारीरिक, मानसिक और नैतिक तीनों जीवनोंके साथ खिलवाड़ कर रहा है। वह नहीं जानता कि यह वासना अब प्रेतकी तरह उसका पीछा करेगी—घर, दफ्तर, जलसा, दावत हर जगह उसको परेशान करेगी; यह दूसरेके मनपर उसकी विजय उसके लिए इन्द्रियोंकी जन्मभरकी गुलामी बन जायगी। हम जानते हैं कि कितने खिलते जीवन, कितने 'होनहार बिरवे' इस झंझामें झुलस गये, जिसका आरम्भ उनके पहले नैतिक पतन, ब्रह्मचर्यके प्रथम भंगसे हुआ।"

एक यशस्वी कविकी ये पंक्तियां इस दार्शनिकके इस वचनकी प्रति-ध्वनि हैं—

"मनुष्यकी आत्मा एक गहरा बरतन है। उसमें पड़नेवाली बूंदें समल हों तो सारे समुद्रका पानी भी उस धब्बेको धो नहीं सकता।" (भावार्थ)

ग्लासगो विद्यापीठके शरीरशास्त्रके अध्यापक जान जी० एम० कंड्रिक-की, जो अपने विषयके प्रख्यात पंडित हैं, यह सलाह भी उसकी वैसी ही प्रति-ध्वनि है—"उगती हुई कामवासनाकी तृप्ति अविहित नीति-दोष ही नहीं

है, शरीरकी भयानक क्षति भी है। इस वासनाके आदेशका तुमने एक बार पालन किया कि फिर उसका निरंकुश शासन तुम्हारे ऊपर स्थापित हुआ। अपनेको दोषी समझनेवाला तुम्हारा मन उसका हुक्म बजानेमें सुख भोगेगा और उसे और बेकही बना देगा। उसकी आज्ञाका प्रत्येक पालन आदतकी जंजीरमें एक नई कड़ी बनता जायगा। बहुतोंमें इस बेड़ीको तोड़नेका बल नहीं होता और वे अपने तन-मनका बुरी तरह नाश कर डालते हैं। वे अपनी आदतके गुलाम हो जाते हैं; जो आमतौरसे मनकी किसी विकृतिके कारण नहीं, बल्कि ज्ञानवश ही लग जाती है।"

इस मतकी पुष्टिमें श्री ब्यूरो डाक्टर एस्कांदे की यह उक्ति उद्धृत करते हैं—

"कामवासनाके बारेमें हम जोर देकर कहते हैं कि बुद्धि और संकल्पशक्ति उसे पूरी तरह बसमें रख सकती है। यहां वासना शब्दका ही व्यवहार उचित है, शारीरिक आवश्यकता या हाजतका नहीं, क्योंकि वह शरीरकी ऐसी मांग नहीं है जिसकी पूर्ति किये बिना हम जिंदा न रह सकें। सच तो यह है कि वह हाजत है ही नहीं। पर बहुतेरे उसे हाजत मानते हैं। इस वासना या इच्छाका जो अर्थ वे करते हैं वह उन्हें सहवासको जीवनकी अनिवार्य आवश्यकता माननेको मजबूर करता है। यहां हम कामवासनाकी उस तृप्तिका विचार नहीं कर रहे है जो प्रकृतिके नियमके सामने सिर झुका देनेका फल होती है, जो हम स्वभावके वश होकर करते हैं। हमारा मतलब तो उस अपनी इच्छासे किये जानेवाले कामसे है जो हमारे संकल्प या मनकी मौन सम्मतिसे किया जाता है, जिसे हम अकसर पहलेसे सोचे हुए होते हैं और उसकी तैयारी भी कर रखते हैं।"

६ : आजीवन ब्रह्मचर्य

ब्याहके पहले और पीछे भी ब्रह्मचर्य-पालनकी आवश्यकतापर जोर देने और वह न हो सकनेवाला या किसी तरहकी हानि करनेवाला नहीं बल्कि सर्वथा साध्य और मन-देह दोनोंके लिए सोलहों आने हितकर कार्य है, इसकी सिद्धिमें सबूतोंका ढेर लगा देनेके बाद श्री ब्यूरोने एक अध्यायमे नैष्ठिक

या आजीवन ब्रह्मचर्यके मूल्य, महत्त्व और साध्यतापर विचार किया है। उसका पहला पैराग्राफ उद्धृत करने योग्य है—

"इन उद्धारकों, काम-वासनाकी गुलामीसे सच्चा छुटकारा दिलानेवाले इन वीरोंकी पहली श्रेणीमें उन युवा पुरुषों और स्त्रियोंके नाम लिये जाने चाहिए जो अपना जीवन किसी महत्कार्यमें लगानेके विचारसे आजीवन ब्रह्मचारी रहनेका निश्चय करते और गृहस्थ-जीवनके सुखोंका लाभ त्याग देते हैं। उनके निश्चयके कारण परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। कोई बूढ़े अशक्त माता-पिताकी सेवाके लिए यह व्रत लेता है, कोई अपने मातृ-पितृ-हीन भाई-बहनोंके लिए मां-बाप बनना चाहता है, किसीको अपने-आपको किसी कला-विज्ञानकी आराधनामें, दीन-दुखियोंकी सेवामें अथवा नीति-शिक्षा या धर्म-प्रचारके कार्यमें अपना सारा समय और शक्ति लगानेकी लगन है। इसी तरह इस इच्छाकृत त्यागका मूल्य भी न्यूनाधिक हो सकता है। सुशिक्षा और सदाचारके अभ्यासकी कृपासे कुछका मन ऐसा होता है कि विषय-भोग उसे एक तरहसे ललचा ही नहीं सकते। दूसरोंको अपनी वासनाओंपर विजय पानेमें अपनी पाशविक प्रवृत्तियोंके साथ घोर युद्ध करना पड़ता है जिसकी कठोरताका पता केवल उन्हींको होता है। पर अन्तिम निश्चयका स्वरूप सबके लिए एक ही होता है। ये स्त्री और पुरुष यह सोचते हैं कि ब्याह न करना ही उनके लिए सबसे अच्छा रास्ता है, और चाहे अपनी अंतरात्माके, चाहे ईश्वरके सामने यह प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि हम आजन्म अविवाहित रहकर पवित्रताका जीवन बितायेंगे। विवाह हमारा कितना ही पक्का असंदिग्ध कर्तव्य क्यों न हो, हम यह देख सकते हैं कि विशेष परिस्थितियोंमें अविवाह-व्रत जायज होता है; क्योंकि वह एक ऊंचे, उदात्त उद्देश्यके लिए लिया जाता है। माइकेल एंजेलो[1] को जब ब्याहकी सलाह दी गई तो उसने जवाब दिया—"चित्र-कला ऐसी प्रेमिका है जो किसीकी सौत बनना नहीं सह सकती।"

---

[1] इटालियन चित्रकार और मूर्तिकार, जिसकी गणना दुनियाके प्रमुख कलाकारोंमें है। (१४७५-१५६४ ई०)।

श्री ब्यूरोने आजीवन ब्रह्मचर्यका व्रत लेनेवालोंके जितने वर्ग गिनाये हैं, अपने यूरोपीय मित्रोंमेंसे लगभग उन सभी प्रकारके लोगोंके अनुभवोंसे मैं इस शहादतकी पुष्टि कर सकता हूं। यह तो केवल हमारे हिंदुस्तानकी ही विशेषता है कि हमें बचपनसे ही अपने ब्याहकी बातें सुननी पड़ती हैं। मां-बापके मनमें इसके सिवा न कोई दूसरा विचार है न हौसला कि उनके बच्चोंकी भांवरें फिर जायं और वे उनके लिए काफी पैसा या जायदाद छोड़ जायं। पहली बात उन्हें समयसे पहले ही तन-मनसे बूढ़ा बना देती है, और दूसरी आलसी और अक्सर परोपजीवी—दूसरेकी मेहनतपर पलनेवाला होनेको प्रेरित करती है। ब्रह्मचर्य और स्वेच्छासे लिये हुए दारिद्रय-व्रतकी कठिनाइयोंको हम बढ़ा-चढ़ाकर दिखाते और उन्हें साधारण-जनकी शक्तिके परेकी बात बताते हैं। कहते हैं कि केवल 'महात्मा' और 'योगी' ही इन व्रतोंको निभा सकते हैं और हम संसारियोंमें उनके दर्शन कहां! वे यह भूल जाते हैं कि जिस समाजका साधारण जीवन गिरकर बहुत नीचे आ जाता है उसमें सच्चे महात्मा और योगीकी पहचान नहीं की जा सकती। बुराईकी चाल खरहेकी और भलाईकी कछुएकी होती है। इस न्यायसे पश्चिमकी विलासिता विद्युत्-वेगसे हमारे पास पहुंचती है और अपनी बहुरंगी छटासे हमारी आंखोंमें ऐसी चकाचौंध पैदा कर देती है कि हम जीवनकी सचाइयां देखनेमें असमर्थ हो जाते हैं। पश्चिमकी शान-शौकतकी जगमगाहट तारोंसे प्रतिक्षण, और पश्चिमके मालसे हमारे देशको पाटनेवाले जहाजोंसे प्रति-दिन हमारे पास पहुंच रही है। उसे देखकर हम संयम-सदाचारसे लज्जित-से होने लगे हैं, और अपनेसे लिये हुए दारिद्रय-व्रत को अपराध मान लेनेको तैयार हो गए हैं। पर पश्चिमको हम हिंदुस्तानमें जिस रूपमें देखते हैं वह बिलकुल वही चीज नहीं है। दक्षिण अफ्रीकाके गोरे जैसे मुट्ठी-भर प्रवासी भारतीयोंको देखकर संपूर्ण भारतीयोंके रहन-सहन और चरित्रका अंदाजा लगाते हैं तो हमारे साथ अन्याय करते हैं; वैसे ही पश्चिमसे जो मानव (मनुष्य-रूप) और दूसरी तरहका माल रोज-ब-रोज हमारे यहां पहुंच रहा है उसे हम सारे पाश्चात्य जगत्को नापनेका पैमाना बना लें तो हम भी उसके साथ वैसा ही अन्याय करनेके अपराधी होंगे। पश्चिममें भी पवित्रता

और नीति-बलका एक नन्हा-सा पर कभी न सूखनेवाला सोता है और जिनकी आंखें परदेके पार जा सकती हैं, वे धोखा देनेवाली ऊपरी सतहके नीचे उसके दर्शन कर सकते हैं। यूरोपके रेगिस्तानमें हर जगह ऐसे नखलिस्तान, ऐसे हरे-भरे टुकड़े मौजूद हैं जहां जाकर जो चाहे जीवन के स्वच्छतम जलसे अपनी प्यास बुझा सकता है। सैकड़ों स्त्री और पुरुष बिना ढोल पीटे, बिना किसी शेखी-शानके पूरी नम्रताके साथ आजीवन ब्रह्मचर्य और गरीबी-की जिंदगी बितानेका व्रत लेते हैं। बहुतेरे किसी प्रियजन या स्वदेशकी सेवाके लिए ही उसे ग्रहण करते हैं।

आध्यात्मिकताके बारेमें हम अक्सर इस तरहकी बातें ही किया करते हैं जैसे साधारण व्यावहारिक जीवनसे उसका कुछ लगाव ही न हो और वह हिमालयके वनोंमें बसने या उसकी किसी अगम्य गुफामें समाधि लगानेवाले योगियोंके लिए ही सुरक्षित हो। जिस आध्यात्मिक साधनाका हमारी रोजकी जिंदगीसे लगाव न हो, जिसका उसपर कुछ असर न पड़ता हो, वह महज हवाई चीज है। जिन युवकों और युवतियोंके लिए 'यंग इंडिया'में हर हफ्ते लिखा जाता है उन्हें जान लेना चाहिए कि अगर उन्हें अपने आस-पासके वायु-मंडलको शुद्ध और अपनी कमजोरीको दूर करना हो तो ब्रह्म-चर्यका पालन करना उनका कर्तव्य है और वे यह भी जान लें कि वह उतना कठिन नहीं है जितना उन्हें बताया गया है।

श्री ब्यूरोकी राय थोड़ी और सुन लीजिए—"समाज-शास्त्र हमारी जीवन-प्रणालीके विकासको ज्यों-ज्यों समझता जा रहा है त्यों-त्यों आजीवन ब्रह्मचर्यसे इंद्रिय-संयमके महान् कार्यमें मिलनेवाली सहायताके मूल्यका उसे अधिकाधिक ज्ञान होता जाता है।" विवाह अगर समाजके बहुत बडे भागके लिए जीवनकी स्वाभाविक स्थिति है तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि सभी व्याह कर सकते हैं या सबको करना ही चाहिए। जिन असाधारण जीवन व्यवसायोंकी बात हमने अभी-अभी कही है उनको अलग रखिए तो भी अविवाहित रहनेवालोंके कम-से-कम तीन वर्ग तो ऐसे हैं जिन्हें ब्याह न करनेके लिए कोई दोष नहीं दे सकता—(१) जो लोग—स्त्री-पुरुष—दोनों—अपने पेशेकी बाधा या पैसेकी कमीके कारण ब्याहको आगेके लिए

टाल रखना जरूरी समझते हैं। (२) जो लोग अपने मनका वर-वधू न पा सकनेके कारण न चाहते हुए भी अविवाहित रहनेको मजबूर हैं। (३) जिन लोगोंमें कोई ऐसा शारीरिक दोष या रोग होता है जिसके बच्चोंको भी होनेका डर हो, और फलत: जिन्हें अविवाहित रहना ही चाहिए बल्कि उसका खयाल भी दिलसे निकाल देना चाहिए।

इन लोगोंका यह त्याग उनका अपना सुख और समाजका हित दोनोंकी दृष्टिसे आवश्यक है। क्या यह देखकर वह कम क्लेशकर और प्रसन्नता-जनक न हो जायगा कि ऐसे लोगोंने भी, जो तन-मनसे पूर्ण स्वस्थ-सशक्त हैं और जिनके पास पैसा भी काफी या काफीसे ज्यादा है, आजीवन ब्रह्मचर्य-धारणका व्रत ले लिया है। ये अपनी इच्छा और पसंदसे अविवाहित रहने-वाले, जिन्होंने अपना जीवन भगवान्, भगवत-भजन और आत्माकी साधना-को समर्पित करनेका संकल्प किया है, कहते हैं कि ब्रह्मचारीका जीवन हमारी निगाहमें जीवनकी हीन नहीं बल्कि अधिक ऊंची अवस्था है, जिसमें मनुष्य अपनी पशु-प्रवृत्ति या सहज प्रेरणापर संकल्पके पूर्ण प्रभुत्वकी घोषणा करता है।

वे और लिखते हैं—"उन नवयुवकों और नवयुवतियोंको, जो अभी ब्याहकी उम्रको नहीं पहुंचे हैं, आजीवन ब्रह्मचर्य यह दिखाता है कि अपनी जवानीको पवित्रतापूर्वक बिता देना उनके बूतेके बाहरकी बात नहीं है; विवाहितोंको वह इसकी याद दिलाता है कि उनको दाम्पत्य जीवनके नियमोंके अधीन होना चाहिए, और नैतिक उदारता या एक-दूसरेके प्रति सच्चे रहनेके धर्मके आदेशोंकी अवहेलना कर किसी स्वार्थ-भावनाकी तृप्तिका यत्न, वह कितनी ही न्याय-संगत क्यों न हो, कदापि न करना चाहिए।"

फोस्टर लिखता है—"ब्रह्मचर्यका व्रत ब्याहका दरजा गिराता नहीं, उलटे वह दाम्पत्य संबंधकी पवित्रताका सबसे बड़ा सहारा है; क्योंकि अपनी प्रकृति या पशु-वृत्तिकी अधीनतासे मनुष्यकी मुक्तिकी वह ठोस शक्ल है। वासनाओं और विकारोंके हमले के सामने वह कवचका काम करता है। वह ब्याहकी भी इस अर्थमें रक्षा करता है कि विवाहित स्त्री-पुरुषोंको वह यह माननेसे रोकता है कि पति-पत्नीके रूपमें हम

दुर्ज्ञेय प्राकृतिक प्रेरणाओंके गुलाम नहीं हैं, बल्कि हम स्वाधीन मनुष्यकी तरह उनसे लोहा ले और उनपर विजय प्राप्त कर सकते हैं। जो लोग आजीवन ब्रह्मचर्यको अस्वाभाविक या अनहोनी बात बताकर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं वे जानते नहीं कि वे वास्तवमें क्या कर रहे हैं। वह यह नहीं देख पाते कि जो विचार-धारा उन्हें ब्रह्मचर्यका मजाक उड़ानेको प्रेरित कर रही है वह उन्हें व्यभिचार और बहुपत्नीत्व या बहुपतित्वके गढ़ेमें गिराकर रहेगी। प्रकृतिके आदेशका पालन अगर अनिवार्य है, उसकी उपेक्षा मनुष्यके बूतेके बाहरकी बात है, तो विवाहित स्त्री-पुरुषोंसे सदाचारयुक्त जीवनकी आशा कैसे रखी जा सकती है ? वे यह भी भूल जाते हैं कि वैसे ब्याहोंकी संख्या कितनी बड़ी होती है जिनमें पति-पत्नीमेंसे किसी एकको दूसरेके रोग या दूसरे प्रकारकी असमर्थताके कारण महीनों, बरसों या आजीवन सच्चे ब्रह्मचर्यका पालन करना पड़ता है। अकेले एक इसी कारणसे सच्चे एक-पत्नी-व्रत या एक-पति-व्रतको हम ब्रह्मचर्यके बराबर ही दर्जा देते हैं।"

७ : विवाह धार्मिक संस्कार है

आजीवन ब्रह्मचर्यके अध्यायके बाद कई अध्यायोंमें विवाहके धर्मरूप और अविच्छेद्य होने पर विचार किया गया है। श्री ब्यूरो यद्यपि नैष्ठिक ब्रह्मचर्यको सर्वश्रेष्ठ जीवन मानते हैं; पर साधारण जनके लिए उसका पालन शक्य नहीं, अतः ऐसे लोगोंके लिए विवाहको धर्मरूप मानना होगा। उन्होंने दिखाया है कि ब्याहका उद्देश्य और मर्यादा ठीक तौरसे समझ ली जाय तो गर्भ-निरोधके साधनोंका समर्थन किया ही नहीं जा सकता। आज जो समाजमें सर्वत्र नैतिक अराजकताका राज दिखाई दे रहा है वह दूषित नीति-शिक्षाकी ही देन है। ब्याहका मजाक उड़ानेवाले 'प्रगतिशील' लेखकोंके विचारोंकी समीक्षा करनेके बाद वह लिखते हैं—"इन नीति-शिक्षक बननेवालों और लेखकोंमें बहुतेरे नीति-ज्ञानसे बिलकुल कोरे और कुछ साहित्य-सेवाकी सच्ची भावनासे भी रहित हैं। इसे आनेवाली पीढ़ियोंका सौभाग्य समझना चाहिए कि इनकी यह राय हमारे समयके सच्चे मानस-शास्त्रियों

और समाज-शास्त्रियोंका मत नहीं है। अखबार, कहानी, उपन्यास और नाटक-सिनेमाकी शोर-शराबे वाली दुनिया और उस जगत्का, जहां विचारों-का उत्पादन और हमारे मानस और सामाजिक जीवनके गूढ़ तत्त्वोंका सूक्ष्म अध्ययन होता है, बिलगाव जितना पक्का और पूरा यहां दिखाई देता है उतना और कहीं नहीं है।"

श्री ब्यूरो स्वच्छन्द प्रेमकी दलीलको अस्वीकार करते हैं। मोदेस्तांकी तरह वह भी मानते हैं कि "विवाह स्त्री और पुरुषका मिलकर एक हो जाना, सारी जिन्दगीका साथ, और दिव्य तथा मानव न्याय्य अधिकारोंकी साझेदारी है। वह 'महज कानूनी इकरार' नहीं बल्कि एक 'संस्कार', एक धार्मिक कर्तव्य है। उसने "गोरिल्लाको सीधा खड़ा होना सिखाया है—वन-मानसको मनुष्य बनाया है।" यह सोचना भारी भ्रम है कि विधिवत् विवाहित स्त्री-पुरुषके लिए सब कुछ जायज है। और पति-पत्नी सन्तानो-त्पादन-विषयक नैतिक संयमका पालन करते हों तो भी उनका मैथुनके अपनेको रुचनेवाले अन्य उपायोंको अपनाना नाजायज है। यह रोक खुद उनके हितके लिए भी उतनी ही आवश्यक है जितनी समाजके हितके लिए, जिसका पोषण और वर्धन ही उनके पति-पत्नी बननेका उद्देश्य होना चाहिए। उनका कहना है कि ब्याह कामवासनाको जिस कड़े बंधनमें बांधता है उसको व्यर्थ करनेके जो नित नये रास्ते निकल रहे हैं वे शुद्ध प्रेमके लिए भारी खतरा हैं। इस खतरेको दूर करनेका उपाय केवल यही है कि हम काम-वासनाकी तृप्ति उस हदके अंदर ही रहकर करनेकी सावधानी रखें, जो खुद ब्याहके उद्देश्यने ही बांध दी है।

सन्त फ्रांसिस कहते हैं—"उग्र औषधका व्यवहार हमेशा खतरनाक होता है, क्योंकि अगर वह जरूरतसे ज्यादा खा ली गई या ठीक तौरसे न बनी तो उससे भारी अपकार होता है। ब्याह कामुकताकी दवा बताया जाता है और निस्सन्देह वह उसकी बहुत बढ़िया दवा है; पर साथ ही बहुत तेज काम करनेवाली दवा है, इसलिए सम्हालकर काममे न लाई गई तो बहुत खतरनाक भी होती है।"

श्री ब्यूरो इस मतका खण्डन करते हैं कि व्यक्तिको इसकी स्वतन्त्रता

है कि जब चाहे विवाह-बन्धनमें बंधे या उसे तोड़ फेंके, या उसकी जिम्मेदरियां न उठाते हुए मनमाना विषय-सुख भोगे। वह एक-पत्नी-व्रतपर जोर देते हैं और कहते हैं—

"यह कहना गलत है कि व्यक्ति व्याह करने या उसकी स्वार्थबुद्धि कहे तो अविवाहित रहनेको स्वतन्त्र है। यह बात तो और भी गलत है कि यथाविधि-विवाहित स्त्री-पुरुष आपसकी रजामन्दीसे, जब चाहे अपना विवाह-बंधन तोड़ सकते है। एक-दूसरेको चुनते समय वे स्वतन्त्र थे और उनपर फर्ज है कि पूरी जानकारी और अच्छी तरह सोच-विचार कर लेनेके बाद ही यह चुनाव करें, तथा उसी आदमीको अपना जीवन-संगी बनायें जिसके विषयमें उन्हें विश्वास हो कि जिस नये जीवनमें वे प्रवेश करने जा रहे है उसकी जिम्मेदारियोंका बोझ वे उसके साथ उठा सकेंगे। पर ज्यों ही संस्कार और व्यवहार-रूपमें विवाह सम्पन्न हुआ, पति-पत्नी शारीरिक अर्थमें पति-पत्नी बने कि उनका काम उन दो आदमियोंकी बीचकी ही बात नहीं रह जाता, उसका असर सब ओर बहुत दूर-दूर तक पड़ने लगता है, और उससे ऐसे परिणाम होने लगते हैं जिनका पहलेसे अनुमान करना कठिन है। हो सकता है कि ये नतीजे इस अराजक व्यक्तिवादके युगमें खुद पति-पत्नीके ध्यानमें न आयें; पर ज्यों ही गार्हस्थ्य जीवनकी स्थिरताको धक्का लगा, ज्यों ही ब्याह एकनिष्ठ दाम्पत्य जीवनके हितकर संयमके बदले चंचल काम-वासनाकी तृप्तिका साधन बना, त्यों ही सारे समाजको जो घोर कष्ट मिलने लगता है वह उन परिणामोंके महत्त्वका यथेष्ट प्रमाण है। जो आदमी इन व्यापक परिणामों और इस सूक्ष्म सम्बन्ध-जालको समझना है उसके लिए इस ज्ञानका कुछ अधिक महत्त्व नहीं कि चूंकि मनुष्यके बनाये सारे धर्म-विधान विकासके विश्व-व्यापी नियमके अधीन हैं इसलिए औरोंकी तरह विवाह-व्यवस्थामें भी आवश्यक परिवर्तन होना ही चाहिए। कारण, यह कि यह बात शंका-सन्देहसे परे है कि इस दिशामें हमारा प्रगतिका रूप केवल यही हो सकता है कि ब्याहका बन्धन और कड़ा हो जाय। आज विवाहके जन्मभरका बन्धन होने, कभी तोड़े न जा सकनेपर जो हमले किये जा रहे हैं और पति-पत्नीको आपसकी रजामन्दीसे चाहे जब तलाक देनेका

अधिकार मिलनेकी मांगकी जा रही है उससे इस बंधनका समाजके हितके लिए आवश्यक होना और अधिक स्पष्ट हो जायगा। और ज्यों-ज्यों दिन बीतेंगे यह स्पष्ट होता जायगा कि यह नियम जो सदियों तक, जब समाज उसके सामाजिक मूल्यको पहचान न सकता था, धर्मका एक अनुशासन-मात्र बना रहा, व्यक्तिके लिए भी उतना ही हितकर है जितना समाजके लिए।

'विवाह-बन्धनके अटूट होनेका नियम हमारा शृंगार, बडप्पनका दिखावामात्र, नहीं है, वह वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके सबसे नाजुक पुरजोंके साथ जुड़ा हुआ है। और चूंकि लोग क्रम-विकासकी बातें किया करते है, उन्हें यह सोचना चाहिए कि मानव-जातिकी यह अनन्त प्रगति, जिसे सभी इष्ट मानते हैं, किस बातपर अवलंबित है।

फोर्स्टर लिखता है—"अपनी जिम्मेदारियोंका खयाल बढ़ना व्यक्तिको अपनेसे नियम-बंधनमें बंधनेकी शिक्षा मिलना, धैर्य और उदारताकी वृद्धि, स्वार्थ-भावनाका अंकुशमें रहना, क्षणिक विकारों-वासनाओंके उपद्रवसे रागात्मक जीवनकी रक्षा होना—ये सभी ऐसी बातें हैं जिन्हें हम उच्च सामाजिक संस्कृतिके लिए सदा अनिवार्य और इस कारण आर्थिक परिस्थितिमें भारी उलट-फेर होनेसे होनेवाली गड़बड़ोंका असर उनपर न पड़ने देना अपना कर्तव्य मान सकते हैं। सच तो यह है कि आर्थिक प्रगति समाजकी सामान्य प्रगतिकी अनुगामिनी होती है; इसलिए कि आर्थिक सुरक्षा और सफलता अन्तमें हमारे सामजिक सहयोगकी सचाई पर ही अवलंबित होती है। जो आर्थिक परिवर्तन इन बुनियादी शर्तोंकी उपेक्षा करता है वह अपनी जड़ अपने ही हाथों काट देता है। अतः अगर हमें काम-सम्बन्धकी विभिन्न रीतियोंके गुण-दोषका नैतिक और सामाजिक दोनों दृष्टियोंसे विचार करना है, तो हमें यह देखना होगा कि उसकी कौन-सी रीति, इस प्रकार सम्पूर्ण सामाजिक जीवनके पोषण और दृढ़ीकरणके लिए सर्वोत्तम है। कौन जीवनकी भिन्न-भिन्न मंजिलोंमें व्यक्तिके अन्दर अपने दायित्वका अधिक-से-अधिक ज्ञान और आत्मत्यागका भाव उत्पन्न कर सकता है, उसकी असंयत स्वार्थ-परता और चंचल भोग-वासनापर कड़ा-से-कड़ा अंकुश रख सकता है ? इन प्रश्नोंका उतर ही इस विचारमें निर्णायक

होगा। प्रश्नपर इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि एकनिष्ठ विवाह, एक ही स्त्रीको पत्नी और एक ही पुरुषको पति-रूपमें स्वीकार करनेका नियम हर अधिक उन्नत सभ्यताका स्थायी अंग होना ही चाहिए; क्योंकि समाजके हित और व्यक्तिको संयमकी शिक्षा देनेकी दृष्टिसे वह बहुत ही मूल्यवान है। सच्ची प्रगति विवाह-बंधनकी गांठको ढीली करनेके बजाय और कड़ी कर देगी। कुटुम्ब मनुष्यके अपने-आपमें सामाजिक जीवनकी योग्यता उत्पन्न करनेके सारे प्रयत्नका, अर्थात् जिम्मेदारी, सहानुभूति, मनोनिग्रह, एक-दूसरेके प्रति सहिष्णुता रखने और एक-दूसरेको शिक्षा देनेकी सारी तैयारीका केन्द्र है। वह इस आसनपर इसलिए विराज रहा है कि वह हमारे जीवनमें सदा बना रहता है, उसके साथ हमारा सम्बन्ध अविच्छेद्य है, अटूट है और इस स्थायित्वके कारण साधारण कुटुम्ब-जीवन और व्यवस्थाओंकी बनिस्बत अधिक गहराई वाला, अधिक स्थिर और मनुष्य-मनुष्यके परस्पर व्यवहारके लिए अधिक उपयुक्त है। एकनिष्ठ विवाहको हम मनुष्यके सारे सामाजिक जीवनका हृदयरूप कहें तो अनुचित न होगा।"

आगस्त कांतेके कथनानुसार—"हमारा चित्त इतना चंचल है कि हमारी छन-छनमें बदलनेवाली वासनाओंको अंकुशमें रखनेके लिए समाजको हस्तक्षेप करना ही होगा। नहीं तो वे मनुष्यके जीवनको निकम्मे और निरर्थक अनुभवोंकी शृंखला मात्र बना देंगी।"

डाक्टर तूलूज लिखते हैं—"यह भ्रम बहुतेरे स्त्री-पुरुषोंके दाम्पत्य जीवनको दुःखमय बना देता है कि काम-वासना दुर्दम प्रवृत्ति है जिसकी तृप्ति जैसे भी बने करनी ही होगी।...पर मनुष्य-स्वभावकी विशेषता यही है और उसके विकासका प्रकट उद्देश्य भी यही मालूम होता है कि अपनी प्रकृतिकी मांगों, अपनी हाजतोंकी हुकूमतसे दिन-दिन अधिक स्वतन्त्र होता जाय। बच्चा अपनी स्थूल आवश्यकताओंको रोकना, दबाना सीखता है, वयःप्राप्त स्त्री-पुरुष अपने मनोविकारोंपर विजय प्राप्त करना। सुशिक्षाकी यह योजना कोरी कल्पनाकी उड़ान या व्यावहारिक जीवनके बाहरकी बात नहीं है। हमारी प्रकृतिकी बनावट यही कहती है कि हम अपने संकल्प

या इच्छा-शक्तिके ही अधीन रहें—जो करना चाहें वही करें। जिसे हम 'मिजाज' या स्वभाव कहा करते हैं वह आमतौरसे महज हमारी कमजोरी होता है। जो आदमी सचमुच बलवान है वह जानता है कि कब और कैसे अपनी शक्तियोंसे काम लेना होता है।"

८ : उपसंहार

अब इस लेख-मालाको समाप्त करना चाहिए। श्री ब्यूरोने मालथस[1] के सिद्धान्तकी जो समीक्षा की है उसका अनुसरण हमारे लिए आवश्यक नहीं है। मालथसने इस सिद्धान्तका प्रतिपादन कर अपने जमानेके लोगोंको चौंका दिया था कि दुनियाकी आबादी हदसे ज्यादा हो रही है और मानव-वंशको लुप्त होनेसे बचाना हो तो हमें जरूरतसे ज्यादा बच्चे पैदा करना बंद करना होगा। फिर भी उसने इंद्रिय-संयमका समर्थन किया था। पर उसके सिद्धांतके नये अनुयायी कहते हैं कि अपनी वासनाओंसे लड़ना बेकार बल्कि हानिकारक है। हमें ऐसे रासायनिक द्रव्यों और आलोंसे काम लेना चाहिए जिससे हम उनकी तृप्ति तो करते रहें पर उसके नतीजोंसे बच जायं। श्री ब्यूरो आवश्यकतासे अधिक बच्चे पैदा न करनेके सिद्धांतको स्वीकार करते हैं, पर वह कहते हैं कि यह काम इंद्रिय-संयमके सहारे किया जाय, और जैसा कि हम देख चुके है, दवाओं, यन्त्रों, आलोंके उपयोगका जोरोंसे विरोध करते हैं। इस समीक्षाके बाद उन्होंने श्रमिक वर्गों, मेहनत-मजदूरी करने-वालोंकी दशा और उनमें बच्चोंके जन्मके अनुपात पर विचार किया है और अन्तमें उन साधनोंकी समीक्षा की है जिनसे व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और मनुष्यताके नामपर आज जो भयानक अनीति फैल रही है उसकी रोक-थाम हो सकती है। उन्होंने लोकमतको ठीक रास्ता दिखाने और उसपर चलानेके लिए संघटित प्रयत्न होने और इसमें राज्यके दखल देने—कानूनसे सहायता लेनेकी भी सलाह दी है। पर अन्तमें यही कहा है कि जन-समाजमें धर्म-भावका जगना ही रोगका सच्चा इलाज है। नीति-नाशकी बाढ़

[1] टामस राबर्ट मालथस, ब्रिटिश अर्थशास्त्री, (१७६६-१८३४ ई०)

मामूली उपायोंसे नहीं रोकी जा सकती, खासकर उस दशामें जब व्यभिचार, सद्गुण और सदाचार हमारे मनकी दुर्बलता, अंध-विश्वास या असदाचार भी बनाया जाने लगा हो। कृत्रिम साधनोंसे गर्भ-निरोधके कितने ही समर्थक निःसदेह संयमको अनावश्यक बल्कि हानिकारक भी बताते हैं। ऐसी अवस्थामें धर्मकी सहायता ही जायज मान लिये गए पापको रोकनेमें समर्थ हो सकती है। धर्मको यहां संकीर्ण साम्प्रदायिक अर्थमें न लेना चाहिए। सच्चा धर्म व्यष्टि और समष्टि दोनोंके जीवनमें जितनी उथल-पुथल मचाता है उतना और कोई नहीं मचा सकता। धर्म-भावके जागनेका अर्थ व्यक्तिके जीवनमें क्रान्ति होना, उसका रूप बदल जाना, उसे नया जीवन मिलना होता है। और कोई ऐसी महाशक्ति ही फ्रांसको विनाशके उस गढ़ेमें गिरनेसे बचा सकती है जिसकी ओर श्री ब्यूरोकी रायमें वह अग्रसर हो रहा है।

पर अब हमें श्री ब्यूरो और उनकी पुस्तकसे छुट्टी लेनी ही होगी। फ्रांसकी स्थिति हिंदुस्तानकी तरह नहीं है; हमारी समस्या बहुत-कुछ भिन्न है। गर्भ-निरोधके साधनोंका उपयोग अभी यहां देश-व्यापी नहीं बना है। यह बुराई अभी अकेले शिक्षित-वर्गमें प्रविष्ट हुई है और उसे भी छू-भर पाई है। भारतमें उनका व्यवहार होनेके लिए मेरी समझसे एक भी कारण नहीं बताया जा सकता। मध्यम-वर्गके दम्पती क्या सचमुच बच्चोंकी बाढ़से परेशान हैं ? कुछ व्यक्तियोंके उदाहरण यह साबित करनेके लिए काफी नहीं हो सकते कि मध्यवित्त वर्गमें जरूरतसे बहुत ज्यादा बच्चे पैदा हो रहे है। यहां तो मैं देखता हूं कि विधवाओं और बालवधुओंके लिए ही इन साधनोंके उपयोगकी आवश्यकता बताई जाती है। इस प्रकार विधवाओंके विषयमें तो उनका गुप्त सहवास नहीं, बल्कि अवैध सन्तानकी उत्पत्ति रोकना हमें अभीष्ट है और बाल-वधुओंके मामलेमें कोमल वयकी बालिकापर बलात्कार होना नहीं, बल्कि उसे गर्भ रह जाना ही वह चीज है जिससे हम डरते हैं। इसके बाद रह जाते हैं रोगी, दुर्बल, पुरुषोचित गुणोंसे रहित युवक; जो चाहते हैं कि अपनी पत्नी या पराई स्त्रीके साथ शक्ति-भर विषय-भोग करते रहें; पर इस पाप-कर्मके परिणाम उन्हें न भुगतने पड़ें।

उनसे मैं यह कहनेका साहस कर सकता हूं कि भारतीय जनताके इस महा-समुद्रमें ऐसे स्त्री-पुरुष इने-गिने ही निकलेंगे, जो बल-वीर्य सम्पन्न होते हुए भी चाहते हैं कि हम सहवासका सुख तो लें परबच्चोंका बोझ उठानेसे बच जायं। अपने उदाहरणोंका ढिढोरा पीटकर उन्हें इस क्रियाकी आवश्यकता सिद्ध करनेका यत्न और उसकी वकालत न करनी चाहिए, जिसका व्यापक प्रचार इस देशमें हुआ तो यहांके युवक वर्गका सर्वनाश होना निश्चत है। अति कृत्रिम शिक्षा-प्रणालीने हमारे युवकोंको शरीर और मनके बलसे योंही वंचित कर रखा है, हममेसे बहुतेरे बचपनमें ब्याहे हुए मां-बापकी संतान हैं। स्वास्थ्य और शौचके नियमोंकी उपेक्षाने हमारे शरीरको घुन लगा दिया है। हमारी गलत, पोषक तत्त्वोंसे रहित और उत्तेजक मसालोंसे भरी खूराकने हमारी पाचन-शक्तिका दिवाला निकाल दिया है। अतः हमें गर्भ-निरोधके साधनोंसे काम लेनेकी शिक्षा और अपनी पशु-वृत्तिकी तृप्तिमें सहायताकी आवश्यकता नहीं है। बल्कि उस वासनाको वशमें करने और कुछ लोगोंको जिन्दगी-भरके लिए ब्रह्मचर्य-व्रत ले लेनेकी शिक्षा लगातार मिलते रहनेकी आवश्यकता है। उपदेश और उदाहरण दोनोंसे हमें यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि ब्रह्मचर्य सर्वथा चलने लायक, और अगर हमें तन-मनसे अधमरा बनकर नहीं जीना है तो अत्यावश्यक व्रत है। यह बात पुकार-पुकारकर हमारे कानोंमें डाली जानी चाहिए कि अगर हमें बौनोंकी जाति नहीं बनना है तो जो प्राण-शक्ति हमारे पास बच रही है और जिसे हम नित्य नाश कर रहे हैं उसका संचय करना और उसे बढ़ानेका यत्न करना होगा। हमारी युवती विधवाओंको गुप्त व्यभिचारकी शिक्षाकी नहीं, बल्कि इस उपदेशकी आवश्यकता है कि साहसके साथ सामने आकर समाजसे पुनर्विवाहकी मांग करें, जिसका उन्हें भी उतना ही अधिकार है जितना विधुर युवकोंको। हमें ऐसा लोकमत बनाना है जिसमें अबोध, अवय-प्राप्त बच्चोंका ब्याह नामुमकिन हो जाय। हमारे विचार-संकल्पकी अस्थिरता, हमारा कड़ी मेहनत और लगकर काम करनेसे भागना, हमारे शरीरका कड़ी और लगातार मेहनतके अयोग्य होना, बड़ी शानसे शुरू किए गए हमारे कामोंका बैठ जाना, नई बात सोचनेकी शक्तिका अभाव यह सब हमारे यहां आम हो

रहा है, और इनका प्रधान कारण अत्यधिक वीर्य-नाश ही है। मैं आशा करता हूं कि नवयुवक अपने मनको यह भुलावा न देंगे कि बच्चे न जनमें तो संभोगसे कोई हानि नहीं होती, कोई कमजोरी नहीं आती। सच यह है कि गर्भ-स्थितिपर अस्वाभाविक रोक लगाकर किया जानेवाला संभोग उस संभोगसे कहीं अधिक शक्तिका क्षय करता है, जो उस कामकी जिम्मेदारी पूरी तरह समझते हुए किया जाय।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः"

हमारा मन यह मान ले कि काम-वासनाकी तृप्ति करनेमें कोई हानि और पाप नहीं है तो हम उसकी लगाम ढीली कर देना पसन्द करेंगे और फिर उसको रोकनेकी शक्ति ही हममें न रह जायगी। पर अगर हम अपने-आपको यह समझायें कि इस प्रकारका विषय-भोग हानिकर, पापमय और अनावश्यक है और उसकी इच्छा दबाई जा सकती है, तो हमें मालूम होगा कि अपने मन-इन्द्रियोंको काबूमें रखना सर्वथा शक्य बात है। नई सचाई और तथोक्त मानव स्वाधीनताके बहाने मदमत्त पश्चिमी स्वच्छन्द कामुकताकी जो कड़ी शराबके करावे हमारे सामने लाकर धर रहा है उससे हमें होशियार रहना चाहिए। उलटा अपने पुरखोंका प्राचीन ज्ञान अब हमारे लिए बेकार हो गया हो तो पश्चिमकी उस शांत-गम्भीर वाणीको ही सुनें जो वहांके ज्ञानीजनोंके बहुमूल्य अनुभवोंसे छनकर जब-तब हमतक पहुंच जाया करती है।

चार्ली[1] एंड्रयजने श्री विलियम लाफ्ट्स हेयरका एक ज्ञान-गर्भ लेख मेरे पास भेजा है जो 'ओपेन कोर्ट' नामक मासिक पत्रके मार्च १९२६ के अंकमें प्रकाशित हुआ था। लेखका विषय 'जनन और पुनर्जनन' है और वह तर्क-युक्तियोंसे पूर्णपोषित शास्त्रीय लेख है। लेखकने दिखाया है कि सभी सप्राण पिण्डों, सभी प्राणियोंकी देहोंमें दो तरहकी क्रियाएं सदा होती रहती है—शरीरको बनानेके लिए भीतरी उत्पादन और वंश-रक्षाके लिए बाह्य उत्पादन। पहली

---

१. स्वर्गीय श्री सी० एफ० एंड्रूज

क्रियाको वह पुनर्जनन (रीजेनरेशन) और पिछलीको जनन (जेन-रेशन) कहता है। "पुनर्जननकी क्रिया — भीतरी उत्पादन व्यक्ति-जीवनका आधार है, इसलिए आत्यावश्यक और मुख्य कार्य है। जनन-क्रिया कोषोंके आधिक्यका परिणाम है, इसलिए गौण कार्य है।······जीवनका नियम है कि पहले पुनर्जननके लिए बीज-कोषोंका पोषण किया जाय, फिर जननके लिए। पोषणकी कमी हो तो पुनर्जननकी क्रिया पहले होगी और जननका काम बन्द रखा जायगा। इससे हम जान सकते हैं कि जनन क्रियाके विरामकी जड़ कहां है और वह कहांसे चलकर हमारे ब्रह्मचर्य और तपस्याके जीवन तक पहुंची है। आन्तरिक उत्पादनकी क्रिया कभी बन्द रह ही नहीं सकती, उसके बन्द रहनेका अर्थ मृत्यु होगा। यह सूत्र हमें बताता है कि "मृत्यु अपने स्वाभाविक रूपमें क्या चीज है।" पुनर्जनन क्रियाकी शास्त्रीय विवेचना-के बाद श्री हेयर कहते हैं—"सभ्य समाजमें स्त्री-पुरुषका संयोग अगली पीढ़ीको पैदा करनेकी आवश्यकतासे कहीं अधिक होता है। इससे आन्तरिक पुनर्जनन-शरीरके पोषणकी क्रियामें बाधा पड़ती है और इसका फल रोग, मृत्यु और दूसरी खराबियाँ होती हैं।"

जिस आदमीको हिन्दू दर्शनका थोड़ा भी परिचय होगा उसे श्री हेयरके निबन्धके इस पैराग्राफका भाव समझानेमें कठिनाई न होगी—

"पुनर्जनन यांत्रिक क्रिया—बेजान कलके पुरजोंका हिलना न है और न हो सकता है। वह तो जीव-सृष्टिमें कोषके प्रथम विभाजनकी तरह प्राण या जीवनका अस्तित्व बतानेवाला व्यापार है। अर्थात् वह कर्त्तामें बुद्धि और संकल्पकी शक्ति होनेकी सूचना देता है। प्राण-तत्त्वका विभाजन और बिलगाव—उसका विशिष्ट कार्योंकी योग्यता प्राप्त करना—शुद्ध यांत्रिक क्रिया है, यह बात तो सोची भी नहीं जा सकती। इसँमें सन्देह नहीं कि जीवनकी येमूलभूत क्रियाएं हमारी वर्तमान चेतनासे इतनी दूर जा पड़ी हैं कि कोई बुद्धिकृत या सहज संकल्प उनका नियमन करता है, यह नहीं जान पड़ता। पर क्षण भरके विचारसे ही यह बात स्पष्ट हो जायगी कि पूरी बाढ़को पहुंचे हुए मनुष्यका संकल्प जिस तरह उसकी बाह्य चेष्टाओं और क्रियाओंका संचालन, बुद्धिके निर्देशानुसार करता है, वैसे ही यह भी मानना

होगा कि आरम्भमें होनेवाली शरीरके क्रमिक संघटनकी क्रियाएं भी, अपनी परिस्थितिकी सीमाओंके अंदर, एक प्रकारकी बुद्धिकी रहनुमाईमें काम करनेवाली एक प्रकारकी इच्छा-शक्ति या संकल्पके द्वारा परिचालित होती हैं। इस बुद्धिको मानस शास्त्र के पंडित अचेतन मन या अन्तर-चेतना कहने लगे हैं। यह हमारी व्यष्टि-सत्ता, हमारे आत्माका ही एक अंग है जो हमारे साधारण चिन्तनसे लगाव न रखते हुए भी अपने निजके कर्तव्योंके विषयमें अतिशय जागरूक और सावधान रहता है। हमारी बाह्य चेतना सुषुप्ति, बेहोशी आदिमें सो जाती है, पर यह कभी एक क्षणके लिए भी आंखें नहीं मूंदती।"

केवल वासना-तृप्तिके लिए किये जानेवाले संभोगसे हमारी सत्ताके अचेतन और अधिक स्थायी अंगकी जो लगभग अपूरणीय हानि हो रही है उसकी माप-तौल कौन कर सकता है? पुनर्जननका फल मरण है। "मैथुन पुरुषके लिए मूलतः क्षयकी क्रिया—मृत्युकी ओर प्रगति है, और प्रसव स्त्रीके लिए।" इसीलिए लेखकका कहना है कि "पूर्ण ब्रह्मचर्य या ब्रह्मचर्य-सदृश संयमके पालनका पुरस्कार बलवीर्य और आरोग्य होता है।" "बीजकोषोंको शरीर-पोषणके कार्यसे हटाकर सन्तानोत्पादन या केवल वासना-तृप्तिके लिए व्यय करना शरीरके अवयवोंको उस पूंजीसे वंचित कर देता है जिससे वे अपनी रोजकी छीजन पूरी कर सकते है। फलतः कुछ दिनोंमें वे अशक्त हो जाते हैं।" "ये शारीरिक तथ्य ही व्यक्तिके काम-संयमका आधार हैं, जो हमें वासनाके पूर्ण दमनकी नहीं तो उसकी संयत तृप्तिकी शिक्षा अवश्य देते हैं—कम-से-कम इतना तो बता ही देते हैं कि संयमका मूल कहां है।

लेखक यंत्रों और दवाओंकी सहायतासे. गर्भ-निरोधका विरोधी है यह तो हम समझ ही सकते हैं। उसका कहना है—"इससे अपनी वासनाको दबानेके लिए कोई बुद्धिसंगत हेतु नहीं रह जाता, और यह पति-पत्नीके लिए जबतक भोगेच्छा निर्बल नहीं हो जाती या बुढ़ापा नहीं आ जाता, तबतक वीर्य-नाश करते रहनेका दरवाजा खोल देता है। इसके सिवा इसका बुरा असर वैवाहिक संबंधके बाहर भी पड़े बिना नहीं रहता। यह

अनियमित, अवैध और अफलजनक संतानरहित सम्बन्धका रास्ता खोल देता है, जो आधुनिक उद्योग-नीति, समाजशास्त्र और राजनीतिकी दृष्टिसे खतरेसे भरी हुई बात है। पर यहां मैं उन हानियोंकी चर्चा नहीं कर सकता। इतना ही कहना काफी होगा कि गर्भ-निरोधके साधनोंके उपभोगसे विवाहित या अविवाहित दोनों दशाओंमें काम-वासनाकी असंयत तृप्तिका सुभीता हो जाता है और शरीर-शास्त्रकी जो दलीलें मैंने ऊपर दी हैं वे ठीक हों तो इससे व्यक्ति और समाज दोनोंकी हानि होनी ही चाहिए।

श्री ब्यूरोने जिस वाक्यसे अपनी पुस्तक समाप्त की है, वह इस योग्य है कि हर एक भारतीय युवक उसे अपने हृदयकी पटियापर लिख ले—

—"भविष्य उन्हीं राष्ट्रोंका है जो सदाचारी हैं।"

: २ :

एकान्तकी बात

ब्रह्मचर्य-पालनके विषयमें तरह-तरहके प्रश्न करनेवाले इतने पत्र मेरे पास आते हैं और इस विषयमें मेरे विचार इतने पक्के हैं कि अपने अनुभवके फल पाठकोंके सामने न रखना उचित न होगा, खासकर राष्ट्रके जीवनकी इस अति नाजुक घड़ीमें।

ब्रह्मचर्य संस्कृत भाषाका शब्द है जिसका अर्थ उसके अंग्रेजी पर्याय 'सेलिबेसी' (अविवाह-व्रत) से अधिक व्यापक है। ब्रह्मचर्य के मानी हैं सम्पूर्ण इन्द्रियोंपर पूर्ण अधिकार। पूर्ण ब्रह्मचारीके लिए कुछ भी अशक्य नहीं। पर यह आदर्श स्थिति है जिस तक बिरले ही पहुंच पाते हैं। इसे ज्यामितिकी रेखा कह सकते हैं, जिसका अस्तित्व केवल कल्पनामें होता है, दृश्य रूपमें कभी खींची ही नहीं जा सकती। फिर भी रेखा-गणितकी यह एक महत्त्वपूर्ण परिभाषा है जिससे बड़े-बड़े नतीजे निकलते हैं। इसी तरह, हो सकता है, पूर्ण ब्रह्मचारी भी केवल कल्पना-जगत्‌में ही मिल सकता हो। फिर भी अगर हम इस आदर्शको सदा अपने मानस-नेत्रोंके सामने न रखें तो हमारी दशा बिना पतवारकी नाव-जैसी हो जायगी। ज्यों-ज्यों हम इस काल्पनिक स्थितिके पास पहुंचेंगे, त्यों-त्यों अधिकाधिक पूर्णता प्राप्त करते जायंगे।

पर तत्काल मैं वीर्य-रक्षाके संकुचित अर्थमें ही ब्रह्मचर्यपर विचार करना चाहता हूं। मैं मानता हूं कि आध्यात्मिक पूर्णताकी प्राप्तिके लिए मन, वाणी और कर्म सबमें पूर्ण संयमका पालन आवश्यक है और जिस राष्ट्रमें ऐसे स्त्री-पुरुष न हों वह रंक है; पर तत्काल मेरा प्रयोजन इतना ही है कि हमारा राष्ट्र इस समय विकासकी जिस मंजिलसे गुजर रहा है उसमें ब्रह्मचर्यको एक अल्पकालिक आवश्यकता सिद्ध करूं।

रोग, अकाल और कंगालीमें हमारा हिस्सा औरोंसे बड़ा है। हमारे लाखों भाइयोंको तो रोज भूखे पेट ही सोना पड़ता है। गुलामीकी चक्कीमें हम ऐसे कौशलके साथ पीसे जा रहे हैं कि बहुतोंको तो पिसनेका पता तक नहीं चलता। यद्यपि आर्थिक, मानसिक और नैतिक शोषणका तिहरा क्षय हमें खा रहा है, फिर भी हम यही मानते हैं कि हम आजादीकी राहमें बराबर आगे बढ़ते जा रहे हैं। दिन-दिन बढ़नेवाला फौजी खर्च, लंकाशायरके कारखानों और दूसरे ब्रिटिश व्यवसायोंके लाभकी दृष्टिसे निर्धारित करनीति और राज्यके विविध-विभागोके संचालनमें बरती जानेवाली शाहाना फिजूलखर्ची—यह सब भारतका एक ऐसा भार बन रहा है जो उसकी गरीबी बढ़ाता और रोगोंसे लड़नेकी शक्ति घटाता जा रहा है। श्रीगोखलेके शब्दोंमें शासनके इस ढंगने राष्ट्रकी बाढ़ इतनी मार दी है कि हमारे बड़े-से-बड़े आदमी भी कमर सीधी रखकर खड़े नहीं हो सकते। अमृतसरमें तो हिन्दुस्तानियोंको पेटके बल रेंगना भी पड़ा। पंजाबका जान-बूझकर किया हुआ अपमान—और हिन्दुस्तानके मुसलमानों-को दिये हुए वचनको उद्धतपनके साथ तोड़नेके लिए माफी मांगनेसे इन्कार हमारे नैतिक दारिद्र्यकी ताजा मिसालें हैं। ये घटनाएं सीधे हमारी आत्मापर आघात कर रही हैं। इन दोनों अन्यायोंको हमने सह लिया तो राष्ट्रको नपुंसक बना देनेकी क्रियाकी पूर्ति हो जायगी।

क्या हम लोगोंके लिए जो स्थितिको जानते, समझते हैं, ऐसे चरित्र-नाशक वायु-मण्डलमें बच्चे पैदा करना मुनासिब है? जबतक हम दीन-असहाय, रोगी और क्षुधा-पीड़ित हैं तबतक हम बच्चे पैदा करके केवल गुलामों और मरियलोंकी ही तादाद बढ़ायेंगे। भारत जबतक स्वाधीन और ऐसा राष्ट्र नहीं हो जाता, जो साधारण ही नहीं अकालके समय भी अपना पेट भर लेनेमें समर्थ हो और जो मलेरिया, हैजा, इनफ्लुएंजा और दूसरी अनेक बीमारियोंसे अपना बचाव करना जानता हो, तबतक हमें बच्चे पैदा करनेका हक नहीं है। इस देशमें किसीके घर बच्चे पैदा होनेकी खबर सुनकर मेरे दिलमें जो दुःख होता है उसे मैं पाठकोंसे छिपा नहीं सकता। स्वेच्छाकृत संयमके द्वारा सन्तानोत्पादन रोकनेकी संभावनापर

मैंने बरसों विचार कियार किया है और इस संभावनासे मुझे सन्तोष हुआ है। हिन्दुस्तान आज अपनी मौजूदा आबादीका बोझ उठानेके काबिल भी नहीं है, इसलिए नहीं कि उसकी आबादी बहुत ज्यादा बढ़ गई है बल्कि इसलिए कि उसकी गरदन ऐसे विदेशी राजके जुएके नीचे है जिसने उसके जीवन-रसको अधिकाधिक चूसते जाना ही अपना धर्म मान रखा है।

सन्तानोत्पादन किस तरह रोका जा सकता है? यह होगा यूरोपमें काममें लाये जानेवाले नीति-नाशक बनावटी प्रतिबंधोंसे नहीं, बल्कि नियम-बद्ध जीवन और मन-इन्द्रियोंको काबूमें रखनेके अभ्याससे। मां-बापका फर्ज़ है कि अपने बच्चोंको ब्रह्मचर्य-पालनकी शिक्षा दें। हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार लड़केका ब्याह कम-से-कम २५ सालकी उम्रमें होना चाहिए। अपने देशकी माताओंसे अगर हम यह मनवा सकें कि बालक-बालिकाओंको विवाहित जीवनके लिए तैयार करना पाप है तो इस देशमें होनेवाले आधे ब्याह अपने आप बंद हो जायंगे। हमें इस वहमको भी दिलसे निकाल देना चाहिए कि इस देशकी गरम जलवायुके कारण लड़कियां जल्दी ऋतुमती हो जाती हैं। इससे बड़ा अंधविश्वास मैंने दूसरा नहीं देखा। मैं यह कहनेको तैयार हूं कि जल्दी या देरसे जवान होनेपर जलवायुका कुछ भी असर नहीं होता। जो चीज हमारे बालक-बालिकाओंको वक्तसे पहले जवान बना देती है वह है हमारे कौटुम्बिक जीवनके आस-पास रहनेवाला मानसिक और नैतिक वातावरण। माताएं और घरकी दूसरी स्त्रियां अबोध बच्चोंको यह सिखा देना अपना धर्म समझते हैं कि इतने बरसके होनेपर तुम दूल्हा बनोगे या तुम्हें ससुराल जाना होगा। वे निरे बच्चे, बल्कि मांकी गोदमें, होते हैं तभी उनकी सगाई कर दी जाती है। उन्हें जो खाना खिलाया और कपड़े पहनाये जाते हैं वे भी वासनाओंको जगानेमें सहायक होते हैं। हम उन्हें गुड़ियोंकी तरह सजाते हैं, उनके नहीं बल्कि अपने सुखके लिए और अपना बड़प्पन दिखानेके लिए। मैं बीसों लड़कोंका पालन-पोषण कर चुका हूं। उन्हें जो कपड़े भी दिये गए उन्होंने बिना किसी कठिनाईके पहन लिए और उन्हींसे खुश रहे। हम उन्हें हर तरहकी गर्म और उत्तेजना पैदा करनेवाली चीजें भी खिलाते रहते हैं। हमारा अंधा प्रेम यह नहीं देखता

कि वे क्या और कितना पचा सकते हैं । इन सबका परिणाम निश्चय ही यह होता है कि हम समयसे पहले जवान होते, समयसे पहले मां-बाप बनते और समयसे पहले ही परलोकको पलायन कर देते हैं। मां-बाप अपने व्यवहारसे जो वस्तु-पाठ बच्चोंके सामने रखते हैं उसे वे आसानीसे सीख लेते हैं। अपनी वासनाओंकी लगाम ढीली छोड़कर वे अपने बच्चोंके सामने संयम-रहित भोगका नमूना बनाते हैं। हर नये बच्चेके जन्मपर उछाव-बधाव होता है । अचरजकी बात तो यह है कि ऐसे वातावरणमें रहकर भी हम और अधिक असंयमी नहीं हुए ।

मुझे इस बातमें लेश-मात्र भी शंका नहीं कि हमारे देशके स्त्री-पुरुष सभी देशका भला चाहते हैं और यह चाहते हैं कि हिन्दुस्तान सबल, सुन्दर और सुगठित शरीरवाले स्त्री-पुरुषोंका राष्ट्र बने, तो उन्हें पूर्ण संयमका पालन करना और फिलहाल तो बच्चे पैदा करना बंद कर ही देना चाहिए। मैं नवविवाहित पति-पत्नियोंको भी यही सलाह देता हूं । कोई काम करके छोड़ देनेसे उसे बिलकुल ही न करना आसान होता है। वैसे ही जैसे एक पियक्कड़ या थोड़ी शराब पीनेवालेके लिए उसका त्याग कठिन और जिसने कभी उसे मुंह न लगाया हो उसके लिए आजन्म उससे दूर रहना आसान होता है । गिरकर उठनेसे सीधा खड़ा रहना हजार दरजे आसान होता है । यह कहना गलत है कि संयमके उपदेशके अधिकारी केवल वही हैं जिनकी वासनाएं परितृप्त हो चुकी हैं । वैसे ही जिसका तन-मन शिथिल हो गया है उसको भोग-त्यागका उपदेश देनेका कोई अर्थ नहीं । मेरा कहना तो यह है कि चाहे हम जवान हो या बूढ़ें, भोगसे अघा चुके हों या न अघाये हों, तत्काल हमपर फर्ज है कि अपनी गुलामीके उत्तराधिकारी पैदा करना बंद कर दें ।

देशके दम्पतियोंको मैं यह भी बता देना चाहता हूं कि वे साथीके हककी दलीलके भुलावेमें न पड़ें । रजामंदी भोगके लिए दरकार होती है, संयमके लिए नहीं । यह बिलकुल खुला सत्य है ।

हम एक शक्तिशाली सरकारके साथ जीवन-मरणके संग्राममें संलग्न हैं । उसमें हमें अपना सारा शारीरिक, भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक

बल लगाना होगा। यह बल हमें तबतक मिल नहीं सकता जबतक कि हम उस चीजको बहुत किफायतसे न खर्च करें, जो हमारे लिए सबसे ज्यादा कीमती होनी चाहिए। हमारे व्यक्तिगत जीवनमें यह पवित्रता न आई तो हम सदा गुलामोंका राष्ट्र बने रहेंगे। हम यह सोचकर अपने-आपको धोखा न दें कि चूंकि अंग्रेजोंकी शासन-पद्धतिको हम पापमय मानते हैं इसलिए वैयक्तिक सद्गुण सदाचारमें भी हमें उनको अपनेसे हीन, तिरस्करणीय समझना चाहिए। चरित्रके मूलभूत सद्गुणोंको वे आध्यात्मिक साधनाका नाम देकर उनका ढिंढोरा नहीं पीटते ; पर कम-से-कम शरीरसे तो वे उनका भरपूर पालन करते हैं। अपने देशके राजनीतिक कार्योंमें लगे हुए अंग्रेजोंमें जितने ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियां हैं उतने हमारे यहां नहीं हैं। ब्रह्मचर्य व्रत लेनेवाली स्त्रियां तो हममें एक तरहसे हैं ही नहीं। थोड़ी-सी जोगिनें-बैरागिनें अवश्य हैं, पर देशके जीवनपर उनका कोई असर नहीं। यूरोपमें हजारों स्त्रियां एक साधारण सदाचारकी भांति ब्रह्मचर्यका जीवन बिताती हैं।

अब मैं पाठकोंके सामने थोड़ेसे सीधे-सादे नियम रखता हूं जो अकेले मेरे ही नहीं मेरे अनेक साथियोंके भी अनुभवके आधारपर बनाये गए हैं :

१. लड़के-लड़कियोंका पालन-पोषण सरल और प्राकृतिक ढंगसे तथा मनमें इस बातका पक्का विश्वास रखकर करना चाहिए कि वे निष्पाप हैं और सदा बने रह सकते हैं।

२. मिर्च-मसाले जैसी गरमी और उत्तेजना पैदा करनेवाले और मिठाइयां, तली-भुनी चीजों, जैसे पाचनमें पड़नेवाले पदार्थोंसे परहेज करना चाहिए।

३. पति और पत्नीको अलग-अलग कमरोंमें रहना और एकान्तसे बचना चाहिए।

४. देह और मन दोनोंको सदा अच्छे, स्वास्थ्य-जनक कामों, विचारोंमें लगाए रखना चाहिए।

५. जल्दी सोने और जल्दी उठनेके नियमका कड़ाईके साथ पालन किया जाय।

६. हर तरहके गन्दे साहित्यसे परहेज किया जाय। मलिन विचारोंका इलाज पवित्र विचार हैं।

७. वासनाओंको जगानेवाले थियेटर, सिनेमा और नाच-तमाशोंसे बचना चाहिए।

८. स्वप्न-दोषसे घबरानेकी जरूरत नहीं; तन्दुरुस्त आदमीके लिए उसके बाद ठंडे जलसे नहा लेना इस रोगका अच्छे-से-अच्छा इलाज है। यह कहना गलत है कि कभी-कभी संभोग कर लेनेसे स्वप्नमें वीर्य-पात बंद हो जाता है।

९. सबसे बड़ी बात यह है कि पति-पत्नीके बीच भी ब्रह्मचर्यका पालन असाध्य या अति कठिन न माना जाय; उल्टा संयमको जीवनकी साधारण और स्वाभाविक स्थिति मानना चाहिए।

१०. प्रतिदिन पवित्रताके लिए सच्चे दिलसे प्रभुसे प्रार्थना की जाय तो आदमी दिन-दिन अधिकाधिक पवित्र होता जायगा।

: ३ :

ब्रह्मचर्य

इस विषयपर कुछ लिखना आसान नहीं है। पर इस विषयमें मेरा अपना अनुभव इतना विशाल है कि उसकी कुछ बूंदें पाठकोंके सामने रखनेकी इच्छा सदा बनी रहती है। मुझे मिली हुई कुछ चिट्ठियोंने इस इच्छाको और भी बढ़ा दिया है।

एक भाई पूछते हैं—"ब्रह्मचर्यके मानी क्या हैं? क्या उसका पूर्ण पालन शक्य है? और है तो क्या आप उसका पालन करते हैं?"

ब्रह्मचर्यका पूरा और सच्चा अर्थ है ब्रह्मकी खोज। ब्रह्म सबमें बसता है इसलिए यह खोज अन्तर्ध्यान और उससे उपजनेवाले अन्तर्ज्ञानके सहारे होती है। अन्तर्ज्ञान इन्द्रियोंके संपूर्ण संयमके बिना अशक्य है। अतः मन वाणी और कायासे संपूर्ण इन्द्रियोंका सदा सब विषयोंमें संयम ब्रह्मचर्य है।

ऐसे ब्रह्मचर्यका संपूर्ण पालन करनेवाली स्त्री या पुरुष नितान्त निर्विकार होता है। अतः ऐसे स्त्री-पुरुष ईश्वरके पास रहते हैं। वे ईश्वर-तुल्य होते हैं।

ऐसे ब्रह्मचर्यका कायमनोवाक्यसे अखण्ड पालन हो सकनेवाली बात है, इस विषयमें मुझे तिल-भरभी शंका नहीं; पर मुझे कहते दुःख होता है कि इस संपूर्ण ब्रह्मचर्यकी स्थितिको मैं अभी नहीं पहुंच सका हूं। पहुंचनेका प्रयत्न सदा चल रहा है। और इस देहमें ही वह स्थिति प्राप्त कर लेनेकी आशा भी मैंने नहीं छोड़ी है। कायापर मैंने काबू पा लिया है, जाग्रत अवस्थामें मैं सावधान रह सकता हूं। वाणीके संयमका यथायोग्य पालन करना भी सीख लिया है। पर विचारोंपर अभी बहुत काबू पाना बाकी है। जिस समय जो बात सोचनी हो उस क्षण वही बात मनमें रहनी चाहिए। पर ऐसा न होकर और बातें भी मनमें आ जाती हैं इससे विचारोंका द्वन्द्व मचा ही रहता है।

फिर भी जाग्रत अवस्थामें मैं विचारकोंका एक-दूसरेसे टकराना रोक सकता हूं। मैं उस स्थितिको पहुंचा हुआ माना जा सकता हूं जब गन्दे विचार मनमें आ ही न सकें। पर निद्रावस्थामें विचारके ऊपर मेरा काबू कम रहता है। नींदमें अनेक प्रकारके विचार मनमें आते हैं, अनसोचे सपने भी दिखाई देते हैं। कभी-कभी इसी देहसे की हुई बातोंकी वासना भी जग उठती है। ये विचार अगर गन्दे हों तो स्वप्नदोष होता है। यह स्थिति विकारयुक्त जीवनकी ही हो सकती है।

मेरे विकारोंके विचार क्षीण होते जा रहे हैं। पर अभी उनका नाश नहीं हो पाया है। अपने विचारोंपर मैं पूरा काबू पा सका होता तो पिछले दस बरसके बीच जो तीन कठिन बीमारियां मुझे हुईं, फेफड़ेकी झिल्लीका शोथ (प्लूरिसी), अतिसार और आंतका फोड़ा (अपेंडिसाइटिस), वे न हुई होतीं। मैं मानता हूं कि निरोग आत्माका शरीर भी निरोग ही होता है। अर्थात् ज्यों-ज्यों आत्मा निरोग-निर्विकार होती जाती है त्यों-त्यों शरीर भी निरोग होता जाता है। पर निरोग शरीरके मानी बलवान शरीर नहीं होते। बलवान आत्मा क्षीण देहमें ही बसती है। आत्म-बल ज्यों-ज्यों बढ़ता है, शरीर त्यों-त्यों क्षीण होता जाता है। पूर्णतया निरोग शरीर भी बहुत दुबला-पतला हो सकता है। बलवान शरीरमें अक्सर रोग तो रहता ही है। ऐसा न भी हो तो वैसे शरीरके लोगोंकी छूत तुरंत लग जाती है। पर, पूरी तरह निरोग देहको छूत लग ही नहीं सकती। शुद्ध रक्तमें ऐसे कीड़ोंको दूर रखनेका गुण होता है।

यह अद्भुत दशा तो दुर्लभ ही है। नहीं तो मैं अबतक उसको पहुंच चुका होता, क्योंकि मेरी आत्मा गवाही देती है कि इस स्थितिको प्राप्त करनेके लिए जो उपाय करने चाहिए उनके करनेमें मैं पीछे रहनेवाला नहीं हूं। ऐसी एक भी बाहरी वस्तु नहीं है जो मुझे उससे दूर रखने में समर्थ हो। पर पिछले संस्कारोंको धो डालना सबके लिए सहज नहीं होता। इस तरह लक्ष्यतक पहुंचनेमें देर लग रही है, पर इससे मैंने तनिक भी हिम्मत नहीं हारी है। कारण यह है कि निर्विकार दशाकी कल्पना मैं कर सकता हूं। उसकी धुंधली झलक भी जब-तब पा जाता हूं। और इस रास्तेमें मैं अबतक

जितना आगे बढ़ सकता हूं वह मुझे निराश करनेके बदले आशावान ही बनाता है। फिर भी अगर मेरी आशा फलीभूत हुए बिना मेरा शरीरपात हो जाय तो मैं यह मानूंगा कि मैं विफल हो गया। मुझे जितना विश्वास अपनी इस देहके अस्तित्वका है उतना ही दूसरी देह मिलनेका भी है। इसलिए जानता हूं कि छोटे-से-छोटा प्रयत्न भी व्यर्थ नहीं जाता।

स्वानुभवकी इस चर्चाकी गरज इतनी ही है कि जिन लोगोंने मुझे पत्र लिखे हैं उनके और उन जैसे दूसरे भाइयों के मनमें धीरज रहे और आत्म-विश्वास उत्पन्न हो। सबकी आत्मा एक ही है। सबकी आत्माकी शक्ति भी समान है। अन्तर इतना ही है कि कुछकी शक्ति प्रकट हो चुकी है, दूसरोंकी शक्तिका प्रकट होना अभी बाकी है। प्रयत्न करनेसे उन्हें भी वही अनुभव होगा।

अबतक मैंने व्यापक अर्थवाले ब्रह्मचर्यकी बात कही है। ब्रह्मचर्यका लौकिक अथवा प्रचलित अर्थ तो मन, वचन और कायासे विषयेन्द्रियका संयम-मात्र माना जाता है। यह अर्थ सही है क्योंकि इस संयमका पालन बहुत कठिन माना गया है। स्वादेन्द्रियके संयमपर इतना ही जोर नहीं दिया गया। इससे विषयेन्द्रियका संयम अधिक कठिन हो गया है—लगभग अशक्य हो गया है। इसके सिवा वैद्योंका अनुभव है कि जो शरीर रोगसे अशक्य हो गया है उसमें विषय-वासना अधिक उद्दीप्त रहती है। इससे भी इस रोगग्रस्त राष्ट्रको ब्रह्मचर्यका पालन कठिन लगता है।

मैंने ऊपर दुबले, पर निरोग शरीरकी बात कही है। इसका अर्थ कोई यह न लगाए कि हमें शरीर-बल बढ़ानेका यत्न ही न करना चाहिए। मैंने तो सूक्ष्मतम ब्रह्मचर्यकी बात अपनी अति प्राकृत भाषामें लिखी है, उससे कुछ गलतफहमी हो सकती है। जिसे सब इन्द्रियोंके संपूर्ण संयमका पालन करना है उसे अन्तमें शरीरकी क्षीणताका अभिनन्दन करना ही होगा। शरीरका मोह और ममता जब क्षीण हो जायगी तब शरीर-बलकी इच्छा ही न रहेगी।

पर विषयेन्द्रियको जीतनेवाले ब्रह्मचारीका शरीर अति तेजस्वी और बलवान होना ही चाहिए। यह ब्रह्मचर्य भी अलौकिक वस्तु है। जिसकी

विषय-वासना स्वप्नमें भी नहीं जागती वह जगद्वंद्य है। उसके लिए दूसरे सब संयम सहज हैं, इसमें तनिक भी शंका नहीं।

इसी विषयको लेकर एक दूसरे भाई लिखते हैं—

"मेरी दशा दयनीय है। दफ्तरमें, रास्तेमें, रातमें पढ़ते समय, काम करते हुए और ईश्वरका नाम लेते समय भी वही विचार मनमें आते रहते हैं। विचारोंको किस तरह काबूमें रखूं? स्त्री-मात्रके प्रति मातृभाव कैसे पैदा हो? आंखोंसे शुद्ध वात्सल्यकी किरणें किस तरह निकलें? दूषित विचारोंकी जड़ कैसे उखड़े? ब्रह्मचर्य विषयपर आपका लेख अपने पास रख छोड़ा है। पर इस जगह मुझे उससे जरा भी मदद नहीं मिल रही है।"

यह स्थिति हृदय-द्रावक है। यही स्थिति बहुतोंकी होती है। पर जबतक मन उन विचारोंसे लड़ता रहे तबतक डरनेका कोई कारण नहीं। आंखें दोष करती हों तो उन्हें बंद कर लेना चाहिए। कान दोष करें तो उनमें रुई भर लेनी चाहिए। आंखोंको सदा नीची रखकर चलनेकी रीति अच्छी है। इससे उन्हें और कुछ देखनेका अवकाश ही नहीं रहता। जहां गंदी बातें होती हों या गंदे गीत गाये जा रहे हों वहांसे तुरन्त रास्ता लेना चाहिए। जीभपर पूरा काबू हासिल करना चाहिए।

मेरा अपना अनुभव तो यह है कि जिसने जीभको नहीं जीता वह विषय-वासनाको नहीं जीत सकता। जीभको जीतना बहुत ही कठिन है। पर इस विजयके साथ ही दूसरी विजय मिलती है। जीभको जीतनेका एक उपाय तो यह है कि मिर्च-मसालेका बिलकुल या जितना हो सके त्याग कर दिया जाय। दूसरा उससे अधिक बलवान उपाय यह है कि मनमें सदा यह भाव रखें कि हम केवल शरीरके पोषणके लिए ही खाते हैं, स्वादके लिए कभी नहीं खाते। हम हवा स्वादके लिए नहीं पीते, बल्कि सांस लेनेके लिए पीते हैं। पानी जैसे महज प्यास बुझानेके लिए पीते हैं वैसे ही अन्न केवल भूख मिटानेके लिए खाना चाहिए। हमारे मां-बाप बचपन-से ही हमें इसकी उल्टी आदत लगाते हैं; हमारे पोषणके लिए नहीं बल्कि अपना प्यार दिखानेके लिए हमें तरह-तरहके स्वाद चखाकर हमें बिगाड़ते हैं। इस वातावरणका हमें सामना करना होगा।

पर विषय-वासनाको जीतनेका रामबाण उपाय तो रामनाम या ऐसा कोई और मंत्र है। द्वादशाक्षर मंत्र भी इस कामके लिए अच्छा है जिसकी जैसी भावना हो वैसे ही मंत्रका जप वह करे। मुझे बचपनसे रामनाम जपना सिखाया गया था और उसका सहारा मुझे मिलता ही रहता है, इसलिए मैंने उसे सुझाया है। हम जो मंत्र अपने लिए चुनें उसमें हमें तल्लीन हो जाना चाहिए। जप करते समय भले ही हमारे मनमें दूसरे विचार आया करते हों फिर भी जो श्रद्धा रखकर मंत्रका जप करता ही जायगा उसे अन्तमें विघ्नों पर विजय मिलेगी। इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं कि यह मंत्र उसका जीवन-डोर बनेगा और उसे सभी संकटोंसे उबारेगा। ऐसे पवित्र मंत्रका उपयोग किसीको आर्थिक लाभके लिए कदापि न करना चाहिए। इन मंत्रोंका चमत्कार हमारी नीतिकी रक्षा करनेमें है और ऐसा अनुभव हरएक प्रयत्न करनेवालेको थोड़े ही दिनोंमें हो जायगा। हां, इतना याद रहे कि यह मंत्र तोतेकी तरह न रटा जाय। उसमें अपनी आत्माको पिरो देना चाहिए। तोता यंत्रकी तरह मंत्रको रटता रहताहै। हमें उसे ज्ञान-पूर्वक जपना चाहिए अवांछित विचारोंके निवारणकी भावना और मंत्रमें इसकी शक्ति है यह विश्वास रखकर।

: ४ :

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य

मुझसे ब्रह्मचर्यके विषयपर कुछ कहनेको कहा गया है। कुछ विषय ऐसे हैं जिनपर प्रसंग आनेपर 'नवजीवन'में मैं कुछ लिखा तो करता हूं पर भाषणोंमें उनकी चर्चा शायद ही करता हूं, इसलिए मैं जानता हूं कि ये बातें कहकर नहीं समझाई जा सकतीं और अति कठिन हैं। ब्रह्मचर्य भी वैसा ही विषय है। आप तो जिस ब्रह्मचर्यके बारेमें मुझसे कुछ सुनना चाहते हैं वह सामान्य ब्रह्मचर्य है, जिस ब्रह्मचर्यकी विस्तृत व्याख्या सब इन्द्रियोंका संयम है उसके विषयमें नहीं। पर यह सामान्य ब्रह्मचर्य भी शास्त्रोंमें अतिशय कठिन बताया गया है। यह कथन ९९ प्रतिशत सत्य है, सिर्फ एक फीसदीकी कमी रह गई है। ब्रह्मचर्यका पालन इसलिए कठिन लगता है कि हम उसके साथ-साथ दूसरी इन्द्रियोंका संयम नहीं करते। इन दूसरी इन्द्रियोंमें मुख्य जीभ है। जो जीभको बसमें रखेगा, ब्रह्मचर्य उसके लिए आसान-से-आसान चीज हो जायगा।

प्राणि-शास्त्रका अध्ययन करनेवाले कहते हैं कि पशु ब्रह्मचर्यका जितना पलन करता है मनुष्य उतना नहीं करता और यह सच है। हम इसके कारणकी खोज करें तो देखेंगे कि पशु अपनी जीभपर पूरा-पूरा काबू रखता है, इरादा और कोशिश करके नहीं बल्कि स्वभावसे ही। वह केवल घास-चारेपर गुजर करता है और वह भी इतना ही कि पेट भर जाय। वह जीनेके लिए खाता है, खानेके लिए जीता नहीं। पर हमारा रास्ता तो इसका उलटा ही है। मां बच्चेको तरह-तरहके स्वाद चखाती है, वह मानती है कि अधिक-से-अधिक चीजें खिलाना ही उसे प्यार करनेका तरीका है। ऐसा करके हम चीजोंका जायका बढ़ाते नहीं बल्कि घटाते हैं। स्वाद तो भूखमें रहता है। भूखवालेको सूखी रोटीमें जो स्वाद मिलता है वह बिना

भूखवालेको लड्डूमें नहीं मिलता। हम तो पेटको ठूंस-ठूंसकर भरनेके लिए तरह-तरहके मसाले काममें लोने और विविध व्यंजन बनाते हैं फिर भी कहते हैं कि ब्रह्मचर्य चलता नहीं।

जो आंखें ईश्वरने हमें देखनेके लिए दी हैं उन्हें हम मलिन करते हैं और जो देखनेकी चीजें हैं उन्हें देखना नहीं सीखते। माता क्यों गायत्री न सीखे और बच्चेको न सिखाये? उसके गहरे अर्थमें पैठना उसके लिए जरूरी नहीं। उसका तत्त्व सूर्यकी उपासना है। इतना ही समझकर वह बच्चेसे सूर्यकी उपासना कराये तो काफी है। सूर्यकी उपासना तो सनातनी, आर्य-समाजी सभी करते हैं। सूर्यकी उपासना तो उस महामंत्रका स्थूलतम अर्थ है। यह उपासना क्या है? यही कि हम सिर ऊंचा रखकर सूर्यनारायणके दर्शन और उससे अपनी आंखोंकी शुद्धि करें। गायत्री-मंत्रके रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्होंने हमें बताया है कि सूर्योदयमें जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है उसके दर्शन हमें अन्यत्र नहीं होनेके। ईश्वर-जैसा कुशल सूत्रधार दूसरा नहीं मिल सकता और न आकाशसे अच्छी दूसरी रंगशाला मिल सकती है; पर कौन माता बच्चेकी आंखें धोकर उसे आकाशके दर्शन कराती है? माताके भावोंमें तो अनेक प्रपंच ही रहते हैं। बड़े घरोंमें जो शिक्षा मिलती है उसके फलस्वरूप लड़का शायद बड़ा अफसर हो जाय। पर घरमें जाने-बेजाने बच्चेको जो शिक्षा मिलती है उसमेंसे कितना वह ग्रहण कर लेता है इसका विचार कौन करता है?

मां-बाप हमारे शरीरको ढकते हैं। कपड़ोंसे हमें लाद देते हैं, हमें सजाते, संवारते हैं; पर इससे कहीं हम अधिक सुंदर बन सकते है। कपड़े बदनको ढकनेके लिए हैं, उसे सरदी-गरमीसे बचानेके लिए हैं, उसे सजानेके लिए नहीं। बच्चा सरदीसे ठिठुर रहा है तो हमें चाहिए कि उसे अंगीठीके पास ढकेल दें, मैदानमें दण्ड लगानेके लिए छोड़ दें या खेतमें काम करनेको भेज दें। तभी उसकी देह लोहेकी लाट बनेगी। ब्रह्मचर्यके पालनसे तो वह वज्र-जैसी हो हो जानी चाहिए। हम तो उसके शरीरका नाश कर डालते हैं। घरमें बंद रखकर जो गरमी हम उसे पहुंचाना चाहते हैं उससे तो उसकी त्वचामें ऐसी गरमी पैदा होती है जिसकी उपमा खुजलीसे ही दी

जा सकती है। अपने शरीरको बहुत लाड़-प्यारकर हम उसे बिगाड़ डालते हैं।

यह तो हुई कपड़ोंकी बात। घरमें होनेवाली बातचीतसे भी हम बच्चेके मनपर बुरा असर डालते हैं। उसके ब्याहकी बातें किया करते हैं। जो चीजें उसे देखनेको मिलती हैं उनमें भी बहुतेरी ऐसा ही असर डालनेवाली होती हैं। मुझे तो अचरज इस बातका होता है कि यह सब होते हुए भी हम दुनियामें सबसे बड़े जंगली क्यों न हो गये ? मर्यादाके टूटनेमें सहायक होनेवाली इतनी बातोंके होते हुए भी वह ज्यों-त्यों निबाही जा रही है। ईश्वरने मनुष्योंको कुछ ऐसा बनाया है कि बिगड़नेके लिए अनेक अवसर आते रहनेपर भी वह बच जाता है। यह ईश्वरकी अलौकिक कला है। ब्रह्मचर्यके रास्तेके ये विघ्न हम दूर कर दें तो उसका पालन शक्य ही नहीं बल्कि आसान हो जाता है।

इस दशामें भी हम शरीर-बलमें दुनियाका मुकाबला करनेकी इच्छा रखते हैं। इसके दो रास्ते है—आसुरी और दैवी। आसुरी मार्ग है—शरीर बल बढ़ानेके लिए चाहे जैसे उपाय करना, चाहे जैसे पदार्थोंका सेवन करना, शारीरिक प्रतियोगिता करना, गो-मांस खाना इत्यादि। मेरा एक दोस्त बचपनमें मुझसे कहा करता था कि हमें मांस खाना ही होगा, नहीं तो हम अंग्रेजोंके जैसे तगड़े न हो सकेंगे। गुजरातीके प्रसिद्ध कवि नर्मदाशंकरने भी अपनी एक कवितामें ऐसी ही सलाह दी है। जापानको भी जब दूसरे देशोंका मुकाबला करना पड़ा तब गो-मांस उसके आहारमें शामिल हो गया। यों आसुरी-रीतिसे हमें देह बनानी हो तो ऐसे पदार्थोंका सेवन करना ही होगा।

पर दैवी रीतिसे शरीरका विकास करना हो तो ब्रचह्मर्य उसका एक-मात्र उपाय है, मुझे जब कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं तब मुझे अपने-आपपर दया आती है। यहां मुझे जो मान-पत्र दिया गया है उसमें मैं नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया हूँ। मुझे कहना होगा कि जिसने मान-पत्र लिखा है उसे यह मालूम नहीं कि ब्रह्मचर्य कहते किसे हैं और उसे इसका भी खयाल नहीं कि मुझ जैसा आदमी, जो विवाहित और बाल-बच्चोंवाला है, नैष्ठिक

ब्रह्मचारी कैसे हो सकता है ? नैष्ठिक ब्रह्मचारीको तो न कभी बुखार आता है न कभी सिर-दर्द होता है, कभी खांसी सताती है और न कभी 'अपेंडिसाइटिस' (आंतका फोड़ा) होता है। डाक्टर कहते हैं कि आंतोंमें नारंगीके बीज रह जानेसे भी 'अपेंडिसाइटिस' होता है। पर जिसका शरीर स्वस्थ और निरोग है उसकी आंतोंमें बीज अटक ही नहीं सकते। जब आंतें शिथिल हो जाती हैं तभी इन चीजोंको अपने बलसे बाहर नहीं निकाल सकतीं। मेरी आंतें भी शिथिल हो गई होंगी इसीसे मैं ऐसी कोई चीज न पचा सका हूंगा। बच्चे क्या-क्या चीजें खा जाते हैं माता इसका ध्यान कहां रख सकती है ,पर उनकी आंतोंमें उन्हें पचा लेनेकी स्वाभाविक शक्ति होती है।

इसलिए मैं चाहता हूं कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके पालनका आरोप करके कोई मिथ्याचारी न बने। नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका तेज तो मुझमें जितना है उससे सौ गुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं हूं। हां, होनेकी इच्छा अवश्य है। मैंने तो अपने अनुभवकी कुछ बूंदें आपके सामने रखी हैं जो ब्रह्मचारीकी मर्यादा बताती हैं।

ब्रह्मचर्यका अर्थ यह नहीं है कि मैं स्त्री-मात्रका, अपनी बहनका भी स्पर्श न करूं। ब्रह्मचारी होनेका अर्थ यह है कि जैसे कागज को छूनेसे मेरे मनमें कोई विकार नहीं उत्पन्न होता वैसे ही स्त्रीका स्पर्श करनेसे भी नहीं। मेरी बहन बीमार हो और ब्रह्मचर्यके कारण मुझे उसकी सेवा करनेसे हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य कौड़ी कामका नहीं। मुर्देको छूकर हम जिस अविकार दशाका अनुभव कर सकते हैं उसी अविकार दशाका अनुभव जब किसी परम सुन्दरी युवतीको छूकर भी कर सकें तभी हम सच्चे ब्रह्मचारी हैं। अगर आप यह चाहते हैं कि आपके लड़के ऐसे ब्रह्मचर्यको प्राप्त करें तो इसका अभ्यास-क्रम आप नहीं बना सकते। कोई ब्रह्मचारी ही—चाहे वह मुझ जैसा अधूरा ही क्यों न हो—उसे बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम संन्याससे अधिक ऊंचा आश्रम है। पर हमने उसे गिरा दिया है इसीसे हमारा गृहस्थाश्रम बिगड़ा और वानप्रस्थ आश्रम भी बिगड़ा और संन्यासका तो नाम भी नहीं रहा। आज हमारी दशा ऐसी दीन है।

जो आसुरी मार्ग ऊपर हमने बताया है उसका अनुसरण करके तो पांच सौ सालमें भी हम पठानोंका मुकाबला न कर सकेंगे। हां, दैवी मार्गका अनुसरण किया जाय तो आज ही उनका मुकाबला किया जा सकता है। कारण यह है कि दैवी मार्गके लिए आवश्यक मानसिक परिवर्तन छनभरमें हो सकता है। पर शरीरके बदलनेमें युग लग जाते हैं। इस दैवी मार्गका अनुसरण हम तभी कर सकेंगे जब हमारे पास पूर्वजन्मका पुण्य-बल होगा और हमारे मां-बाप हमारे लिए जरूरी साधन जुटा देंगे।

: ५ :

सत्य बनाम ब्रह्मचर्य

एक मित्र श्री महादेव देसाईको लिखते हैं :

"आपको याद होगा कि कुछ दिन पहले 'नवजीवन' में ब्रह्मचर्य विषयपर एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका आपने 'यंग इंडिया'में उलथा किया। उस लेखमें गांधीजीने स्वीकार किया है कि उन्हें अब भी जब-तब स्वप्न-दोष हो जाया करता है। उसे पढ़ते ही मेरे दिलमें यह बात आई कि ऐसे इकबालोंका असर अच्छा नहीं हो सकता। पीछे मुझे मालूम हुआ कि मेरी शंका निराधार न थी।

"विलायतमें प्रवासके समय प्रलोभनोंके रहते मैंने और मेरे मित्रोंने अपने चरित्रपर धब्बा नहीं आने दिया। हम मांस, मद्य और स्त्रीसे बिलकुल दूर रहे। पर गांधीजीका लेख पढ़नेके बाद एक मित्रने हिम्मत हार दी और मुझसे कहा—'ऐसे भगीरथ प्रयासके बाद भी जब गांधीका यह हाल है तो हमारी क्या बिसात? ब्रह्मचर्य-पालनकी कोशिश करना बेकार है। गांधीजीकी स्वीकारोक्तिने मेरी दृष्टि बिलकुल ही बदल दी। आजसे मुझे डूबा समझो।' थोड़ी हिचकके साथ मैंने उन्हें समझानेकी कोशिश की। वही दलील उसके सामने रखी जो आप या गांधीजी देते, 'अगर यह रास्ता गांधीजी जैसे पुरुषोंके लिए भी इतना कठिन है तो हम जैसोंके लिए तो कहीं ज्यादा कठिन होना चाहिए। इसलिए हमें दुगनी कोशिश करनी चाहिए।' पर सारी दलील बेकार गई। जिस चरित्रपर अबतक कलुषका छींटा भी न पड़ा था वह कीचड़से सन गया। अगर कोई आदमी गांधीजीको उनके पतनके लिए जिम्मेदार ठहराए तो वह या आप उसे क्या जवाब देंगे?

"जबतक मेरे सामने ऐसा एक ही उदाहरण था तबतक मैंने आपको

नहीं लिखा। मुमकिन है, आप यह कहकर मुझे टाल देते कि यह दृष्टान्त तो अपवाद-रूप है। पर इधर मुझे इस तरहके और भी उदाहरण मिले हैं और मेरी आशंका सर्वथा साधार सिद्ध हुई है।

"मैं जानता हूं, कुछ बातें ऐसी है जो गांधीजीके लिए तो बहुत आसान हैं, मगर मेरे लिए बिलकुल नामुमकिन हैं। पर ईश्वरके अनुग्रहसे मैं यह भी कह सकता हूं कि कुछ बातें जो गांधीजीके लिए भी अशक्य हों मेरे लिए शक्य हो सकती हैं। इस ज्ञान या गर्वने ही मुझे अबतक गिरनेसे बचाया है, नहीं तो गांधीजीके उक्त इकबालने मेरे खतरेसे बाहर होनेके विश्वासकी जड़ पूरी तरह हिला दी है।

"क्या आप कृपाकर गांधीजीका ध्यान इस ओर खींचेंगे, खासकर जब वह अपनी आत्म-कथा लिखनेमें लग रहे हैं? सत्य और नग्न सत्यको कहना बेशक बहादुरीकी बात है; पर दुनिया और 'नवजीवन' तथा 'यंग-इंडिया'के पाठक इससे उनके बारेमें गलत राय कायम करेंगे। मुझे डर है कि एकके लिए जो अमृत है वह दूसरेके लिए विष न हो जाय।"

यह शिकायत पाकर मुझे अचरज नहीं हुआ। असहयोग-आन्दोलन जब पूरे जोरपर था और उसके दरमियान जब मैंनें अपनेसे 'समझकी एक भूल' हो जानेकी बात स्वीकारकी तब एक मित्रने निर्दोष भावसे मुझे लिखा—"अगर यह भूल थी तो आपको उसे कबूल नहीं करना चाहिए था। लोगोंको यह मानने के लिए उत्साहित करना चाहिए कि दुनियामें कम-से-कम एक आदमी तो है जो भूल-भ्रमसे परे है। लोग आपको ऐसा ही मानते थे। आपके भूल-स्वीकारसे वे हिम्मत हार देंगे।" यह आलोचना पढ़कर मुझे हँसी आई और रोना भी। हँसी आई लिखनेवालेके भोलेपनपर। पर लोगोंको एक पतनशील प्राणीके भूल-भ्रमसे परे होनेका विश्वास दिलाया जाय, यह विचार ही मेरे लिए असह्य था। जो आदमी जैसा है उसे वैसा जाननेमें सदा सबका हित है इससे कभी कोई हानि नहीं होती। मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे झट अपनी भूलें स्वीकार कर लेनेसे लोगोंका हर तरह हित ही हुआ है। कम-से-कम मेरा तो इससे उपकार ही हुआ है।

यही बात मैं बुरे सपनोंका होना स्वीकार करनेके बारेमें भी कह सकता

हूं। पूर्ण ब्रह्मचारी न होते हुए भी मैं होनेका दावा करूं तो इससे दुनियाकी बड़ी हानि होगी। यह ब्रह्मचर्यकी उज्ज्वलताको मलिन और सत्यके तेजको धूमिल कर देगा। झूठे दावे करके ब्रह्मचर्यका मूल्य घटानेका साहस मैं कैसे कर सकता हूं? आज मैं यह देख सकता हूं कि ब्रह्मचर्य-पालनके लिए जो उपाय मैं बताता हूं वे काफी नहीं साबित होते, वे हर जगह कारगर नहीं होते और केवल इसलिए कि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हूं। मैं दुनियाको ब्रह्मचर्यका सीधा रास्ता न दिखा सकूं और वह मुझे पूर्ण ब्रह्मचारी माने, यह बात उसके लिए बड़ी भयानक होगी।

मैं सच्चा खोजी हूं, मैं पूर्ण जाग्रत हूं, मेरा प्रयत्न अथक और अडिग है—इतना ही जान लेना दुनियाके लिए क्यों काफी न हो? इतना ही जानना औरोंको उत्साहित करनेके लिए क्यों पर्याप्त न हो? झूठी प्रतिज्ञाओंसे सिद्धांत स्थिर करना गलत है। सिद्धियोंको उनका आधार बनाना ही बुद्धिमानी है। यह दलील क्यों दी जाय कि जब मुझ-जैसा आदमी मलिन विचारोंसे न बच सका तब औरोंके लिए क्या आशा हो सकती है? उसके बजाय यह क्यों न सोचा जाय कि अगर गांधी, जो एक दिन काम-वासनाका गुलाम था आज अपनी पत्नी का मित्र और भाई बनकर रह सकता है और सुन्दर-से-सुन्दर युवतीको अपनी बहन या बेटीके रूपमें देख सकता है तब अदने-से-अदना और पापके गढ़ेमें गिरा हुआ आदमी भी ऊपर उठनेकी आशा रख सकता है। ईश्वर अगर ऐसे कामुक-जनपर दया कर सकता है तो निश्चय ही दूसरे सब लोग भी उसकी दयाके अधिकारी होंगे।

पत्र लिखनेवाले भाईके जो मित्र मेरी कमियोंको जानकर पीछे हट गये वे कभी आगे बढ़े ही न थे। वह उनकी झूठी साधुता थी जो पहले ही झोंके में उड़ गई। सत्य, ब्रह्मचर्य और दूसरे सनातन नियम मुझ-जैसे अधकचरे जनोंकी साधनापर आश्रित नहीं होते। वे तो उन बहुसंख्यक जनोंकी तपश्चर्याके अटल आधापर खड़े होते हैं जिन्होंने उनकी साधनाका यत्न किया और उनका सम्पूर्ण पालन कर रहे हैं। जब मुझमें उन पूर्ण पुरुषोंकी बगलमें खड़े होनेकी योग्यता आ जायगी तब मेरे शब्दोंमें आगेसे कहीं अधिक निश्चय और बल होगा। जिसके विचार इधर-उधर भटकते नहीं रहते,

जिसका मन बुरी बातोंको सोचता नहीं, जिसकी नींद सपनोंसे रहित होती है और जो सोते हुए भी पूरी तरह जागता रह सकता है वही सच्चे अर्थ-में स्वस्थ है। उसे कुनैन खानेकी जरूरत नहीं होती। उसके शुद्ध रक्तमें हर तरहके छूत-विकारसे लड़ लेनेका बल होता है। तन-मन और आत्माकी पूर्ण स्वस्थ दशाकी प्राप्तिका प्रयत्न मैं कर रहा हूं। पत्र-लेखक तथा उनके अल्प श्रद्धावाले मित्रों और दूसरोंको मेरा निमंत्रण है कि इस कोशिशमें मेरा साथ दें और मेरी कामना है कि पत्र-लेखककी ही तरह उनके कदम भी आगे बढ़नेमें मुझसे ज्यादा तेज हों। मुझे जो-कुछ भी सफलता मिली है वह मुझमें कमियों और जब-तब वासनाके अधीन हो जानेकी दुर्बलताके होते हुए मिली है और मिली है केवल मेरे अथक प्रयत्न और भगवान्‌की दयामें मेरी असीम श्रद्धाकी बदौलत।

अतः किसीके लिए भी निराश होनेका कारण नहीं। महात्मापन कौड़ी कामका नहीं। यह तो मेरी बाह्य प्रवृत्तियों, मेरे राजनीतिक कामोंका प्रसाद है, जो मेरे जीवनका सबसे छोटा अंग है, फलतः चंद रोजा चीज है। जो वस्तु स्थायी मूल्यवाली है वह है मेरा सत्य-अहिंसा और ब्रह्मचर्य-आग्रह। यही मेरे जीवनका सच्चा अंग है। मेरे जीवनका स्थायी अंग कितना ही छोटा क्यों न हो, वह हेय माननेकी चीज नहीं है। वही मेरा सर्वस्व है। इस मार्गमें होनेवाली विफलताएं और भूल-भ्रमका ज्ञान भी मेरे लिए मूल्यवान है, क्योंकि वे सफलताके मंदिर पर पहुंचनेकी सीढ़ियां हैं।

: ६ :

ब्रह्मचर्य-पालनके उपाय

ब्रह्मचर्य और उसके साधनोंके विषयमें मेरे पास पत्रोंका तांता लग रहा है। अतः दूसरे मौकोंपर जो-कुछ कह या लिख चुका हूं उसे ही दूसरे शब्दोंमें यहां दोहरा देता हूं। ब्रह्मचर्यका अर्थ शारीरिक संयम-मात्र नहीं है, बल्कि उसका अर्थ है संपूर्ण इन्द्रियोंपर पूर्ण अधिकार और मन-वचन-कर्मसे काम-वासनाका त्याग। इस रूपमें वह आत्म-साक्षात्कार या ब्रह्म-प्राप्तिका सीधा और सच्चा रास्ता है।

आदर्श-ब्रह्मचारीको भोगकी वासना या सन्तानकी कामनासे जूझना नहीं पड़ता; वह कभी उसे कष्ट नहीं देती, उसके लिए सारा संसार एक विशाल परिवार होगा, मानव-जातिके कष्ट दूर करना ही उसकी सारी महत्वाकांक्षा होगी और सन्तानकी कामना उसके लिए विष-सी कड़वी होगी। मानव-जातिके दुःख-दैन्यका जिसे पूरा पता मिल गया है काम-वासना उसके चित्तको चलायमान कर ही नहीं सकती। अपने अंदर बहने वाले शक्ति-स्रोतका पता उसे अपने-आप लग जायगा और वह सदा उसे स्वच्छ, निर्मल बनाये रखनेका यत्न करेगा। उसकी छोटी-सी शक्तिके सामने सारा संसार श्रद्धासे सिर झुकायेगा और उसका प्रभाव राज-दण्डधारी सम्राट्के प्रभावसे बढ़ा-चढ़ा होगा।

पर मुझसे कहा जाता है कि यह आदर्श अशक्य है और 'तुम स्त्री-पुरुषमें जो एक दूसरेके प्रति सहज आकर्षण है उसका खयाल नहीं करते।' पर यहां जिस काम-प्रेरित आकर्षणकी ओर संकेत है मैं उसे स्वाभाविक माननेसे इनकार करता हूं। वह प्रकृति-प्रेरित हो तो हमें जान लेना चाहिए कि प्रलय होनेमें अधिक देर नहीं है। स्त्री और पुरुषके बीचका सहज आकर्षण वह है जो भाई और बहन, मां और बेटे, बाप

और बेटी के बीच होता है । संसार इसी स्वाभाविक आकर्षण पर टिका है । मैं संपूर्ण नारी-जातिको अपनी बहन, बेटी और मां न मानूं तो काम करना हो तो दूर रहे, मेरे लिए जीना भी कठिन हो जायगा । मैं उन्हें वासनाभरी दृष्टिसे देखूं तो यह नरकका सीधा रास्ता होगा ।

सन्तानोत्पादन स्वाभाविक क्रिया अवश्य है; पर बंधी हदके भीतर ही । उस सीमाको लांघना स्त्री-जातिके लिए खतरा पैदा करता, जातिको हतवीर्य बनाता, बीमारियोंको बुलाता, पापको प्रोत्साहन देता और दुनियाको धर्म तथा ईश्वरसे विमुख करता है । जो आदमी सदा काम-वासनाके वसमें है वह बिना लंगरकी नाव है । ऐसा आदमी समाजका पथ-प्रदर्शक हो, अपने लेखोंसे उसे पाट रहा हो और लोग उनसे प्रभावित हो रहे हों तो फिर समाजका कहां ठिकाना लगेगा ? फिर भी आज यही हो रहा है ! मान लीजिए, दीपशिखाके गिर्द चक्कर काटनेवाला पतंगा अपने क्षणिक सुखका वर्णन करे और हम उसे आदर्श मान उसका अनुकरण करें तो हमारी गति क्या होगी ? नहीं मुझे अपनी सारी शक्तिके साथ कहना होगा कि कामका आकर्षण पति-पत्नीके बीच भी अस्वाभाविक है । विवाहका उद्देश्य पति-पत्नीके हृदयको हीन-वासनाओंसे शुद्ध करके उन्हें भगवान्के निकट ले जाना है । पति-पत्नीके बीच भी कामना-रहित प्रेम होना नामुमकिन नहीं है । मनुष्य पशु नहीं है । पशुयोनिमें अगणित जन्म लेनेके बाद वह कहीं इस ऊंची दशाको पहुंच सका है । उसका जन्म तनकर खड़ा होनेके लिए हुआ है, घुटनोंके बल चलने या रेंगनेके लिए नहीं । पशुता मनुष्यतासे उतनी ही दूर है जितना चेतनसे चड़ ।

अन्तमें संक्षेपमें ब्रह्मचर्य-पालनके उपाय बताता हूं—

पहला काम है ब्रह्मचर्यकी आवश्यकताको समझ लेना ।

दूसरा काम है इन्द्रियोंको क्रमशः वशमें लाना । ब्रह्मचारीको अपनी जीभको तो बसमें करना ही होगा । उसे जीनेके लिए खाना चाहिए, रसना-सुखके लिए नहीं । आंखसे वही चीजें देखनी चाहिएं जो शुद्ध निष्पाप हों, गन्दी चीजोंकी ओरसे उसे अपनी आंखें बन्द कर लेनी चाहिएं निगाह नीची करके चलना—उसे इधर-उधर नचाते न रहना, शिष्ट संस्कार-

वान होनेकी पहचान है । इसी तरह ब्रह्मचारीको गन्दी अश्लील बातें सुनने और नाकसे तीव्र, उत्तेजक गंध सूंघनेसे भी परहेज रखना होगा। साफ-सुथरी मिट्टीकी सुगंध बनावटी इत्रों, एससोंकी खुशबूसे कहीं मधुर होती है। ब्रह्मचर्य-पालनके अभिलाषीके लिए यह भी आवश्यक है कि जबतक वह जागता रहे अपने हाथ-पैरोंको किसी-न-किसी अच्छे काममें लगाये रखे। वह कभी-कभी उपवास भी कर लिया करे।

तीसरा काम है शुद्ध, स्वच्छ आचरणवालोंका ही संग-साथ करना, उन्हींसे मित्रता जोड़ना और पवित्र पुस्तकें ही पढ़ना ।

आखिरी पर वैसे ही महत्वका काम है प्रार्थना । ब्रह्मचारीको नित्य नियमपूर्वक संपूर्ण अन्तःकरणसे रामनामका जप करना और भगवान्‌के प्रसादकी प्रार्थना करनी चाहिए ।

इनमेंसे एक भी बात ऐसी नहीं है जो साधारण स्त्री-पुरुषके लिए कठिन हो । वे अति सरल हैं; पर उनकी सरलता ही कठिनाई बनी रही है । जिसके दिलमें चाह है उसके लिए राह निहायत आसान है । लोगोंमें ब्रह्मचर्य-पालनकी सच्ची इच्छा नहीं होती, इसीसे वे बेकार भटका करते हैं । दुनिया ब्रह्मचर्यके कमोबेश पालनपरही टिक रही है, यही इस बातका प्रमाण है कि वह आवश्यक और हो सकनेवाला काम है ।

: ७ :

जनन-नियमन

बहुत झिझक और अनिच्छाके साथ मैं इस विषयपर कलम उठा रहा हूं। मैं जबसे दक्षिण अफ्रीकासे लौटा तभीसे मुझे कितने ही पत्र मिलते रहे हैं, जिनमें जनन-नियमनके कृत्रिम साधनोंसे काम लेनेके बारेमें मेरी राय पूछी जाती है। उन पत्रोंके उत्तर निजी तौरपर तो मैंने दे दिये हैं, पर सार्वजनिक रूपमें अबतक इस विषयकी चर्चा नहीं की थी। इस विषयने आजसे ३५ साल पहले, जब मैं विलायतमें पढ़ता था, अपनी ओर मेरा ध्यान खींचा था। उन दिनों वहां एक संयमवादी और एक डाक्टरके बीच गहरी बहस चल रही थी। संयमवादी प्राकृतिक उपायों—इन्द्रिय-संयमके सिवा और किसी उपायको जायज न मानता था और डाक्टर बनावटी साधनोंका प्रबल समर्थक था। उस कच्ची उम्रमें कृत्रिम उपायोंकी ओर थोड़े दिन झुकनेके बाद मैं उनका कट्टर विरोधी हो गया। अब मैं देखता हूं कि कुछ हिन्दी-पत्रोंमें इन उपायोंका वर्णन इतने नग्नरूपमें हो रहा है कि उसे देखकर हमारी शिष्टताकी भावनाको गहरा धक्का लगता है। मैं यह भी देख रहा हूं कि एक लेखकको कृत्रिम उपायोंके समर्थकोंमें मेरा नाम लेते हुए भी संकोच नहीं हो रहा है। मुझे एक भी अवसर याद नहीं आता जब मैंने इन उपायोंके समर्थनमें कुछ कहा या लिखा हो। उनके समर्थकोंमें दो प्रतिष्ठित पुरुषोंके नाम लिए जाते भी मैंने देखा है। पर उनकी इजाजतके बिना उनके नाम प्रकट करते मुझे हिचक होती है।

जनन-नियमनकी आवश्यकताके विषयमें तो दो मत हो ही नहीं सकते। पर युगोसे इसका एक ही उपाय हमें बताया गया है और वह है इन्द्रिय-निग्रह या ब्रह्मचर्य। यह अचूक, रामबाण उपाय है, जिससे काम लेनेवालेकी हर तरह भलाई होती है। चिकित्सा-शास्त्रके जानकार गर्भ निरोधके

अप्राकृतिक साधन ढूंढ़नेके बदले अगर मन-इन्द्रियोंको काबूमें रखनेके उपाय ढूंढ़ें तो मानवजाति उनकी चिर-ऋणी होगी। स्त्री-पुरुषके समागमका उद्देश्य इन्द्रिय-सुख नहीं बल्कि सन्तानोत्पादन है और जहां सन्तानकी इच्छा न हो वहां संभोग पाप है।

बनावटी साधनोंका उपयोग तो बुराइयोंको बढ़ावा देना है। वे स्त्री और पुरुषको नतीजेकी ओरसे बिलकुल लापरवाह बना देते हैं। और इन उपायोंको जो प्रतिष्ठा दी जा रही है उसका फल यह होगा कि लोकमत व्यक्तिपर अभी जो थोड़ा दाब-अंकुश रखता है वह जल्दी ही गायब हो जायगा। अप्राकृतिक उपायोंसे काम लेनेका निश्चित परिणाम मानसिक दुर्बलता और नाड़ी-मण्डलका शिथिल हो जाना है। दवा मर्जसे महंगी पड़ेगी। अपने कर्मके फलसे बचनेकी कोशिश नासमझी और पाप है। जरूरतसे ज्यादा खा लेनेवालेके लिए यही अच्छा है कि उसके पेटमें दर्द हो और उसे उपवास करना पड़े। ठूंस ठूंसकर खाना और फिर चूरन खाकर उसके स्वाभाविक फलसे बच जाना उसके लिए बुरा है। काम-वासनाकी मनमानी तृप्ति करना और उसके नतीजोंसे बचना और भी बुरा है। प्रकृतिके हृदयमें दया माया नहीं हैं, जो कोई उसके नियमोंको तोड़ेगा उससे वह पूरा बदला लेगी। नीति-संगत फल तो नीति-संगत संयमसे ही प्राप्त हो सकते हैं, और तरहके प्रतिबंध तो जिस बुराईसे बचनेके लिए लगाये जाते हैं उसको उलटा और बढ़ा देते हैं।

कृत्रिम उपायोंके उपयोगके समर्थकोंकी बुनियादी दलील यह है कि संभोग जीवनकी एक आवश्यक क्रिया है। इससे बड़ा भ्रम और कोई हो नहीं सकता। जो लोग चाहते हैं कि जितने बच्चोंकी हमें जरूरत है उससे ज्यादा बच्चे पैदा न हों, उन्हें चाहिए कि उन नीतिसंगत उपायोंकी खोज करें जो हमारे पूर्व पुरुषोंने ढूंढ़ निकाले थे और उनका चलन फिर कैसे चल सकता है इसका उपाय मालूम करें। उनके सामने बहुतसा आरंभिक कार्य करनेको पड़ा है। बाल-विवाह जन संख्या की वृद्धिका प्रधान कारण है। रहन सहनका वर्तमान ढंगभी बच्चोंकी बेरोक बाढ़में बहुत सहायक होता है। इन कारणोंकी खोज करके इन्हें दूर करनेका उपाय किया जाय तो समाज

सदाचारकी एक-दो सीढ़ियां और चढ़ जायगा। और अगर जनन-निरोधके उत्साही समर्थकोंने उनकी उपेक्षा की, प्राकृतिक साधनोंका चलन आम हो गया तो नतीजा नैतिक पतनके सिवा और कुछ नहीं हो सकता।

जो समाज विविध कारणोंसे पहले बलवीर्य-रहित हो चुका है वह जन्म-निरोधके कृत्रिम उपायोंको अपनाकर अपने-आपको और निर्बल ही बनायेगा। अतः जो लोग बिना सोचे-विचारे कृत्रिम साधनोंसे काम लेनेका समर्थन कर रहे हैं उनके लिए इससे अच्छी बात दूसरी नहीं हो सकती कि इस विषयका नये सिरेसे अध्ययन करें, अपने हानिकर प्रचारको रोकें और विवाहित-अविवाहित दोनोंको ब्रह्मचर्यके रास्तेपर चलानेकी कोशिश करें।

: ८ :

कुछ दलीलोंपर विचार

जनन-नियमन विषयपर मेरे लेखको पढ़कर बनावटी साधनोंके समर्थकोंने मेरे साथ जोरोसे पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया है। मुझे इसीकी आशा भी रखनी चाहिए थी। उनकी चिट्ठियोंमेंसे मैं तीनको, जो नमूनेका काम दे सकती हैं, चुन लेता हूं। एक पत्र और भी देने लायक था, पर उसमें अधिकतर धर्म-शास्त्रोंकी दलीलें दी गई हैं, इसलिए उसे छोड़े देता हूं। उन तीन पत्रोंमेंसे एकका उलथा यह है—

"जनन-नियमन विषयपर आपका लेख मैंने बड़ी रुचिके साथ पढ़ा। इन दिनों इस विषयने बहुतेरे शिक्षित पुरुषोंका ध्यान अपनी ओर खींच रखा है। पिछले साल हम लोगोंमें इस विषयपर लम्बे और गरम मुबाहसे हुए। उनसे कम-से-कम इतना तो साबित हो गया कि युवक वर्गको इस मसलेसे गहरी दिलचस्पी पदा हो गई है, इसके बारेमें लोगोंमें बहुत-सी गलत धारणाएं हैं और इसकी चर्चामें बनावटी शालीनता बहुत बरती जाती है, और इसकी बहस खुलकर की जाय तो वह सभ्यताकी सीमाका उल्लंघन क्वचित् ही करती है। आपका लेख पढ़कर मैं इस बारेमें फिरसे सोचने लगा हूं। मेरी प्रार्थना है कि आप इस विषयमें मेरी थोड़ी रहनुमाई करें, जिससे मेरे मनमें उठनेवाली बहुत-सी शंकाएं दूर हो जायं।

"मैं इस बातको मानता हूं कि 'सन्तति-नियमनकी आवश्यकताके बारेमें दो मत नहीं हो सकते।' मैं यह भी मानता हूं कि ब्रह्मचर्य इसका अचूक और रामबाण उपाय है और जो उसे काममें लाता है वह उसका भला ही करता है पर मैं जानना चाहता हूं कि क्या यह प्रश्न आत्म-संयमसे अधिक जनन-निरोधका नहीं है? अगर है तो हमें देखना चाहिए कि संयम या इंद्रिय-निग्रह साधारण मनुष्यके लिए सन्तति-नियमनका सुलभ मार्ग है।

"मैं मानता हूं कि इस प्रश्नपर दो दृष्टियोंसे विचार किया जा सकता है—व्यक्तिकी दृष्टिसे और समाजकी दृष्टिसे। हर आदमीका कर्तव्य है कि अपनी विषय भोगकी वासनाओंको दबाकर अपने आत्मबलकी वृद्धि करे। हर जमानेमें थोड़ेसे ऐसे महान् पुरुष पैदा होते हैं जो यह उच्च आदर्श अपने सामने रखते और आजीवन केवल उसीका अनुगमन करते हैं। पर अनावश्यक बच्चोंकी बाढ़ रोकनेके मसलेको, जिसे हल करनेपर हम तुल रहे हैं, वे समझते हैं, इसमें मुझे शक है, संन्यासी मोक्ष-प्राप्तिका प्रयासी होता है, सन्तति-नियमनका नहीं।

"पर क्या यह उपाय उस आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नको समयकी उचित सीमाके अंदर हल कर सकता है जो जन-समाजके बहुत बड़े भागके लिए अतिशय महत्त्वका है? हर एक समझदार और आगेकी बात सोच सकनेवाले गृहस्थके सामने यह समस्या आज भी रास्ता रोककर खड़ी है। एक आदमी कितने बच्चोंको खिला-पिला, पहना, पढ़ा और उनकी रोजी-रोजगारका उपाय कर सकता है—यह ऐसा प्रश्न है जिसे हमें तुरन्त हल करना होगा। मनुष्य-स्वभाव कैसा है यह आप जानते ही हैं। उसका खयाल रखते हुए क्या आप हजारों-लाखों आदमियोंसे यह आशा रख सकते हैं कि सन्तानकी आवश्यकता पूरी हो जानेके बाद वे संभोगका सुख लेना बिलकुल ही बंद कर देंगे? मैं समझता हूं कि आप काम-वासनाकी बुद्धि-संगत, संयत तृप्तिकी इजाजत देंगे, जैसी कि हमारे स्मृतिकारोंकी सलाह है। अधिकांश जनोंसे न तो अपनी वासनाकी लगाम बिलकुल ढीली कर देनेको कहा जा सकता, और न उसे पूरी तरह दबा देनेको। उनसे तो बस यही कहा जा सकता है कि उसे नियमके अंदर रखें, बीचके रास्तेपर चलाएं। पर यह मुमकिन हो तो भी क्या जरूरतसे ज्यादा बच्चोंका पैदा होना बन्द होगा? मैं मानता हूं कि इससे अधिक अच्छे आदमी पैदा होंगे, पर दुनियाकी आबादी घटेगी नहीं बल्कि जन-संख्याकी वृद्धिकी समस्या इससे और विषम हो जायगी, क्योंकि स्वस्थ-सबल समाज निकम्मे लोगोंकी बनिस्बत ज्यादा तेजीसे बढ़ता है। जानवरोंकी अच्छी नस्ल पैदा करनेकी कला हमें अच्छे गाय-बैल और घोड़े देते हैं। पर पांचके बदले चार नहीं देती।

"मैं मानता हूं कि 'स्त्री-पुरुषके समागमका उद्देश्य संभोग-सुख नहीं, किन्तु सन्तानकी प्राप्ति है।' पर आपको भी यह स्वीकार करना होगा कि एकमात्र सुखकी चाह ही मनुष्यको संभोगके लिए भले ही प्रेरित न करती हो; फिर भी अधिकतर वही इसके लिए उकसाती है। प्रकृति अपना काम निकालनेके लिए हमारे सामने यह चारा फेंकती है। सुख न मिले तो कितने उसके प्रयोजनकी पूर्ति करेंगे या करते हैं? ऐसे आदमी कितने होंगे जो सुखके लिए संभोग करते हों और सन्तानका प्रसाद पा जाते हैं? और ऐसे कितने हैं जो सन्तानकी कामनासे संभोग करते हों और उसके घालमें सुखभी भोग लेते हों? आप कहते हैं—'जहां सन्तानकी इच्छा न हो वहां संभोग पाप है, आप जैसे संन्यासीको यह कहना जरूर फबता है। आपने यह भी तो कहा ही है कि जो अपने पास जरूरतसे ज्यादा पैसा या चीजें रखता है वह 'चोर' और 'डाकू' है। और जो दूसरोंको अपनेसे अधिक प्यार नहीं करता वह अपने आपको कम प्यार करता है। पर बेचारे दीन-दुर्बल मनुष्योंके प्रति आप इतने कठोर क्यों हो रहे हैं? सन्तानकी इच्छाके बिना उन्हें थोड़ा-सा सुख मिल जाय तो उनके तन-मनमें होनेवाले उलट-फेरोंसे पैदा होनेवाली बेचैनी मिट जाय। बच्चे पैदा होनेका डर कुछ लोगोंके मानसमें अशांति उत्पन्न कर देगा, कुछ लोग इस डरसे ब्याह करनेमें देर करेंगे। साधारणत: ब्याहके कुछ बरस बाद संतानकी चाह समाप्त हो जाती है। तो उसके बाद क्या पति-पत्नीका समागम अपराध माना जायगा? क्या आप समझते हैं कि जो आदमी इस 'अपराध'के डरसे अपनी बेचैन वासनाओंको दबा रखता है वह नीतिमें दूसरोंसे ऊंचा है? आखिर जब जरूरतसे ज्यादा पैसा या माल-जायदाद बटोर रखनेवाले 'चोरों'को आप सहन कर सकते हैं तो इन अपराधियोंको क्यों सहन नहीं कर सकते? इसलिए कि चोरोंकी संख्या और बल इतना अधिक है कि उनको सुधारना संभव नहीं?

"अन्तमें आप यह फरमाते हैं कि 'बनावटी साधनोंका उपयोग बुराईको बढ़ावा देना है। वे स्त्री और पुरुषको नतीजेकी ओरसे बिलकुल लापरवाह बना देते हैं।' यह इलजाम सही हो तो संगीन है। मैं जानना चाहता हूं कि 'लोकमत' में क्या कभी इतना बल रहा है कि वह संभोग के अतिरेकको

रोक सके ? मैं जानता हूं कि पियक्कड़ लोकनिन्दाके डरसे कुछ कम शराब पीता है। पर मैं इन उक्तियोंसे भी अवगत हूं कि 'जो मुंह चीरता है वह आहार भी देता है।' और बच्चे तो भगवान्‌की देन है।' मुझे इस बहमका भी पता है कि बच्चोंकी बहुलता पुरुषत्वका प्रमाण है। मैं ऐसे उदाहरण जानता हूं जहां इस धारणाने पतिको पत्नीकी देहके उपभोगका अबाध अधिकार प्रदान कर दिया है और काम-वासनाकी तृप्तिको ही पति-पत्नीके नातेका मुख्य अर्थ मान लिया है। इसके सिवा क्या यह तय है कि अप्राकृतिक साधनोंसे काम लेनेका निश्चित परिणाम मानसिक दुर्बलता और नाड़ी-मण्डलका शिथिल हो जाना है ? तरीके और तरीकेमें बहुत अन्तर करता है और मेरा विश्वास है कि विज्ञान इस कामकी अहानिकर विधियां ढूंढ़ चुका है या जल्दी ही ढूंढ़ लेगा। यह कुछ मनुष्यकी बुद्धिके बाहरकी बात नहीं है।

"पर जान पड़ता है, आप किसी भी अवस्थामें उनसे काम लेनेकी इजाजत न देंगे, क्योंकि कर्मके फलसे बचनेकी कोशिश अधर्म है, इसमें एतराजकी बात इतनी है कि आप यह मान लेते हैं कि सन्तानकी इच्छा न होनेपर अपनी वासनाकी संयत तृप्ति भी पाप है। इसके सिवा मैं पूछता हूं, बच्चा पैदा होनेका डर क्या कभी किसीको अपनी भोगेच्छा तृप्त करनेसे रोक सका है ? कितने ही स्त्री-पुरुष अपने सुख-स्वास्थ्यकी हानिकी परवाह न कर अताइयों, नीम-हकीमोंके बताये उपाय करते हैं। अपने कर्मके फलसे बचनेके लिए कितने गर्भ गिराये जाते हैं ? पर गर्भ-स्थिति या बच्चा पैदा होनेका डर कारगर रोक साबित हो भी जाय तो इसका नैतिक परिणाम नगण्य-सा ही होगा। फिर बच्चा मां-बापके पापका फल भोगे—व्यक्तिकी नासमझी समाजकी हानि करे—यह कहांका न्याय है ? यह सही है कि 'प्रकृति दया माया रहित है और अपने नियमका उल्लंघन करनेवालेको पूरा दंड देती है।' पर कृत्रिम साधनोंसे काम लेना प्रकृतिके नियमको तोड़ना है यह कैसे मान लिया जाय ? बनावटी दांत, आंख, हाथ, पांवको कोई अप्राकृतिक नहीं कहता। अप्राकृतिक वही है जिससे हमारी भलाई नहीं होती। मैं यह नहीं मानता कि मनुष्य स्वभावसे बुरा है और इन उपायोका

उपयोग उसे और बुरा बना देगा। स्वाधीनताका दुरुपयोग आज भी कुछ कम नहीं होता। हमारा हिन्दुस्तान भी इस विषयमें दूसरोंपर हँसने लायक नहीं है। इस नई शक्तिका उपयोग समझदारी के साथ किया जायगा, यह साबित करना भी उतना ही आसान है जितना यह साबित करना कि उसका दुरुपयोग किया जायगा। हमें जान लेना चाहिए कि मनुष्य प्रकृतिपर यह बड़ी विजय प्राप्त करना ही चाहता है और उसकी उपेक्षा करके हम अपनी ही हानि करेंगे। बुद्धिमानी इसमें है कि हम इस अशक्तिको काबूमें रखें, उससे भागनेमें नहीं है। लोक-हितके लिए काम करनेवाले कुछ अच्छे-से-अच्छे लोग भी, जो इन उपायोंके प्रचारक बन रहे हैं, इसलिए नहीं कि लोगोंको मनमाना इन्द्रिय-सुख भोगनेका सुभीता हो जाय, बल्कि इसलिए कि लोग अपनी वासनाको काबूमें लाना सीखें।

हमें यह बात भी याद रखनी होगी कि नारी-जाति और उसकी आवश्यकताओंकी हम बहुत उपेक्षा कर चुके। वह चाहता है कि इस बारेमें उसे भी जबान खोलने का मौका दिया जाय, क्योंकि वह पुरुषोंको इसकी इजाजत देनेको तैयार नहीं है कि वह उसकी देहको बच्चे पैदा करनेका खेत समझे। सभ्यताका बोझ उसके लिए इतना भारी पड़ रहा है कि बड़े कुटुम्बके पालनका बोझ उससे नहीं चल सकता। डाक्टर मेरी स्टोप्स और कुमारी ऐलन स्त्रीके नाड़ी-संस्थानके शिथिल हो जानेका उपाय कभी न करेंगी। उनके बताये हुए उपाय ऐसे हैं जो स्त्रियों द्वारा काममें लाये जानेसे ही कारगर हो सकते हैं और उनके उपयोगसे असंयत विषय-भोगको प्रोत्साहन मिलनेकी बनिस्बत स्त्रीके मातृकर्तव्यका अधिक अच्छी तरह पालन कर सकनेकी आशा रखी जानी चाहिए। जो हो, कुछ अवस्थाएं ऐसी होती हैं जब छोटी बुराईको स्वीकार कर लेना बड़ी बुराईसे बचा देता है। कुछ बीमारियां इतनी खतरनाक हैं कि नाड़ी-मण्डलकी शिथिलताकी जोखिम उठाकर भी उनसे बचना ही होगा। बच्चेको दूध पिलानेके कालके बीच ऐसे 'तटस्थ काल' आते हैं जब समागम अनिवार्य होता है, पर उस समय गर्भ रह जाय तो स्त्रीके स्वास्थ्यके लिए हानिकार होता है। कितनीही स्त्रियोंके लिए प्रसवमें जानकी जोखिम रहती है, यद्यपि और सब तरह वे स्वस्थ होती हैं।

"मैं यह नहीं चाहता कि आप जनन-नियंत्रणके प्रचारक हो जायं, मैं आपसे इसकी आशा भी नहीं रख सकता। आपके दिव्यतम रूपके दर्शन तो तभी होते हैं जब आप सत्य और ब्रह्मचर्यकी पवित्र ज्योति जगाते और उसके खोजियोंके सामने रखते हों। पर नासमझकी अपेक्षा समझदार मां-बापको इस ज्योतिकी तलाश अधिक होगी। जो जन्म-निरोधकी आवश्यकताको समझता है वह वासनाके निरोधका सामर्थ्य सहजमें प्राप्त कर लेगा। स्वच्छन्दता, बिना सोचे-विचारे काम करनेकी प्रवृत्ति और अज्ञान आज इतना बढ़ रहा है कि आपकी आवाज भी जंगलमें रोने-जैसी हो रही है। आपके संकोचभरे और अनिच्छासे लिखे हुए लेखमें इसके लिए जितना अवकाश है इस विषयपर उससे अधिक खुली और आलोकजनक चर्चा होनेकी आवश्यकता है। आप उसमें शामिल न हो सकें तो कम-से-कम उसकी आवश्यकता तो आपको स्वीकार कर लेनी चाहिए और जरूरी हो तो समय रहते उसकी रहनुमाई भी करनी चाहिए, क्योंकि हमारे रास्तेमें अनेक खड्ड-खाइयां हैं और उन खतरोंकी ओरसे आंखें मूंद लेने तथा इस विषयपर कलम उठानेमें हिचकनेसे कोई लाभ न होगा।"

मैं आरम्भमें ही यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि यह लेख न मैंने संन्यासियोंके लिए लिखा है और न संन्यासीकी हैसियतसे लिखा है। संन्यासीका जो अर्थ समझा जाता है उस अर्थमें मैं अपने-आपको संन्यासी कह भी नहीं सकता। मैंने जो-कुछ लिखा है, उसका आधार मेरा २५ बरसका अपना अखंड अनुभव ही है, जिसमें यदा-कदा, व्रतभंग हुआ है और उन मित्रोंका अनुभव है जिन्होंने इस आजमाइशमें इतने दिनोंतक मेरा साथ दिया कि उनके अनुभवसे मैं कुछ नतीजे निकाल सकता हूं। इस प्रयोगमें युवा और वृद्ध, पुरुष और स्त्री सभी शामिल हैं। उसमें किसी हदतक वैज्ञानिक प्रामाणिकता होनेका दावा भी मैं कर सकता हूं। उसका आधार निस्सन्देह शुद्ध नैतिक था; पर उसका आरम्भ सन्तति-नियमनकी इच्छासे ही हुआ। मेरी अपनी स्थिति खासतौरसे ऐसी ही थी। बादके सोच-विचारसे उससे जबर्दस्त नैतिक परिणाम उत्पन्न हुए, पर सब सर्वथा स्वाभाविक क्रमसे ही उपजे। मैं यह कहनेका साहस भी कर सकता हूं कि समझदारी और सावधानीसे

काम किया जाय तो बिना अधिक कठिनाईके ब्रह्मचर्यका पालन किया जा सकता है। यह दावा अकेला मेरा ही नहीं है, जर्मनी और दूसरे देशोंके प्रकृति-चिकित्सक भी यही कहते हैं। ये लोग बताते हैं कि जलका उपचार मिट्टीका लेप और बिना मिर्च-मसालेका भोजन, खासकर फलाहार नाड़ी मंडलको शांत करते हैं, और काम-क्रोधादिको जीतना आसान बना देते हैं तथा साथ-साथ नाड़ी-जालको सबल-सतेज भी बनाते हैं। राजयोगीको योग-क्रियाओंमेंसे अकेले प्राणायामके नियमित अभ्याससे भी यही लाभ होता है। न पश्चिमी उपचार-विधि संन्यासियोंके लिए है और न प्राचीन भारतीय साधन-प्रणाली ही, बल्कि दोनों खास तौरसे गृहस्थोंके लिए ही हैं।

कहा जाता है कि जनन-निरोधकी आवश्यकता हमारे राष्ट्रके लिए है, क्योंकि उसकी आबादी बहुत बढ़ती जा रही है। मुझे इसे माननेसे इनकार है। जनसंख्याकी अतिवृद्धि अभीतक असिद्ध । मेरी रायमें तो जमीनका बन्दोबस्त और बंटवारा ठीक तौरपर हो जाय, खेतीका ढंग सुधर जाय और कोई सहायक धंधा उसके साथ जोड़ दिया जाय तो यह देश आज भी दूनी आबादीके भरण-पोषणका भार उठा सकता है। इस देशमें जनन-निरोधका प्रचार करनेवालोंका साथ जो मैं दे रहा हूं वह महज उसका वर्तमान राज-नीतिक स्थितिके खयालसे।

मैं यह जरूर कहता हूं कि सन्तानकी आवश्यकता न रह जानेपर लोगोंको अपनी काम-वासनाकी तृप्ति बंद कर देनी चाहिए। संयमका उपाय लोक-प्रिय और प्रभावकर बनाया जा सकता है। शिक्षित वर्गने कभी उसे ठीक तौरसे आजमाया नहीं। संयुक्त परिवारकी प्रथाकी बदौलत इस वर्गने कुटुम्ब-वृद्धिका बोझ अभी महसूस हा नहीं किया। ब्रह्मचर्यपर जहां-तहां दो-चार व्याख्यान हो जानेके सिवा, खासकर बच्चोंकी अनिष्ट बाढ़ रोकनेके ही उद्देश्यसे, लोगोंकों संयमकी शिक्षा देनेके लिए कोई व्यवस्थित प्रचार नहीं किया गया। उलटे यह वहम अब भी बहुतोंमें बना हुआ है कि अधिक बाल-बच्चोंका होना सौभाग्यका चिह्न है। धर्मका उपदेश करनेवाले आम तौरपर यह उपदेश नहीं देते कि कुछ विशेष अवस्थाओंमें सन्तानोत्पत्ति

रोकना थी वैसा ही धर्म होता है जैसा दूसरी अवस्थाओंमें संतान उत्पन्न करना।

मुझे ऐसी शंका होती है कि जनन-निरोधके हिमायती इस बातको पक्की मान लेते हैं कि काम-वासनाकी तृप्ति जीवन-धारणके लिए आवश्यक और इष्ट कार्य है। उन्हें स्त्रियोंके लिए चिन्ता प्रकट करते देखकर तो बड़ी दया आती है। मेरी रायमें बनावटी साधनोंसे गर्भ-निरोधके समर्थनमें स्त्रीके हितकी दलील देना उसका अपमान करना है। पुरुषकी कामुकता उसे यों ही काफी नीचे घसीट लाई है, अब कृतिम साधनोंका प्रचार—प्रचारकोंकी नीयत कितनी ही अच्छी क्यों न हो—उसे और नीचे गिराये बिना न रहेगा। मैं जानता हूं कि कुछ नई रोशनीवाली स्त्रियां भी इन साधनोंका समर्थन कर रही हैं। पर मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि नारी-जातिका बहुत बड़ा भाग उन्हें अपने गौरवकी हानि करनेवाला मानकर ठुकरा देगा। पुरुषको सचमुच नारी-जातिके भलेकी चिन्ता है तो उसे चाहिए कि अपनी वासनाको वशमें करे। स्त्री उसे ललचाती नहीं। पुरुष आक्रान्ता होता है, इसलिए वस्तुतः वही सच्चा मुजरिम और ललचानेवाला है।

कृत्रिम साधनोंके समर्थकोंसे मेरा आग्रह अनुरोध है कि वे अपने प्रचार के नतीजोंपर गौर करें। इन उपायोंके अधिक उपयोगका फल होगा विवाहके बंधनका टूट जाना और स्वच्छन्द प्रेमकी बाढ़। अगर पुरुषके लिए केवल वासनाकी तृप्तिके लिए ही संभोग करना जायज हो सकता है तो वह उस दशामें क्या करेगा जब उसे लंबे अरसे तक घरसे दूर रहना पड़े, या वह लंबी लड़ाईमें सैनिकके रूपमें काम कर रहा हो, या विधुर हो गया हो, या पत्नी इतनी बीमार हो कि अगर उसे संभोगकी इजाजत दे तो कृत्रिम साधनोंसे काम लेते हुए भी उसके स्वास्थ्यकी हानि हुए बिना न रहे?

पर एक दूसरे सज्जन लिखते हैं—

"जनन-नियंत्रणके विषयमें 'यंग इंडिया'के हालके अंकमें आपका जो लेख निकला है उसके संबंधमें मेरा नम्र निवेदन है कि कृतिम साधनोंको हानिकर बताकर आप दावेको सबूत मान लेते हैं। पिछले सार्वभौम जनन-नियंत्रण सम्मेलन (लंदन, १९२२) की गर्भ-निरोध-परिषदने नीचेलिखे

आशयका प्रस्ताव स्वीकार किया था। इस प्रस्तावके विरोधमें उपस्थित १६४ डाक्टरोंमेंसे केवल तीनने हाथ उठाये थे—

"पांचवें सार्वभौम-जनन-नियंत्रण-सम्मेलनके चिकित्सक सदस्योंकी इस बैठककी रायमें गर्भ-निरोधके स्वास्थ्य-नियमोंके अविरोधी उपायोंके द्वारा जनन-निरोध शरीरशास्त्र, कानून और नीति-शास्त्र तीनोंकी दृष्टिसे गर्भ-पातसे सर्वथा भिन्न वस्तु है। उसका यह भी कहना है कि गर्भ-निरोध-के उत्तम उपाय और साधन स्वास्थ्यकी हानि करनेवाले हैं या बांझपन पैदा करते हैं, इसका कोई प्रमाण नहीं है।"

"चिकित्सा-शास्त्रके पंडित इतने स्त्री-पुरुषोंकी, जिनमेंसे कुछ दुनियाके सबसे बड़े डाक्टरोंमेंसे हैं, राय मेरी समझसे कलमके एक फर्राटेसे नहीं काटी जा सकती। आप कहते हैं 'कृत्रिम साधनोंके उपयोगका अनिवार्य परिणाम मानसिक दुर्बलता और नाड़ी-मण्डलका शिथिल हो जाना है'—" वह 'अनिवार्य' क्यों है ? मैं यह कहनेका साहस करता हूं कि अज्ञानवश हानिकर साधनोंके इस्तेमालसे भले ही ऐसा होता हो, पर आधुनिक वैज्ञानिक साधनोंके व्यवहारसे इस तरहकी कोई हानि कदापि नहीं होती। यह तो इस बातकी एक और दलील है कि गर्भ-निरोधकी समुचित विधि उन सब लोगोंको, जिन्हें उनकी जरूरत हो सकती है, अर्थात् सभी वयःप्राप्त स्त्री-पुरुषोंको सिखा दी जानी चाहिए। आप इन विधियोंको बनावटी कहकर उनकी निन्दा करते हैं, फिर भी कहते हैं कि डाक्टर-वैद्य इंद्रिय-संयमके उपाय ढूंढें। मैं आपका मतलब ठीक तरहसे समझ नहीं पाता, पर चूंकि आप डाक्टर-वैद्योंकी बात कहते हैं, इसलिए पूछता हूं कि उनके ढूंढे हुए उपाय भी तो उतने ही बनावटी, अप्राकृतिक होंगे ? आप फर्माते हैं, 'समागमका उद्देश्य सुख-प्राप्ति नहीं, सन्तानोत्पादन है। यह उद्देश्य किसका है ?' ईश्वरका ? ऐसा है तो उसने काम-वासनाकी सृष्टि किसलिए की ? आप यह भी कहते हैं कि 'प्रकृति दया-माया-रहित है और अपना कानून तोडनेवालेसे पूरा बदला लेती है' पर प्रकृति अन्ततः व्यक्ति नहीं है, जैसा कि ईश्वरके विषयमें माना जाता है, और किसीके काम फरमान नहीं निकालती। प्रकृतिके राजमें कर्मका फल अवश्य मिलता है। कुछ कर्मोंको हम अच्छा कहते

हैं, कुछको बुरा। बनावटी साधनोंको बरतनेवाले भी उसी तरह अपने कर्मका फल भुगतते हैं जिस तरह उनसे काम न लेनेवाले अपने कर्मोंका भोगते हैं। अतः जबतक आप यह साबित न कर दें कि बाह्य साधन और विधियां हानिकारक हैं तबतक आपकी दलीलका कुछ अर्थ नहीं होता। अपने अनुभव के बलपर मैं कह सकता हूं कि ये चीजें बुरी नहीं हैं, बशर्ते कि ठीक तौरसे काम में लाई जायं। किसीका काम भला या बुरा होनेका फैसला उसके फल देखकर ही किया जा सकता है, अनुमान-परम्परा के सहारे नहीं।

"सन्तति-नियमका जो रास्ता आप बताते हैं मालथसने भी उसपर चलनेकी सलाह दी थी; पर आप जैसे दस-बीस विशिष्ट पुरुषोंको छोड़कर उसपर चलना और किसीके बसकी बात नहीं। ऐसे उपाय बतानेसे क्या लाभ जो काममें लाये ही न जा सकें? ब्रह्मचर्यकी महिमा बहुत बढ़ाकर गाई जाती है। वर्तमान युगके चिकित्सा-शास्त्रके प्रामाणिक पंडित (मेरा मतलब उन लोगोंसे है जो इस मसलेको धर्मकी ऐनकसे नहीं देखते) मानते हैं कि २२-२३ की उम्रके बाद संभोग न करनेसे निश्चित रूपसे हानि होती है। सन्तानकी कामनाको छोड़कर और किसी उद्देश्यसे किए गए समागमको आप जो पाप मानते हैं इसका कारण धर्मकी ओर आपका अनुचित झुकाव है। फलकी गारंटी पहलेसे तो कोई दे नहीं सकेगा, इसलिए आप हर आदमी-को या तो पूर्ण ब्रह्मचर्य-धारणका आदेश देते हैं या पापकी जोखिम उठानेका। शरीर-शास्त्र हमें यह शिक्षा नहीं देता, और लोगोंसे यह कहनेके दिन लद चुके कि वे विज्ञानकी उपेक्षा करके किसी सन्त-महात्माके आदेशका अंधानु-सरण करें।"

इस पत्रके लेखकको अपने मतका अटल आग्रह है। मैं समझता हूं, यह दिखानेके लिए मैंने काफी मिसालें सामने रख दीं कि अगर हमें विवाहको धर्म-बंधन मानना और उस बंधनकी पवित्रताको बनाये रखना है, तो हमें भोगको नहीं बल्कि संयमको जीवनका नियम मानना होगा। मैंने दावेको सबूत—विवादग्रस्त बातको सिद्ध—नहीं मान लिया है, क्योंकि मैं तो कहता हूं कि जनन-निरोधके बाहरी उपाय कितने ही अच्छे क्यों न हों, पर हैं वे हानिकर ही। हो सकता है, वे स्वयं निर्दोष हों और केवल इसलिए

हानिकारक हों कि वे सोई हुई काम-वासनाको जगाते हैं, जिसकी भूख भोजनसे शांत होनेके बदले और भड़कती जाती है। जिस मनको यह माननेकी आदत लग गई हो कि अपनी काम-वासनाकी तृप्ति केवल जायज ही नहीं, इष्ट भी है। वह जी भरकर विषय-सुख भोगेगा और अन्तमें मनसे इतना निर्बल हो जायगा कि वासनाओंको रोकनेकी उसमें शक्ति ही न रह जायगी। मैं मानता हूं कि एक बारके संभोगका अर्थ भी उस अनमोल शक्तिका क्षय है जो स्त्री-पुरुष सबके तन-मन और आत्माका बल-तेज बनाये रखनेके लिए परमावश्यक है। इस प्रसंगमें मैं आत्माका नाम ले रहा हूं। पर अबतक मैंने इस चर्चासे उसको जान-बूझकर बाहर रखा था, क्योंकि इसकी गरज महज अपने पत्र-लेखकोंकी दलीलों का जवाब देना है, जिन्हें आत्माके होने न होनेका कोई खयाल ही नहीं दिखाई देता। विवाहके अतिरेकसे पीड़ित और बल-तेज गंवाये हुए भारतको बनावटी साधनोंकी सहायतासे काम-वासनाकी परितृप्तिकी नहीं, बल्कि पूर्ण संयमकी शिक्षाकी आवश्यकता है, और किसी विचारसे न सही तो केवल इसलिए कि उसका गया हुआ बल-तेज उसे फिर प्राप्त हो जाय। नीति-नाशक दवाओंके विज्ञापन, जो हमारे पत्र-पत्रिकाओंके लिए कलंकरूप हो रहे हैं, जनन-निरोधके हिमायतियोंके लिए चेतावनी होने चाहिएं। दिखाऊ लज्जा या शालीनता मुझे इस विषयकी विस्तृत चर्चा करनेसे नहीं रोक रही है, बल्कि इस बातका निश्चित ज्ञान उससे रोक रहा है कि हमारे देशके तन-मनसे बे-दम नौजवान उन देखनेमें सही-सी लगनेवाली दलीलोंके सहजमें शिकार हो जाते हैं जो असंयत विषय-भोगके पक्षमें दी जाती हैं।

दूसरे पत्र-लेखकने अपने पक्षकी पुष्टिमें जो डाक्टरी सर्टिफिकेट पेश किया है उसका जवाब देना अब मुझे जरूरी नहीं मालूम होता। मैं न यह कहता हूं और न इससे इन्कार ही करता हूं कि कृत्रिम साधनोंके व्यवहारसे जननेन्द्रियोंकी हानि होती या बांझपन पैदा होता है। पर अपनी ही स्त्रीके साथ अति विषय-भोगके फलसे जो सैकड़ों युवकोंके जीवनका नाश होते मैंने अपनी आंखों देखा है, बड़े-से-बड़े डाक्टरोंकी पलटन भी उसे काट नहीं सकती।

पहले लेखकने जो बनावटी दांतकी दलील दी है वह मेरी रायमें यहां नहीं लगती। बनाये हुए दांत निस्सन्देह बनावटी और अप्राकृतिक चीज हैं, पर उनसे एक आवश्यकताकी पूर्ति हो सकती है। मगर जनन-निरोधके कृत्रिम साधन तो उस आदमीका चूरन फांकना है जो अपनी भूख मिटानेके लिए नहीं बल्कि जीभको तृप्त करनेके लिए खाना चाहता हो। स्वादके लिए भोजन भी वैसा ही पाप है जैसा केवल भोग-सुखके लिए संभोग करना।

तीसरे पत्रसे हमें एक जाननेलायक बात मालूम होती है—"जनन-नियंत्रणका प्रश्न दुनियाकी सभी सरकारोंको परेशान कर रहा है। यह तो आप जानते ही होंगे कि अमरीकाकी सरकार इसके प्रचारकी विरोधिनी है। निश्चय ही आपने यह भी सुन रखा होगा कि एक पूर्वीय साम्राज्य जापानने इन साधनोंके प्रचार-व्यवहारकी आम इजाजत दे रखी है। एक हर हालतमें गर्भ-निरोधका निषेध करता है, चाहे वह कृत्रिम साधनोंसे किया जाय या प्राकृतिक साधनोंसे, दूसरा उसका पोषक प्रचारक है। दोनोंकी वृत्तियोंके कारण सर्वविदित हैं। मेरी समझसे अमरीकाके रुखमें कोई ऐसी बात नहीं जिसकी सराहना की जाय। पर जापानका का कार्य क्या अधिक निंदनीय है ? उसे कम-से-कम वस्तुस्थितिका सामना करनेका यश तो मिलना ही चाहिए। वह अपनी आबादीका बढ़ना रोकनेके लिए लाचार है। मनुष्य-स्वभावको भी उसे, वह आज जैसा है वैसा, मानना ही होगा। ऐसी दशामें क्या जनन-निरोध उस अर्थमें, जिसमें पश्चिममें उसका ग्रहण होता है, उसके लिए एक-मात्र मार्ग नहीं ? आप कहेंगे, 'हर्गिज नहीं।' पर क्या मैं आपसे पूछ सकता हूं कि आप जो रास्ता बताते हैं वह व्यवहार्य है ? वह आदर्श भले ही हो, पर क्या उसपर चला जा सकता है ? क्या जन-समाजसे संभोग-सुखके कहने लायक त्यागकी आशा रखी जा सकती है ? थोड़ेसे गौरवशाली पुरुषोंके लिए जो संयम और ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं वह आसान हो सकता है ? पर क्या यह रास्ता इस योग्य है कि इसके प्रचारके लिए सार्वजनिक आन्दोलन किया जाय ? और हिन्दुस्तानकी हालत ऐसी है कि यहां देशव्यापी आम आन्दोलन होनेसे ही काम हो सकता है।"

अमरीका और जापानकी स्थितिसे अपनी अनभिज्ञता मुझे स्वीकार करनी ही होगी। जापान जनन-निरोधका प्रचार क्यों कर रहा है इसका मुझे पता नहीं। लेखककी बताई हुई बातें अगर सही हैं और अप्राकृतिक उपायोंसे जनन-निरोध जापानमें आम है तो मैं यह कहनेका साहस करता हूं कि यह श्रेष्ठ राष्ट्र अपने नैतिक नाशकी ओर बहुत तेजीसे बढ़ रहा है।

हो सकता है, मेरी राय बिलकुल गलत हो, मेरे सिद्धान्त गलत तथ्योंके आधारपर स्थिर किए गये हों। पर बनावटी उपायोंके समर्थक थोड़ा धीरज रखें। हालकी मिसालोंके सिवा उनके पास और कोई तथ्य-सामग्री नहीं है। निश्चय ही जो प्रणाली देखनेमें मनुष्यकी नीतिवृत्तिकी इतनी विरोधिनी जान पड़ती है उसके बारेमें निश्चयपूर्वक कुछ कहना अभी अति असामयिक है। अपनी जवानीके साथ खिलवाड़ करना आसान है, पर इस खिलवाड़के कुपरिणामोंसे बचना कठिन है।

: ६ :

गुह्य प्रकरण

जिन पाठकोंने आरोग्यके प्रकरण ध्यानपूर्वक पढ़े हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि इस प्रकरणको और भी ध्यानसे पढ़ें, उसपर खूब विचार करें। अभी दूसरे प्रकरण लिखनेको बाकी हैं और मुझे आशा है कि वे उपयोगी भी होंगे। पर इस विषयपर दूसरा कोई भी प्रकरण इतने महत्त्वका न होगा। मैं पहलेसे बतला चुका हूं कि इन प्रकरणोंमें मैंने एक भी बात ऐसी नहीं लिखी है जिसको मैंने खुद अनुभव न किया हो और जिसपर मेरा दृढ़ विश्वास न हो।

आरोग्यकी बहुत-सी कुंजियां हैं और सभी बहुत जरूरी हैं, पर उसकी मुख्य कुंजी ब्रह्मचर्य है। अच्छी हवा, अच्छा पानी, अच्छी खुराकसे हम आरोग्य पा सकते हैं। पर हम जितना पैसा कमायें उतना सब उड़ा दें तो हमारे पास कुछ बचेगा नहीं। वैसे ही हम जितनी तंदुरुस्ती कमायें उतनी सब खर्च कर डालें तो हमारे पास पूंजी क्या होगी? स्त्री-पुरुष दोनोंको आरोग्य-रूपी धनका संचय करनेके लिए ब्रह्मचर्य-धारणकी पूरी आवश्यकता है। इसमें किसीको भी शक-शुबाह न होना चाहिए। जिसने अपने वीर्यका संचय किया है वही वीर्यवान्, बलवान कहा और माना जा सकता है।

पूछा जायगा, ब्रह्मचर्य है क्या चीज? पुरुष स्त्रीका और स्त्री पुरुषका भोग न करे, यही ब्रह्मचर्य है। भोग न करनेका अर्थ इतना ही नहीं है कि एक दूसरेको भोगकी इच्छासे स्पर्श न करे बल्कि मन इसका विचार भी न करे। इसका सपना भी नहीं होना चाहिए। पुरुष स्त्रीको देखकर पागल न हो, स्त्री पुरुषको देखकर। प्रकृतिने जो गुह्य शक्ति हमें दे रखी है, हमें उचित है कि उसको अपने शरीरमें ही बनाये रखें और उसका उपयोग केवल तनको ही नहीं, मन, बुद्धि और धारण-शक्तिको भी अधिक स्वस्थ-सबल बनानेमें करें।

पर अब देखिये हमारे आस-पास कौन-सा दृश्य दिखाई दे रहा है ? छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष सभी इस मोहमें डूब रहे हैं। ऐसे समय हम पागलसे हो जाते हैं। हमारी अकल ठिकाने नहीं रहती। काम हमें अंधा कर देता है। कामके वशमें हुए स्त्री-पुरुषों और लड़के-लड़कियोंको मैंने बिलकुल पागल बन जाते देखा है। मेरा अपना अनुभव अभी इससे भिन्न नहीं है। जब-जब मेरी वह दशा हुई है मैं अपनी सुध-बुध खो बैठा हूं। यह चीज है ही ऐसी। रत्ती-भर रति-सुखके लिए हम मन भरसे अधिक शक्ति पल भरमें गंवा बैठते हैं। जब हमारा नशा उतरता है तो हम रंक बन जाते हैं। अगले दिन सबेरे हमारा शरीर भारी रहता है। हमें सच्चा चैन नहीं मिलता। हमारा तन शिथिल होता है और मन बेठौर-ठिकाने हो जाता है। इन सबको ठिकाने लगानेके लिए हम सेरों दूध चढ़ाते, रस-भस्म फांकते, 'याकूती' गोलियां खाते और वैद्योंके पास जा-जाकर 'पुष्टई' मांगा करते हैं। क्या खानेसे काम बढ़ेगा, इसकी खोजमें लगे रहते हैं। यों दिन जाते हैं और ज्यों-ज्यों बरस बीतते हैं हमारा शरीर और बुद्धि शिथिल होती जाती है और बुढ़ापेमें अक्ल सठियाई हुई दिखाई देती है।

पर वस्तुतः ऐसा होना ही न चाहिए। बुढ़ापेमें बुद्धि मंद होनेके बदले और तीक्ष्ण होनी चाहिए। हमारी स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि इस देहमें मिले हुए अनुभव हमारे और दूसरोंके लिए लाभदायक हो सकें और जो ब्रह्मचर्यका पालन करता है उसकी ऐसी स्थिति रहती भी है। उसे मृत्युका भय नहीं रहता और मरते समय भी वह भगवानको नहीं भूलता और न बेकारकी हाय-हाय करता है। मरणकालके उपद्रव भी उसे नहीं सताते और वह हँसते-हँसते यह देह छोड़कर मालिकको अपना हिसाब देने जाता है। जो इस तरह मरे वही पुरुष और वही स्त्री है। उसीने सच्चे स्वा-स्थ्यका सम्पादन किया, यह माना जायगा।

हम साधारणतः यह नहीं सोचते कि दुनियामें जो इतना भोग-विलास, डाह, बैर, बड़प्पनका गर्व, आडंबर, क्रोध, अधीरता आदि है उसकी जड़ हमारे ब्रह्मचर्य भंग करनेमें ही है। यों हमारा मन हाथमें न रहे और हम रोज एक या अनेक बार बच्चेसे भी अधिक नासमझ हो जायं तो फिर

जानकर या अनजानमें कौन-कौनसे पाप हम नहीं करेंगे, कौन-सा घोर कर्म है जिसे करने में हमें अटक होगी ?

पर ऐसे लोग भी हैं जो पूछेंगे—ऐसा ब्रह्मचर्य पालन करनेवालेको किसने देखा है ? सभी ऐसे ब्रह्मचारी हो जायं तो यह दुनिया कितने दिन टिकेगी ? इस प्रश्नपर विचार करनेमें धर्मकी चर्चा भी उठ सकती है। अतः उसके उस अंगको छोड़कर मैं केवल लौकिक दृष्टिसे उसपर विचार करूंगा। मेरी रायमें यह दोनों सवाल हमारे कायरपन और डरपोकपनसे पैदा होते हैं। हम ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते नहीं, इसलिए उससे भागनेके लिए बहाने ढूंढ़ते रहते हैं। ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले इस दुनियामें बहुतेरे पड़े हैं। पर वे गली-गली मारे-मारे फिरें तो उनका मूल्य ही क्या होगा ? हीरा पानेके लिए हजारों मजदूरोंको धरतीके पेटमें समा जाना पड़ता है। इसके बाद भी जब धूल-कंकड़ोंका पहाड़ धो डाला जाता है तब कहीं मुट्ठीभर हीरा हाथ लगता है। तब सच्चे ब्रह्मचर्यरूपी हीरेकी तलाशमें कितनी मेहनत करनी होगी, इसका जवाब हर आदमी त्रैराशिक करके निकाल सकता है। ब्रह्मचर्यके पालनसे सृष्टिकी समाप्ति हो जाय तो इससे अपने रामको क्या लेना-देना है ? हम कुछ ईश्वर नहीं हैं। जिसने सृष्टि रची है वह खुद उसकी फिक्र कर लेगा। दूसरे भी उसका पालन करेंगे या नहीं यह सवाल तो हमें करना ही न चाहिए। हम जब वाणिज्य-व्यापार, वकालत आदि करने लगते हैं तब तो यह नहीं पूछते कि अगर सभी वकील-व्यापारी हो जायंगे तो क्या होगा ? जो ब्रह्मचर्यका पालन करेगा उस पुरुष या स्त्रीको कुछ दिन बाद इस सवालका जवाब अपने-आप मिल जायगा। उसे अपने-जैसे दूसरे मिल जायंगे और सभी ब्रह्मचारी हो जायं तो सृष्टि कैसे चलेगी यह भी दिनके उजालेकी तरह स्पष्ट हो जायगा।

संसारी मनुष्य इन विचारोंको किस तरह अमलमें ला सकता है ? विवाहित स्त्री-पुरुष क्या करें ? बाल-बच्चेवाले क्या करें ? जो कामको वशमें न रख सकें वे क्या करें ?

हमारे लिए अच्छी-से-अच्छी स्थिति क्या हो सकती है, यह हमने देख लिया। इस आदर्शको हम अपने सामने रखें तो उसकी हूबहू या उससे

कुछ उतरती नकल उतार सकेंगे। हम बच्चेको अक्षर लिखना सिखाने लगते हैं तो सुन्दर-से-सुन्दर अक्षरके नमूने उसके सामने रखते हैं। बच्चा अपनी शक्तिके अनुसार उनकी पूरी-अधूरी नकल उतारता है। इसी तरह अखंड ब्रह्मचर्यका आदर्श अपने सामने रखकर हम उसके अनुकरणका यत्न कर सकते हैं। ब्याहकर लिया है तो क्या हुआ। प्रकृतिका नियम यही है कि स्त्री-पुरुषको जब सन्तानकी चाह हो तभी वे ब्रह्मचर्यका भंग करें। जो दम्पती इसका ध्यान रखते हुए दो-तीन या चार-पांच बरसमें एक बार ब्रह्मचर्यको तोड़ेंगे वे बिलकुल पागल नहीं बन जायंगे और उनके पास वीर्यरूपी पूंजी भी काफी जमा रहेगी। ऐसे स्त्री-पुरुष तो मुश्किलसे ही दिखाई देते हैं जो केवल सन्तानकी कामनासे ही सम्भोग करते हों। हजारों लाखों जन तो अपनी काम-वासनाकी तृप्ति चाहते हैं और उसके लिए ही सम्भोग करते हैं। फल यह होता है कि उन्हें अपनी इच्छाके विरुद्ध सन्तानकी प्राप्ति होती है। विषय-सुख भोगनेमें हम इतने अन्धे हो जाते हैं कि आगे-पीछे कुछ सुझाई ही नहीं देता। इस विषयमें स्त्रीकी बनिस्बत पुरुष अधिक अपराधी होता है। वह इतना कामांध होता है कि स्त्रीमें गर्भ-धारण और बच्चेके पालन-पोषणका बोझ उठानेकी शक्ति है या नहीं, इसका उसे खयाल तक नहीं रहता।

पश्चिमके लोग तो इस विषयमें सीमाका अतिक्रमण कर गये हैं। वे इसके लिए अनेक उपाय करते हैं कि वे विषय-सुख तो जी भरकर भोगते रहें पर बच्चोंका बोझ उन्हें न उठाना पड़े। इन उपायोंपर पुस्तकें लिखी गई हैं और गर्भ-निरोधके साधन जुटाना एक रोजगार बन गया है। हम इस पापसे अभी तो मुक्त हैं; पर अपनी पत्नियोंपर गर्भ-धारणका बोझ लादते हमें तनिक भी आगा-पीछा नहीं होता, न इसकी ही परवाह होती है कि हमारी सन्तान निर्बल, निर्बुद्धि, वीर्यहीन और नपुंसक होगी। उलटे घरमें बच्चा पैदा होता है तो इसे भगवानकी दया मानते और उसे धन्यवाद देते हैं। निर्बल, निर्जीव, विषयी अपंग सन्तान हो इसे हम ईश्वरका कोप क्यों न मानें? बारह बरसका बालक बाप बने इसमें किस बातकी खुशी मनायें, किस बातका उछाव-बधाव करें? बारह वर्षकी बच्चाका माता बनना ईश्वरका महाकोप क्यों न माना जाय? साल दो-सालके लगाये

हुए पेड़में फल आयें तो उसकी बाढ़ मारी जायगी, यह हम जानते हैं और वह इतनी जल्दी न फले इसका उपाय करते हैं। पर बालवधूके बालक वरसे सन्तान उत्पन्न हो तो हम गाते-बजाते और दावतें देते हैं ? क्या यह सामने खड़ी दीवारको न देखना नहीं है ?.

हिन्दुस्तानमें या दुनियामें और कहीं निर्वीर्य-निकम्मे आदमी कीड़ों-मकोड़ोंकी तरह पैदा हों तो इससे हिन्दुस्तान या दुनियाका उद्धार होगा ? एक·दृष्टिसे तो पशु ही हमसे अच्छे हैं। हमें जब उनसे बच्चा पैदा कराना होता है तभी हम नर-मादाका संयोग कराते हैं। संयोग के बाद गर्भ-काल और प्रसवके बाद जबतक बच्चेका दूध नहीं छूटता और वह बड़ा नहीं हो जाता तबतकका काल अति पवित्र माना जाना चाहिए। इस कालमें स्त्री-पुरुष दोनोंको ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। पर इसके बदले हम क्षण-भर भी सोचे-विचारे बिना अपना काम किये जाते हैं। इतना रोगी हो गया है हमारा मन ! इसको कहते हैं असाध्य रोग। यह रोग हमें मौतके पास पहुंचा देता है ; और मौत नहीं आती तबतक हम पागल की तरह घूमते रहते हैं।

अतः विवाहित स्त्री-पुरुषोंका का फर्ज है कि अपने विवाहका गलत अर्थ न लगाकर सही अर्थ लगायें और जब उन्हें सचमुच सन्तानकी इच्छा और आवश्यकता हो तभी उत्तराधिकारीकी प्राप्तिके उद्देश्यसे समागम करें। हमारी आजकी दयनीय दशामें यह होना बहुत ही कठिन है। हमारी खूराक, हमारी रहन-सहन, हमारी बातचीत, हमारे आसपासके दृश्य सभी हमारी विषय-वासनाको जगानेवाले हैं। अफीमके नशेकी तरह विषय-वासना हमारे सिरपर सवार रहती है। ऐसी स्थितिमें विचार करके पीछे हटना कैसे हो सकेगा ? पर जो होना चाहिए वह कैसे होगा, यह पूछनेवालोंकी शंकाका जवाब इस लेखमें नहीं मिलेगा। यह तो उन्हींके लिए लिखा जा रहा है जो विचार करके, जो करना चाहिए, उसे करने, उसकी कोशिश करनेको तैयार हैं। जो अपनी मौजूदा हालतसे संतोष मान बैठे हैं उन्हें तो इसका पढ़ना भी भारी लगेगा। पर जिन्हें अपनी दीन दशाका पता लग गया है और उससे कुछ ऊब भी उठे हैं उन्हीकी मदद करना इस लेखके लिखे जानेका हेतु है।

ऊपर जो-कुछ लिखा गया है उससे हम यह नतीजा निकाल सकते हैं कि जो लोग अबतक अविवाहित हैं उन्हें इस कठिन कालमें ब्याह करना ही न चाहिए। और अगर ब्याह किए बिना चले ही नहीं तो जितनी देरसे कर सकें, करें। २५-३० वर्ष तक ब्याह न करनेकी तो युवकोंको प्रतिज्ञा ही कर लेनी चाहिए। इस व्रतसे स्वास्थ्यके अतिरिक्त जो अन्य अनेक लाभ होंगे उनका विचार हम यहां नहीं कर सकते। पर हर आदमी वे लाभ ले सकता है।

जो मां-बाप इस लेखको पढ़ें उनसे मेरा कहना है कि जो लोग बचपन ही में अपने बेटे-बेटियोंका ब्याह या सगाई करके उन्हें बेच देते हैं वे उनका घोर अहित करते हैं। ऐसा करके वे अपने बच्चोंका हित करनेके बदले अपने ही अन्धे स्वार्थका साधन करते हैं। उन्हें अपना बड़प्पन दिखाना है, जाति-बिरादरीमें नाम पैदा करना है, बेटेका ब्याह करके हौसला निकालना है। उन्हें बेटेका हित देखना हो तो उसकी पढ़ाई-लिखाईपर निगाह रखें, उसकी सेवा-जतन करें, उसकी देहको दृढ़-पुष्ट बनानेका उपाय करें। इस कठिन कालमें बचपनमें ही उनके गलेमें गृहस्थीका जुआ डाल देनेसे बढ़कर उनका अहित और क्या हो सकता है?

अन्तमें स्वास्थ्यका नियम यह भी है कि पति-पत्नीमेंसे किसी एककी मृत्यु हो जाय तो दूसरा इसके बाद विधुरत्व या वैधव्य-व्रतका पालन करे। कितने ही डाक्टर कहते हैं कि जवान स्त्री-पुरुषको वीर्यपातका मौका मिलना ही चाहिए। दूसरे कितने ही डाक्टर कहते हैं कि किसी भी हालतमें वीर्य-पात आवश्यक नहीं। जब डाक्टर आपसमें यों लड़ रहे हों तब यह मानकर कि डाक्टर हमारे मतका समर्थन करते हैं हम विषय-भोगमें लीन रहें, यह कदापि न होना चाहिए। मेरे अपने और जिन दूसरोंके अनुभव मैं जानता हूं उनके आधारपर मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि स्वास्थ्य-रक्षाके लिए संभोगकी आवश्यकता नहीं है, यही नहीं, उससे—वीर्य-व्ययसे—स्वास्थ्यकी भारी हानि होती है। अनेक बरसोंमें कमाई हुई तन-मनकी शक्ति एक बार-के वीर्य-पातसे भी इतना खर्च हो जाती है कि उस छीजको भरनेके लिए बहुत समय चाहिए। और इतना वक्त लगाकर भी हम अपनी पहली

स्थितिको तो पहुंच ही नहीं सकते। टूटे हुए शीशेको मसालेसे जोड़कर आप उससे काम भले ही ले लें, पर वह होगा तो टूटा हुआ ही।

वीर्यकी रक्षाके लिए स्वच्छ वायु, स्वच्छ जल, स्वच्छ आहार और स्वच्छ विचारकी पूरी आवश्यकता है। इस प्रकार सदाचारका स्वास्थ्यके साथ बहुत नजदीकका नाता है। पूर्ण सदाचारी पुरुष ही पूर्ण स्वास्थ्यका सुख भोग सकता है। 'जगें तबसे सवेरा' मानकर जो लोग ऊपर लिखी बातोंपर भरपूर विचार करके उनमें दी हुई सलाहोंपर अमल करेंगे उन्हें खुद उनकी सचाईका अनुभव हो जायगा। जिसने थोड़े दिन ब्रह्मचर्यका पालन किया होगा वह भी अपने तन और मन दोनोंका बल बढ़ा हुआ पायगा। और यह पारस-मणि एक बार उसके हाथ लगी तो वह यावज्जीवन उसको बहुत संभालकर रखेगा। जरा भी चूकेगा तो तुरंत उसे पता चल जायगा कि उसने भारी भूल की। मैंने तो ब्रह्मचर्यके अगणित लाभ जान और समझ लेनेके बाद भी भूलें कीं और उनके कड़वे फल भी चख लिये हैं। चूकके पहले अपने मनकी जो भव्य दशा थी और उसके बाद जो दीन दशा हो गई, दोनोंकी तसवीरें अब भी मेरी आंखोंके सामने आया करती हैं। पर अपनी चूकोंसे ही मैं इस पारस-मणिका मूल्य जान सका। अब भी ब्रह्मचर्यका अखंड पालन कर सकूँगा कि नहीं यह तो नहीं जानता, पर भगवानकी दया होनेसे पाल सकनेकी आशा रखता हूं। उससे मेरे तन-मनका जो उपकार हुआ है वह मैं देख सकता हूँ। मैं बचपनमें ब्याहा गया। बचपनमें ही कामसे अन्धा बना। बचपनमें ही बाप बना और बहुत बरसोंके बाद जाग सका। जागकर देखा तो जान पड़ा, जैसे महारात्रिका सवेरा हुआ हो। मेरी भूलों और अनुभवोंसे अगर एक भी पाठक चेत गया और उन भूलोंसे बचा तो मैं मान लूँगा कि यह प्रकरण लिखकर मैं कृतार्थ हो गया।

यह त्रिराशि बांधने लायक है। बहुतसे लोग कहते हैं और मैं खुद भी कहता हूँ कि मुझमें भरपूर उत्साह है। मेरा मन तो निर्बल माना ही नहीं जाता। कितने ही लोग तो मुझे हठी मानते हैं। मेरे तन और मनमें रोगोंका बसेरा है फिर भी जिन लोगोंसे मेरा संग-साथ हुआ है, उनकी तुलनामें मैं काफी तन्दुरुस्त माना जाता हूँ। यह दशा तब है जब कमोबेश बीस वर्ष

भोग-रत रहनेके बाद मैं जाग पाया। तब अगर वे २० साल भी मैं बच सका होता तो आज मैं कहां होता ? मैं मानता हूं कि वैसा हुआ होता तो आज मेरे उत्साहका पार न होता और जनताकी सेवामें या अपने स्वार्थके कामोंमें ही मैं इतना उत्साह दिखलाता कि मेरी बराबरी करनेवालेकी पूरी परीक्षा हो जाती। इतना सार मेरे खंडित ब्रह्मचर्यके उदाहरणमेंसे खींचा जा सकता है। तब जो अखंड ब्रह्मचर्यका पालन कर सकता है उसके शारीरिक, मानसिक और नैतिक बलको तो जिसने देखा है वही जान सकता है। उसका वर्णन नहीं हो सकता।

इस प्रकरणको पढ़नेवालोंने यह तो समझ ही लिया होगा कि जब मैंने विवाहितोंको ब्रह्मचर्य-धारणकी ओर और जिनका घर उजड़ गया है उन्हें विधुर या विधवा बने रहकर ही जिंदगी बितानेकी सलाह दी है, तब विवाहित या अविवाहित स्त्री या पुरुषको और कहीं अपनी काम-वासना तृप्त करनेका अवकाश तो हो ही नहीं सकता। परन्तु परस्त्री या वेश्यापर कुदृष्टि डालनेके जो घोर परिणाम होते हैं, उनपर विचार करनेके लिए हम यहां नहीं रुक सकते। यह धर्म और नीति-तत्त्वका गम्भीर प्रश्न है। यहां तो इतना ही कहा जा सकता है कि परस्त्री-गमन और वेश्या-गमनसे आदमी गरमी-सूजाक जैसे रोगोंसे पीड़ित होता और सड़ता दिखाई देता है। प्रकृति इतनी दया करती है कि ऐसे स्त्री-पुरुषोंको अपने पापका फल तुरत मिल जाता है। फिर भी वे सोये ही रहते है और अपने रोगोंकी दवाकी खोजमें वैद्य-डाक्टरोंके यहां भटकते रहते हैं। परस्त्री-गमन न हो तो ५० फीसदी वैद्य-डाक्टर बेरोज-गार हो जायंगे। इन रोगोंने मनुष्य-जातिको इस तरह जकड़ लिया है कि विचारशील डाक्टर भी कहते है कि परस्त्री-गमनकी बुराई समाजसे न गई तो हमारे लाख खोज करते रहनेपर भी मानव-जातिका नाश निश्चित है। इससे होनेवाले रोगोंकी दवाएं भी इतनी जहरीली हैं कि उनसे एक रोग जाता दिखाई देता है तो दूसरे देहमें डेरा डालते हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते हैं।

यह प्रकरण जितना सोचा था उससे अधिक लंबा हो गया। अतः अब विवाहित जनोंको ब्रह्मचर्य-पालनके उपाय बताकर इसे समाप्त करता

हूँ । महज़ खूराक, हवा-पानीके नियमोंका पालन करके ही कोई विवाहित पुरुष ब्रह्मचर्य नहीं निभा सकता । उसे अपनी स्त्रीके साथ एकान्तमें मिलना-जुलना बंद करना होगा । थोड़ा विचार करनेसे हर आदमी देख सकता है कि संभोगके सिवा और किसी बातके लिए अपनी स्त्रीसे एकान्तमें मिलनेकी जरूरत नहीं होती । रातमें पति-पत्नीको अलग-अलग कमरोंमें सोना चाहिए । दिनमें दोनोंको अच्छे कामों और अच्छे विचारोंमें सदा लगे रहना चाहिए । जिनसे अपने सद्विचारको उत्तेजन मिले ऐसी पुस्तकें पढ़ें । ऐसे स्त्री-पुरुषोंके चरित्रोंका मनन करें और विषय-भोगमें दुःख-ही-दुःख है इसे सदा स्मरण रखें । संभोगकी इच्छा जब-जब हो तब-तब ठंडे पानीसे नहा लिया करें । शरीरमें रहनेवाली महाग्नि इससे और अच्छा रूप प्राप्त करेगी और स्त्री-पुरुष दोनोंके लिए उपकारक होकर उनके सच्चे सुखकी वृद्धि करेगी । यह बात है तो कठिन, पर कठिनाइयोंको जीतनेके लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है । जिसे सच्चा स्वास्थ्य भोगना हो उसे इस कठिनाईपर विजय प्राप्त करनी ही होगी ।

: १० :

सुधार या बिगाड़

एक भाई जिन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूँ, लिखते हैं :

"क्या प्रचलित नीति प्राकृतिक है ? यह प्रश्न मनमें बारंबार उठा करता है। आपने 'नीति-धर्म' लिखकर आजकी प्रचलित नीतिका समर्थन किया है। पर क्या यह नीति प्रकृति-प्रेरित है ? मुझे तो ऐसा लगता है कि यह अप्राकृतिक है। आजकी नीतिकी बदौलत ही तो मनुष्य विषय-भोगमें पशुसे भी अधिक अधम बन गया है। आजकी नीति-मर्यादामें विवाह-सम्बन्ध सन्तोषजनक शायद ही होता हो, होता ही नहीं कहूं तो भी गलत न होगा। जब ब्याहका नियम न था तब प्रकृतिके अनुसार स्त्री-पुरुषका समागम होता था और वह सुखदायी होता था। जबसे नीतिके बंधन लगे तबसे तो यह समागम एक तरहकी व्याधि बन गया है जिसमें आज सारा जगत् ग्रस्त है और होता जा रहा है।

"फिर नीति कहें किसको ? एककी नीति दूसरेके लिए अनीति है। एक एक ही स्त्रीके साथ ब्याह करना स्वीकार करता है, दूसरा अनेक पत्नियाँ करनेकी छूट देता है। कोई चाचा-मामाके बेटे-बेटीके साथ विवाह-सम्बन्ध त्याज्य मानता है, कोई इसकी इजाजत देता है। तब किसे नीति मानें ? मेरा तो कहना है कि ब्याह एक सामाजिक विधान है, धर्मके साथ इसका कोई लगाव नहीं। अगले जमानेके महापुरुषोंने देश-कालके अनुसार नीति बना ली।

"अब आप देखें कि इस नीतिने दुनियाका किस तरह नाश किया है—

१. गरमी-सूजाक-जैसे रोग पैदा हुए। पशुओंमें इन बीमारियोंका पता नहीं है, इसलिए कि उनमें समागम प्रकृतिके नियमानुसार होता है।

२. भ्रूण-हत्या और बाल-हत्याएं हुईं, यह लिखते तो कलेजा कांप

उठता है। इस नीति-नियमके कारण ही कोमलहृदया माता क्रूर बनकर अपने ही हाथों, गर्भमें ही या गर्भसे बाहर आनेपर, अपने बच्चोंका वध करती है।

३. बाल-विवाह, बेमेल विवाह इत्यादि इच्छा-विरुद्ध समागम। इसी समागमकी बदौलत आज दुनिया, खासकर हिन्दुस्तान बल-वीर्यमें इतना रंक हो रहा है।

४. ज़न-ग़मीन-ज़रके झगड़ोंमें 'ज़न' (स्त्री) के लिए होनेवाले झगड़ेका स्थान पहला है। यह भी आज चलनेवाली नीतिकी ही देन है।

"इन चारके सिवा और बातें भी होंगी। तब मेरी दलील सही हो। तो क्या प्रचलित नीतिमें सुधार न होना चाहिए ?

"आप ब्रह्मचर्यको मानते हैं सो तो ठीक है। पर ब्रह्मचर्य अपनीखुशीका होना चाहिए, जोर-जबर्दस्तीका नहीं। मगर हिंदू तो लाखों विधवाओंसे जबर्दस्ती ब्रह्मचर्य रखवाते हैं। इन विधवाओंका दुःख तो आप जानते हैं। इसकी बदौलत बाल-हत्याएँ होती हैं, यह बात भी आपसे छिपी नहीं है। ऐसी दशामें उनके पुनर्विवाहके पक्षमें आप जबर्दस्त आन्दोलन चलायें तो क्या यह कम महत्त्वका कार्य होगा ? फिर इस ओर जितना चाहिए उतना ध्यान आप क्यों नहीं देते ?"

मैं समझता हूँ, लेखकने इस लेखमें जो प्रश्न उठाये हैं वे केवल इसीलिए उठाये गये हैं कि मैं इस विषयपर कुछ लिखूं। कारण यह कि इसमें जिस पक्षका समर्थन किया गया है उस पक्षका समर्थन लेखक खुद करता होगा यह मैं नही जानता। पर इतना जानता हूं कि इस लेखमें जो प्रश्न आये हैं वे अब हिन्दुस्तानमें भी उठने लगे हैं। इन विचारोंकी पैदाइश पश्चिममें हुई है। ब्याह दकियानूसी, जंगली, अनीति बढ़ानेवाली प्रथा है—यह माननेवालोंकी संख्या पश्चिममें पहले भी कुछ छोटी नहीं थी। अब तो शायद वह बढ़ती भी जा रही है। ब्याहको जंगली रिवाज माननेके लिए पच्छिममें जो दलीलें दी जाती हैं उन सभीको मैंने नहीं पढ़ा है। पर प्रस्तुत लेखकने जो दलीलें दी हैं वैसी ही वे हों तो मुझ-जैसे पुराण-पंथी (या मेरा यह दावा टिक सकता हो तो सनातनी) को उनका खंडन करनेमें कोई कठिनाई या परेशानी न होगी।

मनुष्यकी पशुके साथ तुलना करना ही भूलकी जड़ है। मनुष्यके लिए जो नीति और मानदंड व्यवहृत होता है वह पशु-नीतिसे अनेक विषयोंमें भिन्न और श्रेष्ठ है। और इस भेदमें ही मनुष्यकी विशेषता है। इसलिए प्रकृतिके नियमोंका जो अर्थ पशु-योनिके लिए किया जाता है वह मनुष्य-योनिपर सदा घटित नहीं होता। मनुष्यको ईश्वरने विवेककी शक्ति दे रखी है। पशु पूर्णतया पराधीन हैं। पशुके लिए स्वतन्त्रता अर्थात् पसन्द, चुनाव जैसी कोई चीज है ही नहीं। पर मनुष्यकी अपनी पसन्द होती है—दो चीजोंमेंसे एकको वह चुन सकता है, भले-बुरेका विचारकर सकता है, और स्वतन्त्र होकर काम करता है इससे उसके लिए पाप-पुण्य भी होता है। पर जहां उसके लिए पसन्द-चुनावका अवकाश है वहां पशुसे हीन वन जानेका अवकाश भी है। वह अगर अपने दिव्य स्वभावका अनुसरण करे तो वह पशुसे ऊपर भी उठ सकता है। जंगली-से-जंगली जान पड़ती हुई जातिमें भी थोड़ा-बहुत विवाहका बंधन होता ही है। अगर कहिए कि इस बंधनमेंही उसका जंगलीपन है, क्योंकि पशु इस बंधनमें बंधता ही नहीं तो इसका अर्थ यह निकला कि स्वच्छन्दता ही मनुष्यका नियम है। पर सारे मनुष्य चौबीस घंटे भी पूर्ण स्वेच्छाचारी बने रहें तो दुनियाका खातमा ही हो जाय। कोई किसीकी न सुने,न माने,स्त्री-पुरुषके बीच किसी मर्यादाका होना अधर्म माना जाय। मनुष्यके वासना-विकार तो पशुसे प्रबल होते ही हैं। इन विकारोंकी लगाम ढीली करदी जाय तो इनके वेगमेंसे पैदा होनेवाली आग ज्वालामुखीका विस्फोट बनकर क्षण-भरमें दुनियाको भस्म कर डालेगी। थोड़ा-सा विचार करनेसे यह बात हमारे लिए स्पष्ट हो जायगी कि मनुष्यने जो इस जगत्के दूसरे अनेक प्राणियोंपर स्वामित्व प्राप्त कर लिया है वह केवल अपने संयम, त्याग, आत्म-बलिदान, यश और कुरबानीके बलसे ही किया है।

गरमी-सूजाकका उपद्रव ब्याहकी बदौलत नहीं है। उनकी उत्पत्तिका कारण है विवाहके नियमोंका भंग किया जाना और मनुष्यका पशु न होते हुए भी पशुका अनुकरण करते जाकर दूषित हो जाना। विवाहके नियमोंका पालन करनेवाले एक भी आदमीको मैं नहीं जानता जिसे कभी ऐसी भयानक बीमारियां हुई हों। चिकित्सा-शास्त्रने इस बातको सिद्ध कर दिया

है कि जहां-जहां रोग हुए हैं वहां-वहां मुख्यतः विवाह-नीतिका भंग करने या इस नीतिका भंग करनेवालोंके स्पर्शसे ही हुए हैं। बाल-विवाह और बाल-हत्याकी निर्दय प्रथा भी विवाह-नीतिसे नहीं बल्कि उस नीतिका भंग करनेसे पैदा हुई है। विवाह-नीति तो यह कहती है कि जब पुरुष या स्त्री पूरी उम्रको पहुंच जाय, उसे सन्तानकी चाह हो, वह तन-मनसे स्वस्थ हो, तभी कुछ मर्यादाओंके अंदर रहते हुए वह अपने लिए योग्य साथी ढूंढ़ले या उसके मां-बाप ढूंढ़ दें। उस साथीमें भी आरोग्य आदि गुण होने ही चाहिए। इस विवाह-नीतिका अनुसरण करनेवाले आदमी दुनियामें कहींभी जाकर देखिए सुखी ही दिखाई देंगे। जो बात बाल-विवाहकी है वही वैधव्यकी भी है। दुःखरूप वैधव्य विवाह-नीतिके भंगसे ही उत्पन्न होता है। जहां शुद्ध सच्चा ब्याह हुआ हो वहां वैधव्य या विधुरत्व सहज सुखरूप और शोभारूप होते हैं। विवाह-सम्बन्ध जहां ज्ञानपूर्वक जोड़ा जाता है वहां यह सम्बन्ध केवल देहका ही नहीं बल्कि आत्माका भी होता है। और आत्माका सम्बन्ध देह छूट जानेपर भी बिना रहता है, वह तो कभी भुलाया ही नहीं जा सकता। जिसे इस सम्बन्धका ज्ञान है उसके लिए पुनर्विवाह अनहोनी बात है, अनुचित है, अधर्म है। जिस ब्याहमें ऊपर बताये हुए नियमोंका पालन न हो उस सम्बन्धको ब्याह कहना ही न चाहिए। और जहां विवाह नहीं वहां वैधव्य या विधुरत्व-जैसी कोई चीज हो ही नहीं सकती। ऐसे आदर्श विवाह अगर हमें अधिक होते हुए नहीं दिखाई देते तो यह उस विवाहकी प्रथाका नाश करनेका नहीं बल्कि उसे दृढ़ नींवपर स्थापित करनेकी दलील होनी चाहिए।

सत्यके नामसे असत्य चलानेवालोंकी संख्या देखकर कोई सत्यमें ही दोष निकाले या उसकी अपूर्णता सिद्ध करनेका यत्न करे तो हम उसे अज्ञान मानेंगे। वैसे ही विवाह-नीतिके भंगके उदाहरणोंसे उस नीतिकी निंदा करनेका यत्न भी अज्ञान और अविचारका ही लक्षण है।

लेखकका कहना है कि विवाह धर्म या नीतिका विषय नहीं है, यह तो महज़ एक रूढ़ि या रिवाज है, और वह भी धर्म और नीतिके विरुद्ध है, इसलिए इस लायक है कि उठा दिया जाय। पर मेरी अल्प मतिके अनुसार तो विवाह धर्मकी रक्षा करनेवाली बाड़ है और वह न रही तो दुनिया में धर्म

नामकी कोई वस्तु भी न रहेगी। धर्मकी नींव ही संयम या मर्यादा है। जो आदमी संयमी, परहेजगार नहीं है वह धर्मको क्या समझेगा? पशुकी बनिस्बत मनुष्यमें वासना-विकार बहुत अधिक हैं। दोनोंके विकारोंकी तुलना हो ही नहीं सकती। जो आदमी अपनी वासनाओं, विकारोंको वशमें नहीं रख सकता वह ईश्वरकी पहचान कर ही नहीं सकता। इस सिद्धान्तका समर्थन करनेकी आवश्यकता ही नहीं। कारण यह कि जो ईश्वरका अस्तित्व अथवा आत्मा और देहकी भिन्नताको स्वीकार नही करता उसके लिए विवाह-बंधनकी आवश्यकता सिद्ध करना कठिन होगा, यह मैं मानता हूँ। और जो आत्माका अस्तित्व स्वीकार करता और उसका विकास करना चाहता है उसे यह समझानेकी जरूरत होती ही नहीं कि देहका दमन किये बिना आत्माकी पहचान या उसका विकास होना अनहोनी बात है। देह या तो स्वच्छंद आचरणका साधन होगी या आत्माको पहचाननेका तीर्थक्षेत्र। अगर वह आत्माकी पहचान करनेवाला तीर्थस्थान है तो उसमें स्वेच्छाचारके लिए स्थान हो ही नहीं सकता। देहको आत्माके अधीन करनेका प्रयत्न प्रतिक्षण कर्तव्य है।

'ज़न-ज़मीन-ज़र' 'झगड़ेके घर' वहीं होते हैं; जहां संयम-धर्मका पालन नहीं होता। व्याहकी प्रथाको मनुष्य जितना ही आदर-मान देगा स्त्री 'झगड़ेका घर' बननेसे उतना ही बचेगी। अगर हरएक स्त्री-पुरुष पशुकी तरह जब जैसा चाहे आचरण कर सके तो सब मनुष्य आपसमें लड़कर एक-दूसरेका नाश ही कर डालें। इसलिए मेरी तो यह पक्की राय है कि जिन दोष-दुराचारोंका उल्लेख लेखकने किया है उनकी दवा विवाह-धर्मका छेदन नहीं बल्कि उसका सूक्ष्म निरीक्षण और पालन है।

कहीं स्वजनों और निकट सम्बन्धियोंमें व्याहका सम्बन्ध जोड़नेकी इजाजत है, कहीं नहीं, और यह निस्संदेह नीतिकी भिन्नता है। कहीं एक-पत्नी-व्रतका पालन धर्म माना जाता है, कहीं एक साथ कई पत्नियोंका पति बननेमें प्रतिबंध नहीं होता। नीतिमें यह भिन्नता न होना इष्ट है। पर यह भेद हमारी अपूर्णताकी सूचना देता है, नीतिकी अनावश्यकताका नहीं। हमारा अनुभव ज्यों-ज्यों बढ़ता जायगा त्यों-त्यों सब जातियों और सब

धर्मोंके माननेवालोंमें नीतिकी एकता पैदा होती जायगी। नीतिकी सत्ता स्वीकार करनेवाला जगत् तो आज भी एकपत्नी-व्रतको ही आदरकी दृष्टिसे देखता है। कोई भी धर्म यह तो कहता ही नहीं कि अनेक स्त्रियोंको पत्नी बनाना पुरुषपर फ़र्ज़ है, वह इसकी छूट भर देता है। देश-काल देखकर किसी बातकी इजाजत दे दी जाय तो इससे आदर्श गलत नहीं हो जाता और न आदर्शकी भिन्नता ही सिद्ध होती है।

विधवाओंके विषयमें अपने विचार मैं अनेक बार प्रकट कर चुका हूं। बाल-विधवाका पुनर्विवाह मैं इष्ट मानता हूं। इतना ही नहीं, यह भी मानता हूँ कि उसका ब्याह कर देनामां- बापका फ़र्ज़ है।

: ११ :

वीर्य-रक्षा

कुछ नाजुक मसलोंकी निजी तौरपर चर्चा करना पसन्द करते हुए भी मुझे प्रकाश्य रूपमें उनकी चर्चा करनी पड़ती है। 'यंग इंडिया' के पाठक मुझे इसके लिए माफ़ करेंगे। पर जिस साहित्यको मुझे मजबूरन सरसरी तौरपर पढ़ लेना पड़ा है और श्री ब्यूरोकी पुस्तकपर मेरी आलोचना को लेकर मेरे पास जो पचासों पत्र आये हैं उनके कारण समाजके लिए अति महत्त्वपूर्ण एक प्रश्नकी सार्वजनिक रूप में चर्चा करना जरूरी हो गया है। एक मलाबारी भाई लिखते हैं—

"श्री ब्यूरोकी पुस्तककी आलोचनामें आपने लिखा है कि ब्रह्मचर्य अथवा लंबे अरसे तक संयम रखनेसे किसीको हानि हुई हो, इसकी एक भी मिसाल हमें नहीं मिलती। मुझे खुद अपने लिए तो अधिक-से-अधिक तीन सप्ताह तक संयम रखना ही लाभजनक मालूम होता है। इसके बाद आम तौरसे मुझे बदन भारी और मन-शरीर दोनोंमें बेचैनी मालूम होने लगती है, जिससे मिजाजमें भी चिड़चिड़ापन पैदा हो जाता है। तभी तबीयत ठिकाने आती है जब स्वाभाविक संयोग द्वारा वीर्यपात हो जाय या प्रकृति खुद ही स्वप्नदोषके रूपमें उसका उपाय कर दे, इससे देह या दिमागमें कमजोरी महसूस करनेके बदले,सवेरे उठनेपर मैं अपना दिमाग ठंडा और हलका पाता हूँ और अपना काम अधिक उत्साहसे कर सकता हूं।

"मेरे एक मित्रके लिए तो संयम स्पष्ट रूपसे हानिकर सिद्ध हुआ। उनकी उम्र ३२के लगभग होगी। पक्के शाकाहारी और धर्मनिष्ठ पुरुष हैं। न कोई तनका दुर्व्यसन है, न मनका। फिर भी दो साल पहले तक, जब उन्होंने ब्याह किया, रातमें स्वप्नदोष होकर, बहुत अधिक वीर्यपात हो जाया करता था, जिससे सवेरे तन, मन दोनों बहुत सुस्त, कमजोर मालूम

होते थे। कुछ दिन बाद उन्हें पेडूमें असह्य पीड़ा होने लगी। गांवमें एक वैद्यकी सलाहसे उन्होंने ब्याह कर लिया और अब भले-चंगे हैं।

"मैं बुद्धिसे तो ब्रह्मचर्यकी श्रेष्ठताका कायल हूं, जिसके विषयमें हमारे सभी प्राचीन शास्त्र एकमत हैं। पर जो अनुभव मैंने ऊपर लिखा है उससे स्पष्ट है कि हमारी शुक्र-ग्रंथियोंसे जो वीर्य निकलता है, उस सबको पचा लेनेकी शक्ति हममें नहीं है और वह फाजिल वीर्य विष हो जाता है। अतः आपसे सविनय प्रार्थना है कि मुझ-जैसे लोगोंके लिए, जिन्हें संयम और ब्रह्मचर्यके महत्त्वमें पूर्ण विश्वास है, 'यंग इण्डिया' में हठ-योगके आसन जैसा कोई साधन या क्रिया बतानेकी कृपा करें जिससे हम अपने शरीरमें पैदा होनेवाले वीर्यको पचा लेनेमें समर्थ हो सकें।"

पत्र-लेखकने जो मिसालें पेश की हैं वे सामान्य अनुभव हैं। ऐसे अनेक उदाहरणोंमें मैंने देखा है कि लोग दो-चार अनुभवोंको ही लेकर सामान्य नियम बना लेते हैं। वीर्यको पचा लेनेका सामर्थ्य लंबे अभ्याससे प्राप्त होता है। यह अनिवार्य भी है, क्योंकि इससे हमें तन-मनका जो बल मिलता है वह और किसी साधनासे नहीं मिल सकता। दवाएं और ऊपरी उपाय शरीरको मामूली तौरसे ठीक रख सकते हैं। पर मनसे वे इतना निर्बल कर देते हैं कि वासनाएं और विकार घातक शत्रुकी तरह हर आदमीको सदा घेरे रहते हैं। उनका सामना करनेकी शक्ति उसमें नहीं रह जाती।

हम अक्सर जो फल चाहते हैं उनसे उलटे फल देनेवाले नहीं तो उनकी प्राप्तिमें बाधक होनेवाले कर्म करते हैं। हमारा जीवन-क्रम वासनाओंकी तृप्तिको लक्ष्य मानकर ही बनाया गया है। हमारा भोजन, हमारा साहित्य, हमारा मन-बहलाव, हमारा काम करनेका समय, सभी इस ढंगसे रखे गये हैं कि हमारी पाशव वासनाओंको उभारें और पोसें। हममेंसे सैकड़े ९०-९५ लोगोंकी इच्छा होती है कि ब्याह करें, बाल-बच्चे हों और जीवनका सुख—मर्यादित रूपमें ही सही—भोगें। जीवनके अन्ततक यही ढर्रा चलता रहता है।

पर नियमके अपवाद सदा हुए हैं, आज भी हैं। ऐसे लोग भी हुए हैं और हैं जो अपना संपूर्ण जीवन मानव-जतिकी सेवा में लगा देना चाहते थे। मानव-जाति की सेवा भगवान्‌की भक्तिका समानार्थक है। वे अपने विशेष

कुटुम्बके पालन-पोषण और विश्व-कुटुम्बकी सेवामें अपने समयका बटवारा करना नहीं चाहते। निश्चय ही ऐसे स्त्री-पुरुषोंके लिए वह साधारण जीवन-क्रम रखना संभव नहीं जो विशेष, वैयक्तिक स्वार्थोंकी पूर्तिको उद्देश्य मानकर बनाया गया है जो भगवान्को पानेके लिए ब्रह्मचर्य-व्रत लेगा उसे जीवनकी लगाम ढीली कर देनेसे मिलनेवाले सुखोंका मोह छोड़ना ही होगा और इस व्रतके कड़े बंधनोंमें ही सुख मानना होगा। वह दुनियामें रहे भले ही, पर उसका होकर नहीं रहेगा। उसका भोजन, उसका काम-धंधा, उसके काम करनेका समय, उसके मन-बहलावके साधन, उसका साहित्य, जीवनके प्रति उसकी दृष्टि, सभी साधारण जन-समुदायसे भिन्न होंगे।

अब हम यह पूछ सकते हैं कि पत्र-लेखक और उनके मित्रने क्या पूर्ण ब्रह्मचारी बननेका संकल्प किया था और किया था तो अपने जीवनके ढंगको उस सांचेमें ढाल लिया था? अगर यह नहीं किया तो यह समझना कठिन नहीं कि क्यों एकको वीर्यपातसे आराम मिलता था और दूसरेको उससे सुस्ती-कमजोरी पैदा होती थी। ब्याह निस्संदेह दूसरेके लिए दवा था। उन लाखों-करोड़ों आदमियोंके लिए भी वह परम स्वाभाविक और इष्ट अवस्था है जिनका मन उनके न चाहनेपर भी सदा ब्याह और विवाहित जीवनकी बातें सोचा करता है। न दबाये हुएपर अमूर्त विचारकी शक्ति उस विचारसे कहीं अधिक होती है जो मूर्तिमान हो चुका हो, अर्थात् कार्य-रूप प्राप्त कर चुका हो। और जब कर्मपर समुचित अंकुश रखा जाता है तब वह खुद विचारपर ही असर डालने और उसे ठीक रास्ते पर लगाने लगता है। इस रीतिसे कार्य-रूप प्राप्त करनेवाला विचार बन्दी बनकर हमारे वशमें आ जाता है। इस दृष्टिसे देखिए तो ब्याहभी संयमका एक प्रकार ही है।

जो लोग संयमका जीवन बिताना चाहते हैं, उन्हें ब्यौरेवार हिदायतें एक छोटे-से अखबारी लेखमें नहीं दी जा सकतीं। ऐसे लोगोंको तो मैं अपनी छोटी-सी पुस्तक 'आरोग्यविषयक सामान्य ज्ञान' पढ़ जानेकी सलाह दूंगा, जो इसी उद्देश्यको लेकर कुछ बरस पहले लिखी गई थी। नये अनुभवोंकी दृष्टिसे उसके कुछ अंशोंको दोहरानेकी जरूरत जरूर हो गई है; पर उसके

एक भी शब्दको मैं वापस लेनेके लिए तैयार नहीं हूं। फिर भी संयम-पालनके सामान्य नियम यहां बताये जा सकते हैं—

१. मिताहारी बनिए, सदा थोड़ी भूख बाकी रहते ही चौकेपरसे उठ जाइए।

२. अधिक मिर्च-मसालेवाली और अधिक घी-तेलमें तली-पकी साग-भाजियोंसे परहेज रखिए। जब दूध काफी मिलता हो तो अलगसे घी-तेल खानेकी जरूरत बिलकुल नहीं होती। और जब वीर्यका व्यय बहुत थोड़ा होता है तब थोड़ा भोजन भी काफी होता है।

३. तन-मन दोनोंको सदा सुथरे कामोंमें लगाये रखिए।

४. जल्दी सोने और जल्दी उठनेका नियम जरूरी चीज है।

५. सबसे बड़ी बात यह है कि संयमका जीवन बितानेके लिए भगवान्‌के पाने, उनसे सायुज्य-लाभकी उत्कट जीती-जागती इच्छा होना पहली शर्त है। हृदय जब इस बुनियादी बातका अनुभव करने लगेगा तब यह विश्वास दिन-दिन बढ़ता जायगा कि भगवान् अपने इस औजारको खुद साफ-सुथरा और काम देने लायक बनाये रखेंगे। गीता कहती है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

और यह अक्षरशः सत्य है।

पत्र-लेखक आसन और प्राणायामकी बातें करते हैं। मैं मानता हूं कि संयमके पालनमें आसन-प्राणायामका स्थान महत्त्वपूर्ण है। पर मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि इस विषयमें मेरा अनुभव इस लायक नहीं कि लिखा जाय। जहांतक मैं जानता हूं, इस विषयपर ऐसा साहित्य नहींके बराबर ही है जिसका आधार इस जमानेका अनुभव हो। पर यह क्षेत्र अन्वेषण करने योग्य है। मगर मैं अनुभवहीन पाठकोंको यह चेतावनी दूंगा कि वे इसके प्रयोग न करें और न जो कोई हठयोगी उन्हें मिल जाय उसको गुरु बना लें। उन्हें यह विश्वास रखना चाहिए कि संयमयुक्त और धर्म-निष्ठ जीवन ब्रह्मचर्यके अति अभीष्ट लक्ष्यकी सिद्धिके लिए पर्याप्त है।

: १२ :

मनोवृत्तियोंका प्रभाव

एक भाई लिखते हैं—

"जनन-निरोधके विषयपर 'यंग इण्डिया'में आपने जो लेख लिखे हैं उन्हें मैं बड़े चावसे पढ़ता रहा हूँ। आशा है, आपने जे० ए० हैडफील्डकी पुस्तक 'साइकालोजी एंड मारल्स (मानस-शास्त्र और नीति) पढ़ी होगी। मैं उसके इन वाक्योंकी ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ—'काम-वासना की अभिव्यक्ति जब हमारी नीति-भावनाके प्रतिकूल होती है तो हम उसे रीति-सुख कहते हैं और जब वह हमारी प्रेम-भावनाके अनुकूल होता है तब हम उसे कामजनित आनन्द कहते हैं। काम-वासनाकी यह अभिव्यक्ति या तृप्ति पति-पत्नीके परस्पर प्रेमको नष्ट न करके उसको और गाढ़ा करती है। पर संयमरहित संभोग और काम-वासनाकी तृप्ति हेय सुख है, इस भ्रमसे किया जानेवाला इन्द्रिय-दमन दोनों अक्सर मिजाजमें चिड़चिड़ापन पैदा करते और प्रेमको शिथिल कर देते हैं।' अर्थात्, लेखक यह मानता है कि संभोग सन्तानोत्पादनके अतिरिक्त पति-पत्नीके परस्पर प्रेमको भी अधिक पुष्ट और दृढ़ करता है, इसलिए वह एक धार्मिक संस्कार या क्रिया जैसा है और लेखककी बात ठीक हो तो केवल सन्तानोत्पादनके लिए किया जाने-वाला ही संभोग जायज है—अपने इस सिद्धान्तका समर्थन आप किस तरह करेंगे, यह जाननेकी मुझमें उत्सुकता है। मैं खुद तो लेखककी रायको ठीक ही मानना चाहता हूं, क्योंकि वह मानस-शास्त्रके एक प्रमुख पंडितकी राय तो है ही, मैं खुद भी ऐसे लोगोंको जानता हूं जिनका दाम्पत्य-जीवन प्रेम-भावनाको शरीर-संगके रूपमें व्यक्त करनेकी स्वाभाविक इच्छाके दमनकी कोशिशसे विकृत और नष्ट हो गया है। एक मिसाल लीजिये। एक युवक और एक युवती एक दूसरेको प्यार करते हैं। पर उनके पास इतना पैसा

नहीं कि बच्चेके पालन-पोषण और पढ़ाने-लिखानेका बोझ उठा सकें। यह तो आप भी जानते ही होंगे कि इस सामर्थ्यके बिना बच्चा पैदा करना पाप है। आप चाहें तो यह भी कह सकते हैं कि बच्चा पैदा करना स्त्रीकी तन्दुरुस्तीके लिए खराब होगा या उसके पास यों ही जरूरतसे ज्यादा बच्चे हैं। अब आपके मतानुसार इस जोड़ेके लिए दो ही रास्ते हैं—या तो वे ब्याह करें और अविवाहितकी तरह अलग-अलग रहें या अविवाहित रहें। पहली हालतमें हैडफील्डकी बात सही हो तो वासनाके दमनके कारण उनमें चिड़-चिड़ापन पैदा होगा और उनका प्रेम नष्ट होगा। दूसरी सूरतमें भी वह नष्ट होगा, क्योंकि प्रकृति हमारी मानव-व्यवस्थाओंका कतई लिहाज नहीं करती। यह बेशक हो सकता है कि वे एक-दूसरेसे जुदा हो जायं। पर इस बिलगावमें भी मन तो अपना काम करता रहेगा। अतः वासनाके दमनसे मानस विकृतियां उत्पन्न होंगी। और अगर समाज-व्यवस्थाको बदलकर ऐसी कर दें कि हर आदमी अधिक-से-अधिक बच्चोंका बोझ उठानेमें समर्थ हो जाय तो भी जातिके लिए अति वंश-वृद्धि और स्त्रीके लिए अति प्रसवका खतरा तो बना ही रहेगा। कारण यह कि पुरुष अतिशय संयम करते हुए भी साल-भरमें एक बच्चेका बाप तो बन ही जायगा। अतः आप या तो ब्रह्मचर्यका समर्थन करें या जनन-निरोधका। क्योंकि यदा-कदाके समागमका अर्थ भी प्रतिवर्ष एक सन्तानकी प्राप्ति हो सकती है और जैसा कि कभी-कभी अंग्रेज पादरियोंके यहां होता है, यह पतिके लिए तो भगवान्का प्रसाद होगा; पर बेचारी पत्नीके लिए मौतके मुहमें पैठना हो सकता है।

"आप जिसे संयम कहते हैं वह भी प्रकृतिके काममें उतना ही हस्तक्षेप है जितना गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधन; बल्कि उससे बड़ा हस्तक्षेप है। गर्भ-निरोधके साधनोंकी बदौलत मनुष्य विषय-भोगमें अति कर सकता है और यह वह करेगा निःशंक चित्तसे। और अगर वह अपने-आपको बच्चोंकी पैदाइशका कारण नहीं बनने देता तो उस पापका फल वह खुद ही भुगतेगा, और किसीको वह न भुगतना होगा। याद रखिये, खानोंके मजदूरों और मालिकोंमें आज जो संघर्ष हो रहा है उसमें अन्तमें मालिक ही जीतेंगे,

क्योंकि मजदूरोंकी संख्या बहुत बड़ी है। बहुत अधिक बच्चे पैदा करनेवाले बच्चोंका ही अहित नहीं करते, मानव-जातिका भी करते हैं।"

यह पत्र मेरे लिए मनोवृत्तियां और उनके प्रभावका अध्ययन है। एक आदमीका मन रस्सीको सांप मान लेता है। वह भयसे सुन्न हो जाता और बदहवास होकर भागता है, या फिर मनःकल्पित सांपको मारनेके लिए लाठी उठाता है। दूसरा बहनको पत्नी मान लेता है और उसकी काम-वासना जाग जाती है। पर ज्योंही उसे अपना भ्रम मालूम हो जाता है, त्यों ही वासना शान्त हो जाती है।

यही बात लेखकके दिये हुए उदाहरणके भी विषयमें है। बेशक, काम-वासनाकी तृप्ति हेय सुख है—इस भ्रमसे किया जानेवाला इन्द्रिय-दमन मिजाजमें चिड़चिड़ापन पैदा होने और प्रेमके शिथिल होनेका कारण हो सकता है। पर अगर इन्द्रिय-संयम प्रेमको विशुद्ध बनाने, प्रेम-बन्धनको अधिक दृढ़ करने और वीर्यको अधिक अच्छे प्रयोजनके लिए बचा रखनेके उद्देश्यसे किया जाय तो वह प्रेमकी गांठको ढीली करनेके बदले उसे और दृढ़ करेगा। जिस प्रेमका आधार विषय-वासनाकी तृप्ति हो वह कितना ही उत्कट हो फिर भी होगा स्वार्थका सौदा ही और हल्के-से-हल्के झटकेको भी बर्दाश्त न कर सकेगा। और समागम जब पशुओंके लिए संस्कार या धार्मिक विधान नहीं है तब मानव जगत्में ही उसे यह पद क्यों दिया जाय? हम उसे वही क्यों न मानें जो वह वास्तवमें है—वंश-रक्षाके उद्देश्यसे किया जानेवाला प्रजोत्पादन, जो हमसे बरबस कराया जाता है? मनुष्यको ईश्वरने संकल्प या इच्छाकी थोड़ी-सी स्वतंत्रता दे रखी है, इसलिए केवल वही पशु-पक्षियोंके जीवनकी अपेक्षा जिस अधिक ऊंचे प्रयोजनके लिए उसका जन्म हुआ है, उसकी सिद्धिके लिए अपनी भोगेच्छाको रोकने, दबानेमें अपने मानव-अधिकारको काममें ला सकता है। संभोग प्रेमको न बढ़ाता है और न उसे बनाये रखने या उसके पोषण-वर्द्धनके लिए किसी तरह आवश्यक है। इसके अगणित अनुभव होते रहनेपर भी जो उसे प्रेम-बन्धनको अधिक दृढ़ करनेके लिए आवश्यक और इष्ट मानते हैं वह महज इसलिए कि ऐसा सोचने-माननेकी हमें आदत लग गई है। ऐसे कितने ही

उदाहरण बताये जा सकते हैं जिनमें संयमसे प्रेमका बन्धन और दृढ़ हुआ है। हां, इतना जरूर है कि संयम अपनी इच्छासे किया जाय, किसी बाहरी दबावसे नहीं, और पति-पत्नी दोनोंको नीतिके अधिक ऊंचे स्तरपर ले जानेके लिए किया जाय।

मानव-समाज सदा बढ़ती रहनेवाली वस्तु है, आध्यात्मिक दृष्टिसे उसका सतत विकास हो रहा है। यह बात सच है तो पशु-वासनाका दिन-दिन अधिक निग्रह ही उसका आधार होना चाहिए। इस दृष्टिसे विवाहको एक धार्मिक संस्कार मानना होगा, जो पति-पत्नी दोनोंको अनुशासनके बन्धनमें बांधता है, और उनपर यह फर्ज कर देता है कि वे तीसरेके साथ शरीर-संग न करें। परस्पर शरीर-संगकी इजाजत भी, केवल संतानकी कामनासे हो तथा पति-पत्नी दोनों उसे चाहते हों और उसके लिए तैयार हों, तभी देता है। पत्र-लेखकने जो दो स्थितियां बताई हैं उन दोनोंमें सन्तानकी कामनाके बिना संभोगका सवाल नहीं उठता।

अगर हम यह मान लें, जैसा कि पत्र लिखनेवाले भाईने किया है कि सन्तति-प्राप्तिके उद्देश्यके बिना भी संभोग आवश्यक कार्य है तो बहस-दलीलकी गुंजाइश ही नहीं रहती। पर यह दावा टिक नहीं सकता, क्योंकि दुनियाके हर हिस्सेमें कुछ सर्वश्रेष्ठ पुरुषोंके पूर्ण ब्रह्मचर्य-पालनकी पक्की नजीरें पेश की जा सकती हैं। ब्रह्मचर्यका पालन करना अधिकांश मनुष्योंके लिए कठिन है तो यह बात उसके शक्य या इष्ट न माननेकी दलील नहीं हो सकती। सौ साल पहले अधिकांश जनोंके लिए जो बात शक्य न थी आज उसकी शक्यता सिद्ध हो रही है और सीमा-रहित प्रगतिके लिए जो कालका बिना ओर-छोरवाला मैदान हमारे सामने खुला है, उसमें १०० सालकी भुगत ही क्या है? वैज्ञानिकोंका कहना अगर सही है तो हमें आदमीका चोला मिलना अभी कलकी ही बात तो है? उसकी शक्तिकी सीमाएं कौन जानता है, कौन बांध सकता है? सोच तो यह है कि उसमें भला-बुरा करनेकी असीम शक्ति है इसके नित नये प्रमाण हमें मिलते जा रहे हैं।

संयमका शक्य और इष्ट होना मान लिया जाय तो उसके पालनके उपाय हमें ढूंढ़ने और निकालने ही होंगे। और जैसा कि मैं किसी पिछले

लेखमें कह चुका हूं अगर हमें संयम और नीति-बंधनके अंदर रहना है तो हमें अपना जीवन-क्रम बदलना ही होगा। लड्डू हमारे पेटमें पहुंच जाय और हाथ पर भी बना रहे, यह असम्भव प्रयत्न हमें न करना चाहिए। हम जननेन्द्रियका नियमन करना चाहते हैं तो हमें और सभी इन्द्रियोंपर अंकुश रखना होगा। आंख, कान, नाक, जीभ, हाथ और पांवकी लगाम ढीली कर दी जाय तो जननेन्द्रियको काबू में रखना असंभव होगा। चिड़चिड़ापन, हिस्टीरिया या मूर्छा-रोग और पागलपनको भी ब्रह्मचर्य-पालनके प्रयत्नका परिणाम बताना गलत है। पता लगाया जाय तो ये रोग अधिकांशमें इन्द्रियोंके असंयमके ही फल होते हैं। किसी भी पाप—प्रकृतिके नियमके किसी भी उल्लंघन—का दण्ड हमें न मिले यह हो नहीं सकता।

मुझे शब्दोंके लिए झगड़ा नहीं करना है। इंद्रिय-संयम भी अगर गर्भ-निरोधके साधनोंके समान ही प्रकृतिके काममें हस्तक्षेप है तो हुआ करे। मैं तब भी कहूंगा कि एक हस्तक्षेप जायज़ और इष्ट है, क्योंकि वह व्यक्ति और समाज दोनोंका हित करता है और दूसरा हस्तक्षेप दोनोंके पतनका कारण होता है इसलिए नाजायज़ है। संयम सन्तति-नियमनका एकमात्र उपाय है, गर्भाधान-निरोधक साधनोंकी सहायतासे बच्चोंका पैदा होना रोकना जातिका आत्मघात है।

खान-मालिक अगर अन्यायके रास्तेपर चलते हुए भी विजयी होंगे तो इसलिए नहीं कि मजदूरोंके घर जरूरत से ज्यादा बच्चे पैदा हो रहे हैं, बल्कि इसलिए कि मजदूरोंने संयमका पाठ पूरे तौरपर नहीं पढ़ा है। बच्चे न हों तो खान-मजदूरोंके जीवनमें कोई बात ही न रहेगी जो उन्हें अपनी दशा सुधारनेकी प्रेरणा करे, और न मजदूरी बढ़ानेकी मांगके लिए कोई उचित कारण रहेगा। क्या उन्हें शराब पीना, तंबाकू पीना, जुआ खेलना चाहिए? क्या यह कहना इसका कोई जवाब होगा कि खानोंके मालिक ये सभी बातें करते हैं और फिर भी उनपर हावी रहते हैं? मजदूर अगर पूंजीपतियोंसे अच्छे होनेका दावा नहीं कर सकते तो उन्हें दुनियाकी हमदर्दी मांगनेका क्या हक़ है? इसलिए कि पूंजीपतियोंकी संख्या बढ़े और पूंजीवादकी जड़ और मजबूत हो? हमें यह आशा दिलाकर लोकतन्त्रकी पूजा करनेको

कहा जाता है कि दुनियामें उसका राज होनेपर हमें अच्छे दिन देखनेको मिलेंगे। अतः जिन बुराइयोंको हम पूंजीपति और पूंजीवादकी देन बताते हैं उन्हें बड़े पैमानेपर करनेका दोषी नहीं बनना चाहिए।

मैं जानता हूं और यह मेरे लिए दुःखकी बात भी है कि इन्द्रिय-निग्रह आसान काम नहीं है। पर इस साधनाकी धीमी प्रगतिसे हमें घबराना न चाहिए। 'उतावला सो बावला'। अधीरतासे मजदूरी-पेशा वर्गमें बहुत अधिक बच्चे पैदा होनेकी बुराई नहीं दूर होने की। इस वर्गमें काम करने-वाले जन-सेवकोंके सामने एक विशाल कार्य करनेको पड़ा है। उन्हें चाहिए कि मानव-जातिके सबसे बड़े शिक्षकोंने अपने अनुभवकी अमूल्य निधिसे हमें जो संयमका पाठ पढ़ाया है, उसे अपने जीवन-क्रमसे बाहर न कर दें। जीवनकी जिन मूलभूत सचाइयोंकी विरासत उन्होंने हमें सौंपी है उनकी परीक्षा जिस प्रयोगशालामें हुई है वह आजकी नये-से-नये साधनों, उप-करणोंसे संपन्न प्रयोगशालासे अधिक अच्छी थी। संयमको उन सभीने हमारे लिए जरूरी बताया है।

: १३ :

धर्म-संकट

"मैं विवाहित हूं। ३० साल का हो चुका हूं। पत्नीकी उम्र भी लगभग यहा होगी। हमें पांच बच्चे हुए थे जिनमें से दो सौभाग्यवश परलोक सिधार चुके हैं। बाकी बच्चोंके बारेमें मेरी क्या जिम्मेदारी है इसे मैं समझता हूं। पर उस फर्जको पूरा करना मुझे नामुमकिन नहीं तो अति कठिन अवश्य दिखाई देता है। आपने संयमकी सलाह दी है। पिछले तीन सालसे मैं उसका पालन कर रहा हूं; पर अपनी सहधर्मिणीकी इच्छाके विरुद्ध ऐसा कर रहा हूं। साधारण मनुष्य जिसे जीवनका सुख कहते हैं वह उसे भोगनेका आग्रह करती है। आप अपने ऊंचे आसनसे उसे पाप कह सकते हैं, पर मेरी जीवन-संगिनी उसे इस दृष्टिसे नहीं देखती। अधिक बच्चे पैदा करनेसे भी वह नहीं डरती। अपने दायित्वके जिस ज्ञान का मुझे गर्व है वह उसको नहीं। मेरे मां-बाप अधिकतर पत्नीका ही पक्ष करते हैं, और रोज ही घरमें झगड़ा होता रहता है। काम-वासनाकी तृप्ति न होनेसे पत्नीका मिजाज इतना चिड़चिड़ा और बिगड़ैल हो गया है कि जरा-जरासी बात पर भड़क उठती है। अब मेरे सामने यह सवाल है कि इस मुश्किलको कैसे हल करूं। जितने बच्चे अभी हैं वही मेरे लिए अधिक हैं। मैं इतना गरीब हूं कि उनका ही पालन-पोषण ठीक तौरसे नहीं कर सकता। पत्नीको समझाना नामुमकिन दिखाई देता है। जो तृप्ति वह चाहती है वह न मिली तो मुमकिन है वह बुरा रास्ता पकड़ ले, पागल हो जाय या आत्मघात कर ले। सच कहता हूं, कभी-कभी जीमें आता है कि देशका क़ानून इजाज़त देता तो सभी अनचाहे बच्चोंको गोली मार देता, जैसा आप लावारिस कुत्तोंके साथ करेंगे। इधर तीन महीनेसे किसी दिन मुझे दूसरे जून रोटी न मिली, तीसरे पहरका नाश्ता भी नसीब नहीं हुआ। काम-धंधेकी जिम्मेदारियां ऐसी हैं कि लगातार

कई दिन उपवास भी नहीं चल सकता। पत्नीको मेरे कष्टसे हमदर्दी नहीं, क्योंकि वह मुझे ढोंगी समझती है। जनन-निरोध-विषयक साहित्यसे मेरा परिचय है। वह लुभानेवाली भाषामें लिखा गया है। ब्रह्मचर्य विषयपर लिखित आपकी पुस्तक भी पढ़ी है। मेरे लिए "एक ओर कुआं है तो दूसरी ओर खाई।"

यह एक युवकके लिखे हुए हृदय-विदारक पत्रका अविकल भावार्थ है। लेखकने अपना पूरा नाम-पता दिया है। मैं उसे कई बरससे जानता हूं। वह अपना नाम देते हुए डरते थे इसलिए इसके पहले दो बार मुझे गुमनाम पत्र लिखा। उन्हें आशा थी कि मैं 'यंग इंडिया' में उनकी चर्चा करूंगा। इस तरहके गुमनाम पत्र मेरे पास इतने आते हैं कि उनकी चर्चा करनेमें मुझे संकोच होता है। मुझे तो इस पत्रपर कुछ लिखनेमें भी झिझक हो रही है, गोकि मैं जानता हूं कि उसकी बातें सोलह आने सही हैं, और वह ऐसे आदमीका लिखा हुआ है जो संयमके रास्तेपर चलनेकी सच्चे दिलसे कोशिश कर रहा है। विषय बहुत ही नाजुक है, पर मेरा दावा है कि मुझे ऐसे मामलोंका काफी अनुभव है और मैंने यह भी देखा है कि ऐसी कठिनाइयोंमें पड़े हुए लोगोंको मेरे बताये हुए उपायसे राहत मिली है, इसलिए मैं इस स्पष्ट कर्त्तव्यके पालनसे मुंह नहीं मोड़ सकता।

जहांतक अंग्रेजी पढ़े हुए भारतीयोंका सवाल है भारतकी स्थिति हमारे लिए दुहरी कठिनाई पैदा करती है। सामाजिक योग्यताकी दृष्टिसे पति और पत्नीमें इतना अन्तर होता है जिसे मिटाना एक तरहसे असंभव ही है। कुछ युवक संभवतः यह सोचते हैं कि पत्नीको उसके मनपर छोड़ देनेसे ही हमारा मसला हल हो गया, हालांकि वे जानते हैं कि उनकी बिरादरीमें तलाक नहीं दिया जाता, इसलिए उनकी पत्नीके लिए दूसरा ब्याह कर लेना शक्य नहीं। दूसरे लोग—और यही वर्ग सबसे बड़ा है—अपनी पत्नियोंको अपने मानस-जीवनका साथी न बनाकर केवल विषय-सुख भोगनेका साधन मानता है। बहुत ही थोड़े लोग ऐसे हैं—अवश्य ही उनकी संख्या दिन-दिन बढ़ रही है—जिनकी अन्तरात्मा जाग चुकी है और जो उसी धर्म-संकटमें पड़े हैं जो पत्र लिखनेवाले भाईके सामने उपस्थित है।

मेरी रायमें स्त्री-पुरुषका समागम तभी जायज माना जायगा जब दोनों उसे चाहते हों। मैं नहीं मानता कि पति या पत्नी किसीको भी यह हक हासिल है कि दूसरेको अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिए मजबूर करे। और जिस दम्पतीका प्रश्न तत्काल हमारे विचारका विषय है उसके बारेमें मेरी स्थिति ठीक हो तो पत्नीके आग्रहके सामने झुकना किसी तरह पतिका नैतिक कर्त्तव्य नहीं है। पर यह इनकार पतिके सिरपर ज्यादा बड़ी और ऊंची जिम्मेदारी लाद देता है। वह अपने आपको बड़ा साधक-संयमी समझकर पत्नीको हेय दृष्टिसे न देखे, बल्कि नम्रताके साथ यह स्वीकार करे कि जो बात उसके लिए अनावश्यक है वह पत्नीके लिए प्रकृतिका आदेश है, इसलिए वह उसके साथ बहुत ही स्नेह और मृदुताका व्यवहार करे और मनमें यह विश्वास रखे कि उसकी अपनी पवित्रता पत्नीकी काम-वासनाको उच्चतम प्रकारकी शक्तिमें बदल देगी। अतः उसे अपनी पत्नीका सच्चा मित्र, पथ-प्रदर्शक और उसका दुख-दर्द दूर करनेवाला होना होगा। अपनी पत्नीमें उसे पूरा विश्वास रखना होगा और अटूट धैर्यके साथ उसे यह समझाना होगा कि नीतिका कौनसा तत्त्व उसके आचरणका आधार है, पति-पत्नीके परस्पर सम्बन्धका सच्चा रूप और विवाहका सच्चा अर्थ क्या है। यह करते हुए वह देखेगा कि बहुत-सी बातें जो पहले उसके लिए स्पष्ट नहीं थीं अब स्पष्ट हो गईं, और उसका संयम सच्चा होगा तो पत्नीके हृदयको वह अपने और भी निकट खींच लेगा।

प्रस्तुत मामलेमें मुझे कहना ही होगा कि केवल अधिक बच्चे पैदा होनेका डर पत्नीकी संभोगेच्छा तृप्त करनेसे इनकार करनेका यथेष्ट कारण नहीं हो सकता। केवल बच्चोंका भार उठानेके डरसे पत्नीके संभोग प्रस्तावको अस्वीकार करना मुझे तो कायरपन-सा लगता है। कुटुम्बकी बेहिसाब बाढ़ रोकना पति-पत्नीके अलग-अलग और संयुक्त रूपसे अपनी काम-वासनापर अंकुश रखनेके लिए अच्छा कारण है; पर वह अपने जीवन-संगीके साथ सोनेका अधिकार छीननेके लिए यथेष्ट कारण नहीं हो सकता।

और फिर बच्चोंसे इतनी घबराहट किसलिए? ईमानदार, मेहनती और समझदार आदमी निश्चय ही इतना पैसा कमा सकता है कि तीन-

चार बच्चोंके भरण-पोषणका बोझ उठा ले। मैं यह मानता हूं कि प्रस्तुत पत्र-लेखक-जैसे पुरुषके लिए जो अपना समय देशकी सेवामें लगा सकने-की सच्चे दिलसे कोशिश कर रहा है, यह कठिन होगा कि एक बड़े और बढ़ते हुए कुटुम्बका भरण-पोषण करे और साथ-साथ स्वदेशकी सेवा भी करता चले जिसकी करोड़ों सन्तानोंको आधे पेट खाकर रहना पड़ता है। इन पृष्ठोंमें अक्सर मैंने यह बात लिखी है कि हिन्दुस्तान जबतक गुलाम है तबतक बच्चे पैदा करना उचित नहीं। पर यह युवकों और युवतियोंके अविवाहित रहनेके लिए तो बहुत अच्छा कारण है; किन्तु विवाहित स्त्री-पुरुषके लिए एक-दूसरेके साथ दाम्पत्य असहयोग करनेका निश्चयात्मक हेतु नहीं हो सकता। हां, जब शुद्ध धर्मभावसे, अन्तरसे ब्रह्मचर्य-पालनकी ऐसी पुकार उठे कि उसे अनसुनी करना नामुमकिन हो तब यह असहयोग जायज़ होता है, बल्कि फ़र्ज हो जाता है। और यह पुकार जब सच्ची होगी तो दूसरे साथी पर भी इसका बहुत अच्छा असर होगा। वह समयसे उसपर वैसा असर न डाल सके तो भी ब्रह्मचर्य-पालन कर्तव्य होगा, भले ही इसमें अपने साथीका दिमाग खराब हो जाने या उसके मर जानेका भी खतरा हो। सत्यकी साधना और स्वदेशकी सेवाके लिए जैसे बलिदान अपेक्षित हैं; ब्रह्मचर्यकी साधना भी वैसे ही वीरोचित बलिदान मांगती है। इतना कह चुकनेके बाद यह कहनेकी आवश्यकता शायद ही बाकी रहती हो कि कृत्रिम उपायोंसे संतानोत्पादन रोकना नीति-नाशक आचरण है और जीवनका जो आदर्श मेरे तर्कका आधार है उसमें इसके लिए स्थान नहीं है।

: १४ :

मेरा व्रत

भलीभांति चर्चा कर लेने और गहरे सोच-विचारके अनन्तर १९०६ ई० मैं मैंने ब्रह्मचर्य-व्रत लिया। व्रत लेनेके समयतक मैंने धर्मपत्नीकी राय इस विषयमें नहीं ली थी। व्रत लेते समय ली। उसकी ओरसे कुछ भी विरोध नहीं हुआ।

यह व्रत लेते हुए मुझे बहुत कठिन जान पड़ा। मेरी शक्ति अल्प थी। वासनाओंको दबाना कैसे हो सकेगा ? अपनी पत्नीके साथ भी सविकार सम्बन्ध न रखना कुछ विचित्र-सी बात लग रही थी। फिर भी यही मेरा कर्त्तव्य है, यह मैं साफ देख सकता था। मेरी नीयत शुद्ध थी। अतः भगवान् बल देगा यों सोचकर मैं कूद पड़ा।

आज वीस बरस बाद उस व्रतको याद करके मुझे आनन्दजनक आश्चर्य होता है। संयमके पालनेकी भावना तो १९०१ से प्रबल हो रही थी और मैं उसका पालन कर भी रहा था। पर जो स्वतन्त्रता और आनन्द मुझे अब मिलने लगा वह १९०६ के पहले कभी मिला हो यह मुझे याद नहीं आता। कारण यह कि उस समय मैं वासनासे बंधा था। किसी भी क्षण उसके वश हो जा सकता था। अब वासना मुझपर सवारी गांठनेमें असमर्थ हो गई।

इसके सिवा अब ब्रह्मचर्यकी महिमा मैं अधिकाधिक समझने लगा। व्रत मैंने फिनिक्समें लिया। घायलोंकी सेवाके कामसे छुट्टी पाकर मैं फिनिक्स गया था। वहांसे मुझे तुरंत जोहान्सबर्ग जाना था। मैं वहां गया और एक महीनेके अंदर ही सत्याग्रह-संग्रामकी नींव पड़ी। मानो यह ब्रह्मचर्य-व्रत मुझे उसके लिए तैयार करनेको ही आया हो। सत्याग्रहकी योजना मैंने पहलेसे नहीं बना रखी थी। उसकी उत्पत्ति तो अनायास और बिना हमारे चाहे हुई। पर मैंने देखा कि उसके पहलेके मेरे सभी काम—फिनिक्स जाना,

जोहान्सवर्गका भारी घर-खर्च घटा डालना, और अन्तमें ब्रह्मचर्य-व्रत लेना मानो उसकी तैयारी थे।

ब्रह्मचर्यके सम्पूर्ण पालनका अर्थ है ब्रह्मका साक्षात्कार। यह ज्ञान मुझे शास्त्रसे नहीं मिला था। यह अर्थ मेरे लिए धीरे-धीरे अनुभव-सिद्ध होता गया। इससे सम्बद्ध शास्त्र-वचन तो मैंने पीछे पढ़े। ब्रह्मचर्यमें शरीरकी रक्षा, बुद्धिकी रक्षा, आत्माकी रक्षा है, व्रत लेनेके बाद मैं इस बातका दिन-दिन अधिकाधिक अनुभव करने लगा। कारण यह कि अब ब्रह्मचर्यको घोर तपश्चर्या-रूप न रहने देकर रसमय बनाना था; इसीके सहारे चलना था। अतः अब उसमें मुझे नित-नई खूबियोंके दर्शन होने लगे।

पर मैं जो यों ब्रह्मचर्यसे रस लूट रहा था उससे कोई यह न समझ ले कि उसकी कठिनताका अनुभव मुझे नहीं हो रहा था। आज मेरे ५६ साल पूरे हो चुके हैं, फिर भी उसकी कठिनताका अनुभव तो होता ही है। यह असिधारा-व्रत है, इस बातको दिन-दिन अधिकाधिक समझ रहा हूं। निरन्तर जाग्रत रहनेकी आवश्यकता देख रहा हूं।

ब्रह्मचर्यका पालन करना हो तो स्वादेन्द्रिय 'जीभ' को वशमें करना ही होगा। मैंने खुद अनुभव करके देखा कि जीभको जीत लें तो ब्रह्मचर्यका पालन बहुत आसान हो जाता है। इसलिए मेरे इसके बादके भोजन-विषयक प्रयोग केवल अन्नाहारकी दृष्टिसे नहीं बल्कि ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे भी होने लगे। मैंने प्रयोग करके देख लिया कि हमारी ुराक थोड़ी सादी और बिना मिर्च-मसालेकी होनी चाहिए और प्राकृतिक अवस्थामें खाई जानी चाहिए। अपने विषयमें तो मैंने छः वर्षतक प्रयोग करके देख लिया है कि ब्रह्मचारीका आहार वनपक्व फल हैं। जिन दिनों मैं सूखे या रसदार वनपक्व फल खाकर रहता था उन दिनों मैं अपने आपमें जो निर्विकारिता पाता था, उस खुराकको बदल देनेके बाद उसका अनुभव न हो सका। फलाहारके समय ब्रह्मचर्य सहज था। दुग्धाहारसे वह कष्ट-साध्य हो गया है। फलाहारसे दुग्धाहारपर मुझे क्यों जाना पड़ा—इसकी चर्चा उचित स्थान पर की जायगी। यहां तो इतना कहना काफी है कि दूधका आहार ब्रह्मचर्यके लिए विघ्नकारक है, इस विषयमें मुझे तनिक भी शंका नहीं। इस कथनसे कोई यह अर्थ न निकाल

ले कि हर ब्रह्मचारीके लिए दूधका त्याग आवश्यक है। आहारका असर ब्रह्मचर्यपर कितना होता है इस विषयमें बहुत प्रयोग करनेकी आवश्यकता है। मुझे अबतक कोई ऐसा फलाहार नहीं मिला जो स्नायुओंको पुष्ट करने और आसानीसे पचनेमें दूधकी बराबरी कर सके; कोई वैद्य, हकीम या डाक्टर भी नहीं बता सका। इसलिए दूध विकार पैदा करनेवाली चीज है यह जानते हुए भी फिलहाल मैं किसीको उसके त्यागकी सलाह नहीं दे सकता।

बाह्य उपचारोंमें जैसे आहारके प्रकार और परिमाणकी मर्यादा आवश्यक है वैसे ही उपवासको भी समझना चाहिए। इंद्रियां इतनी बलवान हैं कि उनपर चारों ओरसे, ऊपर और नीचेसे, दशों दिशाओंसे घेरा डाला जाय, तभी काबूमें रहती हैं। यह तो सभी जानते हैं कि आहारके बिना वे अपना काम नहीं कर सकतीं। इसलिए इन्द्रिय-दमनके उद्देश्यसे इच्छापूर्वक किये हुए उपवाससे इंद्रियोंको काबूमें लानेमें बहुत मदद मिलती है, इस विषयमें मेरे मनमें तनिक भी शंका नहीं। कितने ही लोग उपवास करते हुए भी विफल होते हैं। इसका कारण यह है कि वे यह मान लेते हैं कि उपवाससे ही सबकुछ हो जायगा और शरीरसे स्थूल उपवास-मात्र करते हैं; पर मनसे छप्पन भोग भोगते रहते हैं। उपवासके दरमियान, उपवास समाप्त होनेपर क्या-क्या खायेंगे, इस कल्पनाका स्वाद हम लिया करते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि उससे न जीभ वशमें आई न जननेन्द्रिय! उपवासका सच्चा उपयोग वही है जहां मन भी देह-दमनमें साथ देता है, अर्थात् मनमें विषय-भोगके प्रति विरक्ति हो जानी चाहिए। विषय-वासनाकी जड़ें तो मनमें ही होती हैं। उपवासादि साधनोंसे बहुत सहायता मिलती है, फिर भी वह मात्रामें थोड़ी ही होती है। कह सकते हैं कि उपवास करते हुए भी मनुष्य विषयोंमें आसक्त रह सकता है। पर उपवासके बिना विषयासक्तिका जड़-मूलसे जाना संभव नहीं। अतः उपवास ब्रह्मचर्य-पालनका अनिवार्य अंग है।

ब्रह्मचर्य-पालनका प्रयत्न करनेवाले बहुतेरे निष्फल होते हैं। इसका कारण यह है कि खाने-पीने, देखने-सुननेमें वे अब्रह्मचारीके जैसे रहते हुए भी ब्रह्मचर्य निभाना चाहते हैं। यह प्रयत्न वैसा ही है जैसी गरमीके मौसममें

शीतकालका अनुभव करनेकी कोशिश। संयमी और स्वच्छंद, त्यागी और भोगीके जीवनमें भेद होना ही चाहिए। साम्य केवल ऊपर-ऊपरसे दिखाई देता है। दोनोंका भेद स्पष्ट दिखाई देना चाहिए। आंखका उपयोग दोनों करते हैं पर ब्रह्मचारी देव-दर्शन करता है। भोगी नाटक-सिनेमामें लीन रहता है। कानसे दोनों काम लेते हैं। पर एक भगवद्-भजन सुनता है, दूसरेको विलासी गाने सुननेमें आनन्द आता है। जागरण दोनों करते हैं; पर एक जाग्रत अवस्थामें हृदय-मंदिरमें विराजनेवाले रामको भजता है, दूसरेको नाच-रंगकी धुनमें सोनेका खयाल ही नहीं रहता। खाते दोनों हैं; पर एक शरीर-रूपी तीर्थक्षेत्रके रक्षार्थ देहको भोजन-रूपी भाड़ा देता है, दूसरा जबानके मजेकी खातिर देहमें बहुत-सी चीजोंको ठूंसकर उसे दुर्गंधमय बना देता है। यों दोनोंके आचार-विचारमें भेद रहा ही करता है और यह अंतर दिन-दिन बढ़ता जाता है, घटता नहीं।

ब्रह्मचर्यके मानी हैं मन-वचन कायासे सम्पूर्ण इन्द्रियोंका संयम। इस संयमके लिए उपर बताये हुए त्यागोंकी आवश्यकता है, यह मुझे दिन-दिन दिखाई देता गया। आज भी दिखाई दे रहा है। त्यागके क्षेत्रकी सीमा ही नहीं है, जैसे ब्रह्मचर्यकी महिमा भी नहीं है। ऐसा ब्रह्मचर्य अल्प प्रयत्नसे सधनेवाली वस्तु नहीं। करोड़ोंके लिए तो वह सदा केवल आदर्श रूप रहेगा, इसलिए कि प्रयत्नशील ब्रह्मचारी तो अपनी कमियोंको हर वक्त देखता रहेगा। अपने-मनके कोने-अंतरेमें छिपे हुए विकारोंको पहचान लेगा और उन्हें निकाल बाहर करनेकी कोशिश सदा करता रहेगा। जबतक विचारोंपर यह काबू न मिल जाय कि अपनी इच्छाके बिना एक भी विचार मनमें न आये तबतक ब्रह्मचर्य संपूर्ण नहीं। विचार-मात्र विकार है। उन्हें वशमें करनेके मानी हैं मनको वशमें करना। और मनको वशमें करना तो वायुको वशमें करनेसे भी कठिन है। फिर भी अगर आत्माका अस्तित्व सच्चा है तो यह वस्तु साध्य होनी ही चाहिए। हमारे रास्तेमें कठिनाइयां आती हैं इससे कोई यह न मान ले कि यह कार्य असाध्य है। यह परम अर्थ है और परम अर्थके लिए परम प्रयत्नकी आवश्यकता हो तो इसमें अचरज क्या।

पर स्वदेश आनेपर मैंने देखा कि ऐसा ब्रह्मचर्य केवल प्रयत्न-साध्य

नहीं है। कह सकता हूँ कि तब तो मैं मूर्च्छामें था। मैंने मान लिया था कि फलाहारसे विकार जड़-मूलसे नष्ट हो जाता है, और अभिमानके साथ समझता था कि अब मुझे कुछ करना नहीं रहा।

पर इस विचारके प्रकरण तक पहुंचनेमें अभी देर है। तबतक इतना कह देना जरूरी है कि जो लोग ईश्वर-साक्षात्कारके उद्देश्यसे, जिस ब्रह्मचर्यकी व्याख्या मैंने ऊपर की है, वैसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते हों, वे अपने प्रयत्नके साथ-साथ ईश्वरपर श्रद्धा रखनेवाले होंगे तो उनके निराश होनेका कोई कारण नहीं।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज्यं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥[1]

अतः रामनाम और रामकृपा यही आत्मार्थीका अंतिम साधन है, इस सत्यका साक्षात्कार मैंने हिन्दुस्तान आनेपर ही किया।[2]

---

[1] निराहार रहनेवालेके विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, पर रस-राग बना रहता है। ईश्वरके दर्शनसे वह भी चला जाता है।

(गीता अ० २, श्लो० ५९।)

[2] आत्म-कथा खण्ड ३ का आठवां अध्याय।

: १५ :

विकारका बिच्छू

कलकत्ते के एक विद्यार्थी पूछते हैं:—

'कोई अपनी पत्नीके साथ शुद्ध व्यवहार रखे, अर्थात् ब्रह्मचर्यका पालन करे तो क्या उसका दाम्पत्य जीवन सुखमय होगा ? अपढ़ पत्नीको ब्रह्मचर्य-की महिमा वह किस तरह समझा सकता है ? उसे संयम-धर्म कैसे सिखा सकता है ? ऐसा करनेमें उसे कहांतक सफलता मिलेगी ? समाज-के आजके दूषित वातावरणमें पत्नीको भ्रष्ट होनेमे कहांतक बचाया जा सकता है ?'

मेरा और मेरे साथियोंका अनुभव तो यह है कि पति-पत्नी अगर स्वेच्छासे ब्रह्मचर्यका पालन करें तो आत्यन्तिक सुख पा सकते हैं। अपना सुख उन्हें नित्य बढ़ता हुआ जान पड़ेगा। अशिक्षित पत्नीको ब्रह्मचर्य की महिमा समझानेमें कोई अड़चन नहीं होती, या यों कहिये कि ब्रह्मचर्य शिक्षित-अशिक्षितका भेद नहीं जानता। ब्रह्मचर्य तो केवल हृदयके बलकी बात है। मैं ऐसी अपढ़ स्त्रियोंको जानता हूं जो विवाहिता होते हुए भी ब्रह्मचर्यका पालन कर रही हैं। समाजके चित्तको चंचल कर देनेवाले वातावरणमें भी जो पति ब्रह्मचर्यका पालन करता है वह अपनी पत्नीके शीलकी रक्षा करनेमें अधिक समर्थ हो जाता है। ब्रह्मचर्यका अभाव पत्नीको भ्रष्ट होनेसे बचा तो नहीं सकता; पर उसके भ्रष्टाचारका पर्दा बन जाता है। इसकी मिसालें दी जा सकती हैं।

ब्रह्मचर्यकी शक्ति अमित है। बहुतेरे उदाहरणोंमें मुझे यह अनुभव हुआ है कि ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला स्वयं विकारसे मुक्त नहीं होता, इस कारण उसके प्रयत्नका प्रभाव पत्नीके ऊपर नहीं पड़ सकता। विकार बड़ा चालाक होता है। अतः अपने भाई-बंदोंको पहचाननेमें उसे देर नहीं

लगती। जो पत्नी अभी विकार-रहित नहीं हुई है, जो विकारोंके त्यागके लिए अभी तैयार भी नहीं है, वह पतिके हृदयमें छिपे हुए विकारको तुरंत पहचान लेती है और उसके ढीले और निष्फल प्रयत्नपर मन-ही-मन हँसती हुई स्वयं निर्भय रहती है। जो ब्रह्मचर्य अविचल है और जिसमें शुद्ध प्रेम भरा हुआ है, वह ब्रह्मचर्य अपने सामनेवालेके विकारको जलाकर भस्म कर देता है, इसमें किसीको शंका न करनी चाहिए।

बेलूर-मठमें बहुत-सी सुन्दर मूर्तियोंका संग्रह है। उसमें एक ऐसी मूर्ति मैंने देखी है जिसके शिल्पीने कामको बिच्छू बनाया है। उसने एक कामिनीको डंक मारा है जो उसके कष्टसे विह्वल होकर बिलकुल नंगी हो गई है। बिच्छू अपनी इस विजय पर इतराता हुआ कामिनीके पैरके पास खड़ा है और उसकी ओर देखकर हँस रहा है। जिस पतिने इस बिच्छूपर विजय पा ली उसकी आंखोंमें, उसके स्पर्शमें, उसकी वाणीमें ब्रह्मचर्यकी शीतलता होती है। वह अपने निकट रहनेवालेके विकारोंको क्षण-मात्रमें ठण्डा करके शांत कर देता है।

: १६ :

संयमको किसकी आवश्यकता है ?

एक ब्याहके उम्मीदवार भाई लिखते हैं—

"आप लिखते हैं—'संयमके पालनमें एकको दूसरेकी रज़ामन्दीकी जरूरत नहीं है।' क्या यह औचित्यकी सीमाके आगे जाना नहीं है? पत्नीको जबतक अपने ज्ञानमें साझी न बना सकें तबतक तो राह देखनी चाहिए। हिन्दुस्तानमें अज्ञानका राज सर्वत्र फैला हुआ है और उसमें भी स्त्रियोंके लिए तो पढ़ाई का दरवाजा ही बन्द है। ऐसे देशमें यह माननेसे कैसे काम चलेगा कि सब लोग सच्चे रास्तेको पहचानकर तुरन्त उसपर चलने लगेंगे? 'पतिका कर्तव्य' बार-बार पढ़नेपर अभी खुलासेकी जरूरत बनी है। मैं अभी अविवाहित हूं, पर थोड़े ही दिनोंमें ब्याह होनेवाला है। अतः आपसे खुलासा कर लेना जरूरी मालूम हो रहा है। इसी गरजसे यह पत्र लिख रहा हूं।"

जिस संयमको दूसरेकी सहमतिकी आवश्यकता होती है वह संयम टिक नहीं सकता, यह मेरा अनुभव है। संयमको तो केवल अन्तर्नादकी आवश्यकता होती है। सयमका बल मनके बलपर अवलंबित होता है और संयम ज्ञानमय और प्रेममय हो तो उसकी छाप आस-पासके वातावरणपर पड़े बिना न रहेगी। अन्तमें विरोध करनेवाला भी अनुकूल बन जाता है। पति-पत्नी के बारेमें भी यही बात है। पत्नी तैयार न हो तबतक पतिको और पति तैयार न हो तबतक पत्नीको रुकना पड़े तब तो बहुत करके दोनों भोग-बंधनसे कभी छूट ही न सकेंगे। बहुतेरी मिसालोंमें हम देख चुके हैं कि जहां एकका संयम दूसरेपर अवलंबित होता है वहां वह अन्तमें टूट ही जाता है। और यह ढिलाई या कमजोरी ही इसका कारण है। हम कुछ अधिक गहराईमें उतरकर देखें तो मालूम होगा कि जहां एकको दूसरेकी

रजामंदीकी जरूरत होती है वहां संयमकी सच्ची तैयारी या उसकी सच्ची लगन होती ही नहीं। इसीसे तो निष्कुलानन्दने लिखा कि 'त्याग न टके रे वैराग विना।' वैराग्यको अगर रागके साथ ही जरूरत हो सकती हो तो संयम-पालनकी इच्छा करनेवालेको इच्छा न करनेवालेकी सहमतिकी आवश्यकता हो सकती है।

ऊपर दिये हुए पत्रके लेखकका रास्ता तो सीधा है। वह अभी अविवाहित हैं और उन्होंने ब्रह्मचर्य-पालनका सचमुच निश्चय कर लिया हो तो फिर वह ब्याह के बंधनमें बंधे ही क्यों ? मां-बाप और दूसरे सगे-सम्बन्धी तो अपने अनुभवके बलपर यह कहेंगे ही कि एक युवकका ब्रह्मचर्य-धारणकी बात करना समुद्र-मंथन करके तैरना है। यों कहकर, धमकी देकर, बिगड़कर और दंड देकर भी उसे ब्रह्मचर्यके शुभ संकल्पसे डिगानेकी कोशिश करेंगे। पर जिसके लिए ब्रह्मचर्यका भंग ही सबसे बड़ा दण्ड हो, साम्राज्य पानेका प्रलोभन भी जिसे ब्रह्मचर्यका भंग करनेके लिए तैयार नहीं कर सकता, वह किसी भी धमकीसे डरकर क्यों ब्याह करेगा ? जिसका आग्रह इतना तीव्र नहीं, जिसने ब्रह्मचर्य आदि संयमका इतना बड़ा मूल्य न आंका हो उसके लिए मैंने वह वाक्य नहीं लिखा है जिसे लेखकने उद्धृत किया है।

: १७ :

मां-बापकी जिम्मेदारी

एक शिक्षक लिखते हैं :

"आपने युवकोंके दोषके बारेमें लिखा है। उसके लिए मुझे तो उनके मां-बाप ही जिम्मेदार मालूम होते हैं। बड़ी उम्रवाले बच्चोंके मां-बाप भी, जो बच्चे पैदा करते चले जाते हैं, इसका नतीजा क्या होगा ? ऐसे ब्याहको व्यभिचार कहना क्या अनुचित होगा ? एक बच्चा मांकी मृत्युके बाद पिताके पास सोया करता था। कुछ दिन बाद पिताने दूसरा विवाह कर लिया और नई पत्नीके साथ भीतरसे किवाड़ बन्द कर सोने लगे। बच्चेको कुतूहल हुआ कि पिताजी अब मेरे साथ क्यों नहीं सोते ? मेरी मां जब जीती थी तब तो हम तीनों जने एक साथ सोते थे, अब नई मांके आनेपर पिताजी मुझे साथ क्यों नहीं सुलाते ? बच्चेका कुतूहल बढ़ता गया। उसने किवाड़की दरारमेंसे झांककर देखनेकी सोची। दरारमेंसे जो दृश्य उसने देखा उसका उसके मनपर क्या असर हुआ होगा ?"

"पर समाजमें यह बात सदा होती रहती है। यह मिसाल मेरे दिमागकी उपज नहीं है। यह तो एक १३-१४ बरसके बालकसे सुना हुआ वृत्त है। जो जन-समाज बचपनमें ही यों आत्मनाशके रास्तेपर लगेगा वह स्वराज्य कैसे ले सकेगा ? या मिल जानेपर उसकी रक्षा कर सकेगा ? हर एक मां-बाप, शिक्षक, गृहपति, बालचर-मण्डलका नायक ऐसा न होने देनेकी सावधानता रखे तो कैसा हो ? छोटी उम्रमें ब्रह्मचर्यका अर्थ समझना अक्सर कठिन होता है। बहुतसे लड़कोंको बटोरकर ब्रह्मचर्यपर व्याख्यान देनेसे यह बात कहीं अच्छी जान पड़ती है कि हर एक बालकका विश्वास-भाजन और सच्चा मित्र बनकर इसका यत्न किया जाय कि बचपनमें ही

उसका मन सदाचारकी ओर झुक जाय। बच्चेके मनमें कुविचारका प्रवेश ही न हो इसका कोई उपाय तो होगा ही ?

"अब बड़ी उम्रवालोंकी बात सुनिए। जो समाज, जो जाति, गैर-बिरादरीकी स्त्रीके हाथका भोजन करनेवालेको ज़ातिसे बाहर कर देती है, वही जाति पर-स्त्रीका संग करनेवालेका बहिष्कार क्यों नहीं करती ? जो जाति राजनीतिक सभा सम्मेलनमें अछूतोंके साथ बैठ आनेवालेको दण्ड देती है वही व्यभिचारियोंको दण्ड क्यों नहीं देती ? इसका कारण मुझे तो यही जान पड़ता है कि आत्मशुद्धि करने बैठें तो हर एक जातिकी देह बहुत दुबली हो जाय। दुबली-पतली देहमें भी बलवान आत्मा रह सकती है, इसका ज्ञान उसे कहां है ? बहुत-सी जातियोंके मुखिया, चौधरीतक शराब या व्यभिचारके व्यसनमें फंसे होते हैं। इसलिए अपने ही पांवोंपर कुल्हाड़ी मारनेके डरसे वे उस ओरसे तो आंखें बन्द किये रहते हैं और दूसरोंको बिरादरीसे बाहर करनेके लिए हर वक्त कमर कसे तैयार रहते हैं। यह समाज कब सुधरेगा ? जिस देशको राजनीतिक उन्नति करनी हो वह पहले अपनी सामाजिक उन्नति न कर ले तो राजनीतिक उन्नति आकाश-कुसुम-जैसी ही है।"

इस लेखमें बहुत तथ्य है यह तो सभी स्वीकार करेंगे। बच्चोंके बड़े हो जानेपर उसी पत्नीसे या वह मर जाय तो नया घर बसाकर बच्चे पैदा करनेसे बच्चोंकी हानि होती है। इसे मनवानेके लिए दलील देनेकी जरूरत नहीं। पर इतना संयम न हो सके तो भी पिताको इतना तो करना ही चाहिए कि बच्चोंको अलग कमरेमें रखे या खुद ऐसी जगह सोये, जहांसे बच्चे न कुछ सुन सकें, न देख सकें। इसमें कुछ सभ्यता तो रहेगी ही। बचपन सर्वथा निर्दोष, निर्विकार होना चाहिए; पर मां-बाप विलासिताके वश होकर उसे दोषमय बना देते हैं। वानप्रस्थाश्रमकी प्रथा बालकोंको नीतिमान, स्वतंत्र और स्वावलम्बी बनानेमें बहुत उपयोगी हो सकती है।

शिक्षकोंके लिए लेखकने जो सूचना दी है वह उचित तो है ही, पर जहां ५०-६० लड़कोंका एक दरजा हो वहां शिष्योंके साथ शिक्षकका सम्बन्ध अक्षर-ज्ञान देने-भरका ही होता है। वहां शिक्षक चाहे तो भी शिक्षार्थियोंके

साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध कैसे जोड़ सकता है ? फिर जहां पांच-सात शिक्षक पांच-सात विषय सिखाते हों वहां बालकके सदाचारकी जिम्मेदारी कौन उठायेगा; और फिर ऐसे शिक्षक ही कितने मिलेंगे जो बालकोंको सदाचार-पथपर लाने या उनका विश्वास-भाजन बनने की योग्यता रखते हों ? इसमें तो शिक्षाका सारा प्रश्न उपस्थित हो जाता है। पर उसकी चर्चाका यह स्थान नहीं।

समाज भेड़ोंके झुंडकी भांति बिना सोचे, बिना इधर-उधर देखे आगे बढ़ता जा रहा है, और कुछ लोग इसीको प्रगति मान रहे हैं। वे इस बातको जानते हैं कि स्थिति ऐसी भयानक है तो भी हमारा वैयक्तिक रास्ता आसान है। उन्हें अपने क्षेत्रमें जितना बन पड़े उतना नीतिका प्रचार करना चाहिए। सबसे पहले तो वे अपनेमें ही प्रचार करें। दूसरोंके दोष देखते समय हम खुद बहुत भलेसे लगने लगते हैं। पर अपने दोषोंको देखें तो हम खुद हमींको कुटिल और कामी दिखाई देंगे। दुनियाका काजी बननेकी बनिस्बत खुद अपना काजी बनना अधिक लाभदायक होता है और वैसा करते हुए हमें दूसरोंके लिए भी रास्ता मिल जाता है। 'आप भले तो जग भला' का एक अर्थ यह भी है। तुलसीदास ने सन्तपुरुषको जो पारस-मणि कहा है वह गलत नहीं है। सन्त-पद प्राप्त करनेका प्रयत्न करना हम सबका फर्ज है। सन्त होना किसी अलौकिक पुरुषके लिए आकाशसे उतरा हुआ प्रसाद नहीं है, बल्कि हर आदमीका कर्तव्य है। यही जीवनका रहस्य है।

: १८ :

कामको कैसे जीतें ?

काम-विकारको जीतनेका प्रयत्न करनेवाले एक भाई लिखते हैं :

"आपकी 'आत्म-कथा'का पहला खण्ड पढ़नेसे बहुत-सी कामकी बातें मालूम हुई हैं। आपने कोई बात छिपा नहीं रखी है, इसलिए मैं भी आजसे कोई बात छिपा रखना नही चाहता।' 'नीति-नाशकी ओर' पुस्तक भी पढ़ी। इससे यह मालूम हुआ कि विषय-वासनाको जीतना खासतौरसे क्यों जरूरी है। पर यह वासना इतनी बुरी है कि योगवासिष्ठ और स्वामी रामतीर्थ तथा स्वामी विवेकानन्दकी पुस्तकें पढ़ते समय तो सबकुछ निस्सार जान पड़ता है; पर उन्हें बन्द किया नहीं कि विषय-वासनाएं आ घेरती हैं। आंख, नाक, कान, जीभको तो किसी तरह जीत भी सकते हैं, क्योंकि आंख बंद करते ही उसके विषयोंका अभाव हो जाता है। दूसरी इन्द्रियोंके साथ भी ऐसा कर सकते हैं। पर जननेन्द्रियका तो रास्ता ही जुदा दिखाई देता है। जब वह सताती है तब जान पड़ता है—मैंने जो-कुछ पढ़ा उसका जैसे कुछ भी मूल्य न हो। मेरा आहार सात्विक है। एक ही समय खाता हूं, रातमें केवल दूधपर रहता हूं। फिर भी काम-वासना किसी तरह नहीं जाती। इसका कारण समझमें नहीं आता। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने एक जगह कहा है—"आहार न करनेवाला देहधारी आदमी इन्द्रियोंके विषयोंसे तो मुक्त हो जाता है; पर विषयोंकी आसक्तिसे मुक्त नहीं होता। उससे निवृत्ति तो परमात्माके दर्शन होनेसे ही होती है।"

"इस प्रकार जब ईश्वरके दर्शन हों तो तभी विषयोंकी आसक्तिसे छुटकारा

---

१. **विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।**
रसवर्ज्यं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।

मिल सकता है, और चूंकि ईश्वरके दर्शन हो नहीं सकते, इसलिए विषयोंसे निवत्ति भी नहीं हो सकती। यह है मेरी परेशानी। ऐसी दशामें क्या किया जाय ? क्या आप मुझ-जैसे विषय-जालमें फँस जानेवालेको कोई रास्ता नहीं बतायेंगे ?

"ऐसे साधु-सन्त अवश्य होंगे जो ऐसे जनोंको रास्ता बता सकें। पर वे मुझे मिलेंगे कैसे ? क्योंकि आजकल तो यह जानना ही कठिन है कि सच्चा साधु कौन है।

"इस जिज्ञासाका उत्तर कृपाकर 'नवजीवन' द्वारा दें। जिससे कोई सही रास्ता पकड़ा और प्रभुको पानेमें विघ्न-रूप विषयोंको जीता जा सके।

"अरसेसे यह बात आपसे पूछनेको जी चाहता था; पर हिम्मत न होती थी। मगर जब आपकी 'आत्म-कथा' पढ़ी तो जान पड़ा कि ऐसी बातें आपसे पूछना अनुचित न होगा। यह भ ।समझमें आया कि प्रभुकी प्राप्तिकी राहमें जो कठिनाइयां दिखाई दें, उनका उपाय पूछनेमें शर्म न करनी चाहिए।"

जो दशा इस भाईकी है वही बहुतोंकी है। कामको जीतना कठिन अवश्य है पर अशक्य नहीं है। परन्तु जो कामको जीत लेता है वह संसारको जीत लेता है और संसार-सागरको तर ाता है। यह भगवानका वचन है। इससे हम जान सकते हैं कि कामको जीतना दुनियामें सबसे कठिन बात है। ऐसी वस्तुको पानेके लिए धीरजकी बहुत आवश्यकता है। इसे काम-जयका प्रयत्न करनेवाले सभी लोग स्वीकार नहीं करते। अक्षर-ज्ञानके अभ्यासमें अध्यवसाय, धीरज और ध्यानकी कितनी जरूरत है, इसे हम जानते हैं। उसपरसे त्रिराशिका हिसाब लगायें तो हमें मालूम हो जाय कि अक्षर-ज्ञानकी प्राप्तिमें धीरज आदिकी जितनी आवश्यकता होती है कामको जीतनेमें उससे अगणित गुना अधिक धीरज अपेक्षित है।

यह ता हुई धीरजकी बात। पर कामके जीतनेके उपायके विषयमें भी तो हम इतने ही उदासीन रहते हैं। मामूली बीमारीको हटानेके लिए तो हम सारी दुनिया छान डालते हैं, डाक्टरोंके यहाँ दौड़नेमें एड़ियां घिस डालते हैं, जन्तर-मन्तर भी नहीं छोड़ते। पर कामरूपी महाव्याधिसे छूटनेके लिए हम सब उपाय नहीं करते। थोड़ा उपचार किया कि थककर बैठ

जाते हैं और उलटा ईश्वर या इलाज बतानेवालेके साथ यह शर्त करने लगते हैं कि इतनी चीजें तो हमसे नहीं छूटने की, फिर भी आप हमारा काम-विकार मिटा दें। इसका फल यह हुआ है कि काम-विकारसे छूटनेके लिए हमारे भीतर सच्ची व्याकुलता नहीं है। उसके लिए सर्वस्व-त्याग करने को हम तैयार नहीं। यह शिथिलता विजय-प्राप्तिके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा है। यह सही है कि निराहार रहनेवालेके विकार दब जाते हैं, पर आत्म-दर्शनके बिना आसक्ति नहीं जाती। पर उक्त श्लोकका अर्थ यह नहीं है कि कामको जीतनेमें निराहार-व्रतसे कोई सहायता नहीं मिलती। उसका मतलब तो यह है कि निराहार रहते हुए कभी थको ही नहीं और ऐसी दृढ़ता तथा लगनसे ही आत्म-दर्शन हो सकता है। वह हो जानेपर आसक्ति भी चली जायगी। ऐसा अनशन किसीके कहनेसे नहीं किया जा सकता। दिखावेके लिए भी नहीं किया जा सकता। इसमें तो मन, वचन और काया तीनोंका सहयोग होना चाहिए। यह होनेपर प्रभुका प्रसाद अवश्य प्राप्त होगा और वह मिल गया तो अन्तमें विकार-शांति होकर ही रहेगी।

पर निराहारसे पहले और बहुत-से उपाय करने होते हैं। उनसे विकार शांत न हुए तो ढीले जरूर पड़ जायंगे। भोग-विलासके प्रसंग मात्रका त्याग कर देना चाहिए। उनकी ओर मनमें अरुचि उत्पन्न करनी चाहिए। इसलिए कि अरुचि या विरागके बिना त्याग केवल ऊपरी त्याग होगा और इस कारण टिक न सकेगा। भोग-विलास किसे कहें यह बतानेकी जरूरत न होनी चाहिए। जिस-जिस चीज से विकार उत्पन्न हों, **वे सभी त्याज्य हैं।**

आहारका प्रश्न इस विषयमें बहुत विचारणीय है। मेरी अपनी राय है कि जो अपने विकारोंको शान्त करना चाहता हो उसे घी-दूधका इस्तेमाल थोड़ा ही करना चाहिए। बनपक्व अन्न खाकर निर्वाह किया जा सके तो आग पर पकाई हुई चीजें न खायें या थोड़ी खायं। फल और बहुत-सी साग-सब्जियां कच्ची, बिना पकाये खाई जा सकती हैं और खानी चाहिए। हां, कच्ची सब्जीकी मात्रा थोड़ी हो। दो-तीन तोला कच्ची सब्जी आवश्यक पोषणके लिए काफी है। मिठाइयां और मिर्च-मसाले बिलकुल ही छोड़

देने चाहिए। आहारके विषयमें इतनी सूचनाएं दे रहा हूं; पर जानता हूं कि केवल आहारसे ही ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन नहीं हो सकता। परन्तु विकारोत्तेजक वस्तुएं खाने-पीनेवालेको तो ब्रह्मचर्य निभा सकनेकी आशा ही न रखनी चाहिए।

: १६ :

काम-रोगका निवारण

विलियम आर० थर्स्टन नामके लेखकने विवाह-विषयपर जो पुस्तक लिखी है वह इस योग्य है कि हर स्त्री-पुरुष उसको ध्यानपूर्वक पढ़े, समझे। (उसका सारांश परिशिष्टमें दिया गया है।) हमारे देशमें १५ बरसके लड़केसे लगाकर ५० तकके पुरुष और इसी या इससे भी कम उम्रकी लड़कीसे लगाकर ५० तककी स्त्रीकी भी यह धारणा रहती है कि संभोग अनिवार्य है। उसके बिना रहा ही नहीं जा सकता। इससे दोनों विह्वल रहते हैं, एक-दूसरेका विश्वास नहीं करते। स्त्रीको देखकर पुरुषका दिल हाथमें नहीं रहता और पुरुषको देखकर स्त्रीकी भी वही दशा होती है। इससे कितने ही ऐसे रिवाज पैदा हो गये हैं जिनकी कृपासे स्त्री-पुरुष सभी निर्बल, निरुत्साही और रोगी हो रहे हैं। हमारा जीवन इतना हीन हो गया है जितना हीन मनुष्यका जीवन न होना चाहिए।

इस वातावरणमें रचे हुए शास्त्रोंमें भी ऐसे आदेश और विश्वास देखनेमें आते हैं जिनके फलस्वरूप स्त्री-पुरुषको परस्पर ऐसा व्यवहार रखना पड़ता है, जैसे वे एक-दूसरेके दुश्मन हों। कारण यह कि एकको देखकर दूसरेका [illegible] बिगड़ जाता है या बिगड़ जानेका डर रहता है।

इस धारणा और उसके आधारपर बने रिवाजोंकी बदौलत जीवन या तो विषय-भोगमें या उसके सपने देखनेमें चला जाता है और दुनिया हमारे लिए जहरसे कड़वी हो जाती है।

होना तो यह चाहिए था कि मनुष्यमें भला-बुरा सोचने-समझनेकी शक्ति होती है इसलिए पशुकी तुलनामें उसमें अधिक त्याग-शक्ति और संयम हो। पर हम रोज ही देखते हैं कि नर-मादाके संयोगकी मर्यादाका पशु जितना पालन करता है मनुष्य उतना नहीं करता। सामान्य रीतिसे

स्त्री-पुरुषके बीच मां-बेटे, भाई-बहन या बाप-बेटीका संबंध होना चाहिए। यह तो खुली बात है कि पति-पत्नीका संबंध अपवाद-रूपमें ही हो सकता है और अगर भाईसे बहनके या बहनसे भाईके डरनेका कारण हो सकता हो तो पुरुष दूसरी स्त्रीसे या स्त्री दूसरे पुरुषसे डर सकती है। पर इसके विपरीत स्थिति यह है कि भाई-बहनको भी आपसमें संकोच रखना पड़ता है और रखना उन्हें सिखाया जाता है।

इस दयनीय दशा अर्थात् विषय-वासनाकी सड़ांधसे भरी हुई हवासे निकल जाना हमारे लिए निहायत जरूरी है। हमारे अन्दर इस वहमने जड़ जमा ली है कि इस वासनासे निकलना नामुमकिन बात है। उसकी जड़ उखाड़ देना ही पुरुषार्थ है और वह हमसे हो सकनेवाली बात है, यह दृढ़ विश्वास हमारे हृदयमें उत्पन्न होना चाहिए।

यह पुरुषार्थ करनेमें श्री थर्स्टनकी नन्हीं-सी पुस्तकसे बड़ी मदद मिलेगी। लेखककी यह खोज मुझे तो ठीक जान पड़ती है कि अस्वाभाविक काम-वासनाकी जड़ विवाह-विषयक वर्तमान धारणा और उसके आधार पर रचित प्रथाएं है जो पूर्व-पच्छिम सर्वत्र व्याप रही हैं। स्त्री-पुरुषका रातमें एकान्तमें एक कमरेमें और एक बिस्तरपर सोना दोनोंके लिए घातक और काम-वासनाको व्यापक तथा सार्वजनिक वस्तु बना देनेका ज़बर्दस्त साधन है। एक तरफ तो सारी विवाहित दुनिया इसी नियमका अनुसरण करे और दूसरी ओर धर्मोपदेशक और सुधारक संयमका उपदेश करें। यह आसमानमें थिगली लगाना नहीं तो क्या है? ऐसे विषय-वासनासे भरे हुए वातावरणमें संयमके उपाय व्यर्थ जायं तो इसमें कोई अचरजकी बात नहीं। शास्त्र पुकार-पुकारकर कहते हैं कि समागम केवल सन्तानकी कामनासे ही होना चाहिए। इस आज्ञाका उल्लंघन हम प्रतिक्षण किया करते हैं। फिर भी जब रोग हमें सताते हैं तो उनके कारण दूसरी जगह ढूंढ़े जाते हैं। इसीको कहते हैं—'गोदमें लड़का और शहरमें ढिंढोरा'। इस सूर्यके प्रकाश-जैसी स्पष्ट बातको हमने समझ लिया हो तो—

१. हर एक पति-पत्नी आजसे प्रतिज्ञा कर लें कि हम एकान्तमें न सोयेंगे और दोनोंकी इच्छा हुए बिना सन्तानोत्पादन-व्यापारमें न लगेंगे।

जब संभव हो तब दोनों अलग-अलग कमरेमें सोयें, गरीबीके कारण यह मुमकिन न हो तो पति-पत्नी दूर-दूर और अलग-अलग खाटों पर सोयें और बीचमें किसी मित्र या कुटुम्बीको सुला लें।

२. समझदार मां-बाप अपनी लड़की ऐसे घरमें देनेसे साफ इनकार कर दें जहां उसे अलग कमरा और अलग खाट न मिल सके। ब्याह एक प्रकारकी मित्रता है। स्त्री-पुरुष एक-दूसरेके दुःख-सुखके साथी बनते हैं, पर ब्याह हो जानेके मानी यह नहीं हैं कि पति-पत्नी पहली ही रातको विषय-भोगमें आकंठ निमग्न होकर अपनी जिन्दगीकी बरबादीकी नींव खोद लें। यह शिक्षा लड़के-लड़कियोंको मिलनी चाहिए।

थर्स्टनकी खोज स्वीकार करनेका अर्थ यह है कि उसके मनमें जो नई, आश्चर्यजनक, कल्याणकर और शांतिदायिनी कल्पना निहित है उसपर मनन किया जाय और ब्याहके विषयमें प्रचलित विचारोंमें जो परिवर्तन आवश्यक हैं उसे हम समझ लें। तभी इस खोजका लाभ हमें मिल सकेगा। जो लोग इस खोजको हजम कर सके हों वे बाल-बच्चेवाले हों तो अपने बच्चोंकी तालीम और घरका वातावरण बदल दें।

यह समझनेके लिए हमें थर्स्टनकी शहादतकी जरूरत न होनी चाहिए कि हम विषय-सुख भोगते हुए भी बच्चोंके बोझसे बचे रहें; इसके लिए जिन बनावटी उपायोंका जोर-शोरसे प्रचार किया जा रहा है वे अति हानिकर हैं। ये उपाय हिन्दुस्तान-जैसे देशमें चल कैसे सकते हैं, यही समझना कठिन है। पढ़े-लिखे लोग हिन्दुस्तानके दुर्बलता भरे वातावरणमें इन उपायोंसे काम लेनेकी सलाह कैसे देते हैं, मेरी समझमें यह बात आती ही नहीं।

●

परिशिष्ट

: १ :

सब रोगोंका मूल

विलियम राबर्टथर्स्टन नामके अमरीकन लेखकने 'फिलासफी ऑव मैरेज' (विवाहका तत्त्व-ज्ञान) नामकी छोटी-सी पुस्तक लिखी है जिसे न्यूयार्कके स्टिफानी प्रेस और मद्रासकी गणेशन् कम्पनीने भी प्रकाशित किया है। प्रकाशकके कथनानुसार श्री थर्स्टन, संयुक्त राष्ट्रकी सेनामें मेजर थे और लगभग दस बरसतक काम करके १९१९ में अवकाश ग्रहण किया तबसे न्यूयार्क नगरमें रहते हैं। १८ बरस तक उन्होंने जर्मनी-फ्रांस, फिलिपाइन द्वीपपुंज, चीन और अमरीकामें विवाहित स्त्री-पुरुषोंकी स्थिति और विवाहके नियमों, प्रथाओंके प्रभावका गहरा अध्ययन किया। अपने निजके अवलोकनके अतिरिक्त वह प्रसूति-शास्त्र और स्त्री-रोगोंके विशेषज्ञ सैकड़ों डाक्टरोंसे मिले और पत्र-व्यवहार करते रहे। इसके सिवा उन्होंने फौजमें भरती होनेके उम्मीदवारोंकी शारीरिक योग्यताकी जांचके परचों और सामाजिक आरोग्य-रक्षक मण्डलोंके इकट्ठे आंकड़ोंका भी समुचित उपयोग किया है। लेखकने सैकड़ों डाक्टरोंसे कैसे प्रश्न किये और उनके कैसे जवाब उसे मिले, यह उसने बताया है—

प्रश्न—आजकल विवाहित स्त्री-पुरुषोंमें सगर्भावस्थामें भी संभोगका रिवाज है या नहीं ?

इस प्रश्नका उत्तर लगभग सभी डाक्टरोंसे यही मिला कि यह रिवाज है।

प्र०—ऐसे संभोगसे गर्भपात या असामयिक प्रसव और प्रसूताके रक्तमें विष-प्रवेश (ब्लड पॉयजनिंग) की संभावना है या नहीं ?

उ०—अवश्य है।

प्र०—इस संभोगके फलस्वरूप बच्चोंका विकलांग होना संभव है या नहीं?

उ०—बहुतसे डाक्टर तो गर्भावस्थामें भी कुछ महीनोंतक संभोगकी इजाजत देते ही हैं। वे इसके खिलाफ राय कैसे देते। सैकड़े पर २५ने लिखा है कि इससे विकलांग बच्चे पैदा होते हैं।

प्र०—विकृत अंगवाले बच्चे पैदा होनेका कारण गर्भावस्थाका समागम न हो तो दूसरा क्या हो सकता है?

इसके उत्तरोंमें बहुत मतभेद है। बहुतेरे तो लिखते हैं कि हम इसका कारण नहीं बता सकते।

प्र०—आजकलकी पढ़ी-लिखी स्त्रियां क्या गर्भाधान रोकनेके साधनोंका व्यवहार सचमुच करती हैं?

उ०—हां।

प्र०—इन साधनोंसे और कुछ नहीं तो स्त्रीकी जननेन्द्रियकी अपार हानि होनेकी संभावना तो है ही?

सैकड़े में ७५ डाक्टरोंकी रायमें यह संभावना है।

इसके अतिरिक्त लेखकने कितने ही चौंकानेवाले आंकड़े दिये हैं जो जानने लायक हैं। सन् १९२० ई० में अमरीकाकी सरकारने सेनामें भरती होनेवालोंके शारीरिक दोषोंके विषयमें एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें बताया गया है कि—

२५ लाख १० हजार आदमियोंकी फौजमें भरती होनेकी योग्यताकी जांच की गई।

उनमेंसे १२ लाख ८९ हजारमें कोई-न-कोई शारीरिक या मानसिक दोष निकला।

५ लाख ८९ हजार आदमी सेना-सम्बन्धी सभी कामोंके लिए अयोग्य पाये गए।

इन उम्मीदवारोंकी उम्र १८ से ४५ सालके बीच थी।

इतनी जांच और अनेक देशोंकी स्थितिके अवलोकनके फलस्वरूप

लेखकने जो महत्त्वपूर्ण नतीजे निकाले हैं, वे सिद्धांत उसीके शब्दोंमें नीचे दिये जा रहे हैं :—

१. पुरुष स्त्रीको रोटी-कपड़े और रहनेको घर देता है इसलिए वह उसकी दासी बनकर रहे और चूंकि वह उसकी ब्याहता कहलाती है इसलिए एक ही कमरेमें रहकर या एक ही बिस्तरपर सोकर नित्य उसकी काम-वासनाकी तृप्तिका साधन बनती रहे, प्रकृति हर्गिज ऐसा नहीं चाहती।

२. विवाह-बंधनमें बंधनेसे ही पुरुषकी विषय-वासनाकी तृप्ति स्त्रीपर फर्ज हो जाती है, यह माननेका रिवाज दुनियामें सब कहीं पड़ गया है। इस प्रथाके फलस्वरूप स्त्रीको रात-दिन अमर्यादित विषय-भोगका साधन बने रहना और विवाहित स्त्रियोंमेंसे सौ पीछे ९० को अर्थतः वेश्या बन जाना पड़ता है। यह स्थिति पैदा होनेका कारण यह है कि वेश्यावृत्ति स्वाभाविक और उचित मान ली गई है, क्योंकि ब्याहका कानून यही माननेको कहता है। पतिका प्रेम बनाये रखनेके लिए भी यह वृत्ति स्वीकार करना स्त्रीपर फर्ज माना जाता है।

इस अंकुशरहित विषय-भोगके अनेक भयावह परिणाम होते हैं—

१. स्त्रीका नाड़ी-संस्थान—उसके दिल-दिमाग बहुत ही कमजोर हो जाते हैं, वह जवानीमें बुढ़िया बन जाती है, उसका शरीर रोगोंका घर और स्वभाव चिड़चिड़ा, अस्थिर, अशान्त हो जाता है और वह बच्चोंकी सम्हाल भी ठीकसे नहीं कर सकती।

२. गरीबोंके घर इतने बच्चे पैदा होते हैं कि उनकी पूरी परवरिश और सम्हाल नामुमकिन होती है। ऐसे बच्चोंको रोग लग जाते और बड़े होनेपर वे चोर-उचक्के बनते हैं।

३. ऊंचे वर्गवालोंमें निरंकुश विषयभोगकी खातिर गर्भाधान न होने देने और गर्भपातके साधन काममें लाये जाते हैं। इन साधनोंसे काम लेना साधारण-वर्गकी स्त्रियोंको सिखा दिया गया तो राष्ट्र रोगी, अनीतिमान और भ्रष्ट हो जायगा और अन्तमें उसका विनाश होगा।

४. अति संभोगसे पुरुषका पुरुषत्व नष्ट होता है, वह इस लायक

भी नहीं रह जाता कि मेहनत-मजदूरी करके अपना निर्वाह कर सके और अनेक रोगोंके फलस्वरूप उसे समयसे पहले ही परलोकका रास्ता लेना पड़ता है। अमरीकामें आज विधुरोंसे विधवाओंकी संख्या २० लाख अधिक है। उसमें उनकी संख्या थोड़ी ही है जो युद्धके कारण विधवा बनी हैं। विवाहित पुरुषोंका बड़ा भाग ५०की उम्रतक पहुंचनेके पहले ही जर्जर हो जाता है।

५. अति संभोगके फलस्वरूप स्त्री-पुरुष दोनोंके भीतर एक प्रकारकी हताशता, अपने-आपको व्यर्थ समझनेका भाव उत्पन्न हो जाता है। दुनियामें जो आज इतनी गरीबी दिखाई देती है, बड़े शहरोंमें जो गरीबोंके मुहल्ले, गंदी अंधेरी गलियां हैं, उनका कारण पैसा मिलनेवाले कामका अभाव है बल्कि वर्तमान विवाह-नियमोंके फलरूप निरंकुश संभोग है।

६. गर्भावस्थामें जो स्त्रीको पुरुषकी वासना-तृप्तिका साधन बनना पड़ता है यह मानव-जातिके भविष्यके लिए अति भयावह है।

इस अवस्थाका संभोग मनुष्यको पशुसे भी हीन बना देता है। गाभिन गाय सांडको अपने पास कभी आने ही न देगी। फिर भी अगर सांड बलात्कार करे तो वह गाय जो बछड़ा जनेगी उसके तीन या पांच पांव होंगे अथवा दो पूंछ या दो सिर होंगे। समस्त प्राणि-सृष्टिमें अकेला मनुष्य ही यह मानता दिखाई देता है कि इस प्रकारके अत्याचारसे पशुओंमें जो परिणाम होते हैं वे मनुष्योंको न भुगतने होंगे। इस धारणाके मूलमें एक भ्रम है। वह यह कि पुरुषसे बहुत दिनोंतक अपनी विषय-वासना तृप्ति किये बिना रहा ही नहीं जा सकता। इस भ्रमकी जड़ भी साफ दिखाई देती है। जब वासनाओंको जगानेवाला साथी सदा अपनी बगलमें मौजूद हो तब पुरुषसे भोगकी भूख बुझाये बिना कैसे रहा जायगा ?

पर डाक्टरोंकी रायों और अपने निजके अनुभव-अवलोकनसे भी जान लिया गया है कि गर्भाधानसे पहले अति संभोग अगर अनिष्ट-मूलक है तो गर्भावस्थाका संभोग तो सीधा नरकका द्वार है। इसके परिणाम-स्वरूप बच्चों में पागलपन तककी खराबी पैदा हो जानेका डर रहता है और खुद स्त्रीको तो अपार कष्ट होता है, क्योंकि गर्भ-धारणकी दशामें किसी स्त्रीको संभोगकी इच्छा नहीं होती।

लेखकने इसके बाद चीन हिन्दुस्तान और अमरीकामें एक ही कमरेमें अनेक स्त्री-पुरुषोंके सोनेसे जो अनीति और निर्वीयता फैल रही है उसकी चर्चा की है और इस बुराई का इलाज बताया है।

उसके बताये हुए कुछ उपाय तो ब्याहके कानूनमें सुधार करनेके हैं, पर उसने ऐसे उपाय भी बताये हैं जिनका करना मनुष्यके हाथमें है। कानून तो जब सुधरना होगा सुधरेगा। पर कुछ सुधार तो आदमीके अख्तियारकी बात है ही। जैसे—

१. सन्तानकी कामनाके बिना स्त्री-पुरुषका संभोग न होना चाहिए, इस प्राकृतिक ज्ञानका खूब प्रचार करना।

२. स्त्रीको सन्तानकी इच्छा न हो तो पुरुषको केवल उसका पति होनेके नाते ही उसका स्पर्श करनेका अधिकार नहीं मिलता, इस सिद्धांतका प्रचार करना।

३. विवाह-बंधनमें बंधी होनेके कारण ही पतिके साथ एक ही कोठरी और एक ही बिस्तरपर सोना स्त्रीपर फर्ज नहीं है, बल्कि सन्तानोत्पादनके हेतुके बिना उसका इस तरह सोना अपराध है—इस ज्ञानका प्रचार करना।

लेखकका कहना है कि इन नियमोंका पालन किया जाय तो दुनियाके आधे रोग चले जायं—गरीबी चली जाय, रोगी-विकलांग बच्चोंका पैदा होना बंद हो जाय, और स्त्री-पुरुषके जन-कल्याणके लिए पुरुषार्थ करनेका मार्ग उन्मुक्त हो जाय।

एक महिलाके प्रश्न

'विवाहका तत्त्व-ज्ञान'के लेखकने अपनी कृति को अपने मित्रोंके पास प्रेमोपहारके रूपमें भेजा होगा। उनमेंसे एक बहनने उसे पत्र लिखा। उसके उत्तरमें लेखकने एक दूसरी पुस्तिका लिख डाली, जिसमें उसके विचार अधिक स्पष्ट कर दिये गये हैं और अपने मतकी पुष्टि अकाट्य दलीलोंसे, अधिक सबल रूपमें की गई है। यह पुस्तक पहलीसे भी अधिक महत्त्ववाली और मननीय है।

उक्त बहनके पत्रका आशय, थोड़ेमें, इस प्रकार है—

"आपकी पुस्तकके लिए अनेक धन्यवाद। अति शय विषय-भोग ही हमारे रोगोंका मुख्य कारण है, इसे अचूक रूपमें बतानेवाली आपकी पुस्तक पहली ही कही जा सकती है। काम-वासना महापुरुषोंमें भी होती है। कुछ महापुरुष उससे मुक्त भी होते हैं और कितने ही साधारण-जनोंमें वह अति प्रबल होती है। पर संभोगकी शारीरिक आवश्यकता कितनी है, मान ली हुई मानस आवश्यकता कितनी है और महज आदतसे पैदा होने-वाली आवश्यकता कितनी है, इसकी छान-बीन कर लेना जरूरी है। मिसाल-के तौरपर, यह जान लेना जरूरी है कि ह्वेलके शिकारके लिए समुद्रमें सुदूर गये हुए या ऐसे ही किसी अन्य कारणवश लम्बे अरसे तक स्त्रीसे जुदा रहने वाले पुरुषके स्वास्थ्यपर इस विवशताके ब्रह्मचर्यका क्या असर होता है।

"दूसरी बात यह है कि अतिशय विषय-भोगसे होनेवाली हानिको तो मैं स्वीकार करती हूं; पर क्या गर्भाधान रोकनेके कृत्रिम साधन भी अनावश्यक हैं? गर्भपात या अवैध-सन्तानका जन्म देनेके पापसे क्या यह अच्छा नहीं है कि बाह्य साधनोंसे काम लेकर सन्तानोत्पत्ति होने ही न दी जाय। प्रकृतिके नियमके विरुद्ध चलनेवाला मनुष्य जनन-निरोधके उपायोंको काम लेनेके फलस्वरूप दुनियामें अपना नामलेवा छोड़े बिना मर जाय तो इसमें समाजका क्या बिगड़ता है?

"तीसरी बात, मान लीजिये, हम सभी संयमी बन गये। तो भी मोटे हिसाब हर एक दम्पतीके तीनसे अधिक बच्चे न हों तभी दुनियाकी आबादी हदके अन्दर रह सकती है। और इसका अर्थ यह होता है कि सारी जिन्दगीमें उन्हें दो-चार बार ही संभोग-सुख भोगनेका अवसर मिल सकता है। इतना संयम क्या साधारण आदमीके बसकी बात है? क्या स्वस्थ और बल-पौरुष-संपन्न पुरुष लम्बे अरसेतक संयम रख सकता है?

दो कामनाएं

इस पत्रके उत्तर में लेखकने जो पुस्तिका ('द ग्रेट सीक्रेट') लिखी उसका सार नीचे दिया जाता है—

"साधारण पुरुषमें आहारकी इच्छाके अतिरिक्त दो कामनाएं और

होती हैं—एक सती-सुन्दरी स्त्रीके साथ संभोगकी, दूसरी पुरुषार्थकी, अर्थात् धर्म, अर्थ और मोक्षकी। पहलीको तृप्त करनेकी इच्छा दूसरेकी प्रेरणा करती है। बहुतोंकी पुरुषार्थकी कामना ब्याहके पहले ही, सहज-प्राप्त स्त्रीके साथ, काम-वासनाकी परितृप्ति कर लेनेसे मर जाती है। अधिकांशकी ब्याहके बाद दो-चार बरसों ही में संभोगके अतिरेकसे मर जाती या मन्द हो जाती है। स्वस्थ और वीर्यवान पुरुषमें संभोगकी इच्छा प्रायः सदा बनी रहती है; पर पुरुषार्थकी कामना बलवती हो जाय तो काफी लंबे अरसेतक वह दब भी जाती है। आवश्यकता है किसी महान् लक्ष्यकी। ऐसे लक्ष्यकी, जिसकी सिद्धिमें मनुष्य अपनी सारी शक्ति लगा देनेका संकल्प कर ले।

ऐसे लक्ष्य अनेक हैं। एक सामान्य लक्ष्य तो उत्तम सन्तान पैदा करना ही है। अपनी सहधर्मिणीकी स्वाभाविक सन्तानेच्छाको तृप्त करके उसे प्रसन्न रखकर स्वस्थ सन्तान उत्पन्न करना और उसके पालन-पोषण, पढ़ाने-लिखाने, उसे योग्य नागरिक बनानेमें लग जानेसे विषय-वासना अपने आप विदा हो जानी चाहिए पर इन कर्तव्योंका पालन कर सकनेके लिए जरूरी होगा कि उसका शरीर भरा हुआ हो, वह शरीरसे काफी मेहनत-मशक्कत करे। इसके सिवा उसे स्त्री के साथ एक खाट पर सोना भी बंद करना होगा।

दूसरा लक्ष्य है कीर्ति का—लोक-कल्याण करके या कोई बड़ा पराक्रम करके नाम कमाना। हो सकता है कि नाम कमा लेनेके बाद मनुष्य यह भी चाहे कि उसे विषय-सुख अधिक अच्छी तरह भोगनेका मौका मिले; पर कीर्तिकी लालसा उस वक्त तो मूल-वासनाको दबा ही देती है।

स्त्री ही जातिके आदर्शोंकी जननी है। ये आदर्श स्त्रीसे ही पुरुषके मानसमें पहुंचते हैं, इनके परिपाककी प्रेरणा भी स्त्रीसे ही मिलती है। अतः मैं तो कहूंगा कि जिस समाजमें स्त्रीका मूल्य अधिक है—जिस समाजमें स्त्री उर्वशीके समान विक्रमके वशमें है, वह समाज अधिक उत्कर्षशाली है। जिस देशमें स्त्रीकी कीमत कम है, अर्थात् जहां स्त्रीकी प्राप्तिमें पुरुषको कुछ मेहनत नहीं करनी पड़ती, उस देशमें गरीबी और गन्दगीकी बहुतायत

होती है। अतः जहां स्त्रीका मूल्य अधिक हो वहांके लोगोंको अधिक समृद्ध होना चाहिए।

आप जानना चाहती हैं कि ह्वेलके शिकारको गये हुए और पत्नीसे लंबे अरसे तक जुदा रहनेवाले पुरुषके स्वास्थ्यपर इस विवशताके ब्रह्मचर्यका असर क्या होता है। इन लोगोंको सख्त मेहनत करनी पड़ती है, इसलिए काम-वासनाकी अतृप्तिका उनके स्वास्थ्यपर तो कोई बुरा असर नहीं पड़ता। हां, जब उनके पास काफी काम नहीं रहता तब इस वासनाको अप्राकृतिक रूपमें तृप्त करनेके दुर्व्यसन उन्हें लग जाते हैं। शिकारसे लौटकर ये लोग अपनी सारी कमाई शराब और ऐयाशीमें उड़ा देते हैं, क्योंकि यही लक्ष्य लेकर ये शिकारके लिये जाते हैं।

कृत्रिम साधन

कृत्रिम साधनोंसे सन्तानोत्पादन रोकनेका प्रश्न जो आपने उठाया है वह गंभीर है। उसका उत्तर जरा विस्तारसे देना होगा। अपनी खोजों और अवलोकनके बलपर इतना तो मैं जोर देकर कह सकता हूं कि इन साधनोंसे हानि नहीं होती इसका सबूत नहीं ही मिलता। हां, सफल और ज्ञानवान स्त्री रोग-चिकित्सकों और मानस-रोग-चिकित्सकोंके पास इसे साबित करनेके लिए जबर्दस्त मसाला मौजूद है कि इन साधनोंसे काम लेना शरीर-स्वास्थ्य और नीति दोनोंके लिए अति हानिकर है। और यह खुली बात है कि इस विषयमें एक-दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। सन्तानकी कामना न हो तो पति-पत्नीमेंसे किसीको भी संयमके लिए प्रेरित करनेवाली कोई शक्ति नहीं रहती। पुरुषका जी उस स्त्रीसे भर जाता है, उसकी पुरुषार्थकी कामना मंद पड़ जाती है। स्त्री उसे दूसरी स्त्रियोंके पास जानेसे रोकनेके लिए उसे अपना ही गुलाम बना रखना चाहती है। अरसे तक गर्भाधान न होने देनेसे उसकी अपनी भोगेच्छा भी भड़क जाती है। नतीजा यह होता है कि पुरुष कुछ ही बरसोंमें निर्वीर्य हो जाता है और किसी भी रोगका सामना कर सकनेका बल उसमें नहीं रहता। इस निर्वीर्यतासे बचनेके लिए अकसर कुत्सित साधनोंसे काम लिया जाता है, जिससे स्त्री-पुरुषके मनमें

एक-दूसरेके लिए तिरस्कार उत्पन्न होता है और अन्तमें सम्बन्ध-विच्छेद या तलाककी नौबत आती है ।

कैंसरके विशेषज्ञोंका कहना है कि इन कृत्रिम साधनोंका व्यवहार कैंसर रोगका भी कारण होता है। नारी-देहकी एक कोमलतम झिल्लीपर इन साधनोंका बहुत बुरा असर होता है—और उससे कितने ही रोग पैदा होते हैं । कितने ही प्रतिष्ठित डाक्टरोंका यह भी कहना है कि इन साधनोंको काममें लानेके कारण बहुत-सी स्त्रियां बांझ बन जाती हैं । उनका जीवन नीरस हो जाता है और संसार उनके लिए विषरूप हो जाता है ।

जज लिंडसेका भ्रम

हमारे जज लिंडसेने इन कृत्रिम साधनोंकी खोजको व्यापक रूप दे दिया है, पर उनसे होनेवाले सर्वनाशका उन्हें पता नहीं है। "वैज्ञानिक गर्भ-निरोध' को वह नई खोज मानते हैं—पर वह बहुत पुरानी चीज है। फ्रांसमें कम-से-कम एक सौ सालसे इस साधनका चलन है। उसकी दशा आज क्या है यह देखिये । उसकी राजधानी पेरिसमें ७० हजार तो ऐसी वेश्याएं हैं जिनके नाम वेश्याओंके रजिस्टरमें दर्ज हैं । 'अन-रजिस्टर्ड' खानगी वेश्याओंकी संख्या उनसे कई गुनी है । उसके और नगरोंमें भी यह बुराई बुरी तरह फैल रही है । जननेन्द्रियके रोगोंका भी कोई-हिसाब नहीं है और लाखों स्त्रियां—विवाहित-अविवाहित दोनों—उनसे पीड़ित हो डाक्टरोंके दरकी खाक छान रही हैं। कितने ही बरसोंसे जन्म-संख्याकी औसत मृत्यु-संख्याके औसतसे बहुत नीची है। फ्रांसके लोग नीति-भ्रष्टताके लिए सारी दुनियामें बदनाम हो रहे हैं और फ्रेंच कुमारियां बुरदाफरोशीके बाजारमें दिन-दिन अधिक संख्यामें पहुंच रही हैं ।

सबसे भयावह बात तो यह है कि इन साधनोंका एक बार जहां धड़ल्लेसे प्रचार हुआ कि फिर इस गंदे ज्ञानका प्रचार रोकनेका कोई उपाय नहीं रहता । उसे रोकनेकी शक्ति भी किसीमें नहीं रह जाती । सबसे पहले ये बातें युवा-वर्गमें पहुंचती हैं । फ्रांसके वेश्यागृहोंमें कोमल वयकी कुंआरी

और विवाहिता दोनों तरहकी अभागी स्त्रियोंके यौवन और चरित्रकी हाट लग रही है।

जज लिंडसे अपने देश (अमरीका) के युवा अपराधियोंका विचार करनेवाली अदालतमें अरसेतक न्यायाधीश रह चुके हैं। इन युवक अपराधियोंके बयानोंमें उन्हें जो तथ्य मिले उनका उन्होंने उलटा उपयोग किया, और अपनी पुस्तकमें उलटे साधनोंकी सलाह देकर सारी जनताको उलटे रास्तेपर लगा दिया।

पर अपनी ही पुस्तकमें उन्होंने जो तथ्य-प्रमाण दिये हैं उनका रहस्य उनकी समझमें क्यों न आया ? वर्जीनिया एलिस नामकी युवतीका पत्र उन्होंने अपनी पुस्तकमें उद्धृत किया है। वह बेचारी लिखती है कि मैं चार होशियार डाक्टरोंसे मिल चुकी और मेरे पति दूसरे दो डाक्टरोंकी सलाह ले चुके। इन छहों डाक्टरोंका कहना है कि गर्भ-निरोधके साधनोंको काममें लानेसे थोड़े दिनोंतक स्त्री-पुरुषके स्वास्थ्यपर कोई असर पड़ता भले ही न दिखाई दे; पर कुछ ही दिनमें दोनों हाथ मलने लगते हैं, और इस अनिष्टसे ऐसी व्याधिकी उत्पत्ति होती है, जिसका आपरेशन 'अपैंडिसाइटिस' (आंतका फोड़ा) और 'गालस्टोन' (पित्ताशयकी पथरी) के नामसे किया जाता है। पर असलमें तो कुछ और ही होता है। क्या ये डाक्टर झूठे हैं ? ऐसी राय देनेमें तो उनका कोई लाभ नहीं। उलटा, कृत्रिम साधन काममें लाये जायं तो रोग बढ़ें और उनका रोजगार ज्यादा चले। पर ये डाक्टर अनुभवी, प्रतिष्ठित और लोकहितको समझनेवाले हैं।

जज लिंडसे और उनके पीछे चलनेवाले अब पूरी लगनके साथ इन साधनोंके प्रचारमें लग रहे हैं। यह प्रचार बढ़ता गया तो देशमें हजारों नीम हकीम इन साधनोंके लिए फिरते दिखाई देंगे और इससे राष्ट्रकी अपार हानि होगी।

लिंडसे महोदयने जनन-निरोधके साधनोंका प्रचार करनेके लिए एक मण्डल स्थापित कर लिया है और कहते हैं कि यह संस्था स्वर्गको धरतीपर उतार लायेगी। पर मैं तो मानता हूं कि वह दुनियाको नरक बना देगी। जन-साधारणमें इन साधनोंका प्रचार हुआ तो लोग बेमौत मरेंगे। घुल-

घुलकर, सिसक-सिसककर मरेंगे और शायद यह सत्यानाश देखकर ही आनेवाली पीढ़ियां इन साधनोंसे प्लेगकी तरह भागना सीखेंगी।

जज लिंडसेकी नीयत बुरी नहीं है। वह बेचारे तो यही चाहते हैं कि हर एक कुटुम्बमें उतने ही बच्चे पैदा हों जितने स्त्री चाहती हो और जितनेके पालन-पोषणका बोझ पुरुष उठा सके। उनका दूसरा उद्देश्य है कि स्त्रीमें संभोग-सुखकी स्वाभाविक इच्छा होती है, उसकी तृप्तिका समुचित साधन उसे मिल जाय। इस भावनाका भूत उनकी अदालतमें भग्न-वाहिनी निर्लज्ज छोकरियोंने उनके मानसमें घुसाया है। मैं तो यह मानता हूं कि उनकी अदालतमें आनेवाली लड़कियों-जैसी शहादतें देनेवाली लड़कियां अपवादरूप ही होंगी। मैं दूसरी बहुत-सी लड़कियोंसे मिला हूं। वे काम-वासनाकी बातोंको जज लिंडसेके इजलासपर शहादत देनेवाली लड़कियोंकी तरह कवित्व और तत्त्व-ज्ञानका पालिश चढ़ाकर तो कह ही नहीं सकतीं। बहुसंख्यक समझदार लड़कियां और माताएं जानती हैं कि यह वासना शुद्ध भ्रम है। पर जज लिंडसेके सामने कितने ही वर्षोंसे ऐसी कच्ची अक्लकी लड़कियां लगातार आ रही हैं। इससे उनके जैसा विवाहित अधेड़ उम्रका विद्वान् पुरुषभी रास्तेसे बहक गया और अनचाहे बच्चोंकी पैदाइश रोकनेकी पुस्तक लिख डाली, नहीं तो ऐसा कौन होगा जो इतना ज्ञान रखते हुए कालिजमें पढ़नेवाले लड़के-लड़कियोंको निर्भय होकर सहवास-सुख भोगनेकी सलाह देगा और इसके लिए कानून बनवानेका आंदोलन करेगा? उनका ज्ञान काम कर रहा होता तो उन्हें यह मालूम होता कि कितने सुन्दर, तेजस्वी युवक इस पापसे आत्मघातकी शिक्षा प्राप्त करते हैं, इसलिए कि उनका पुरुषार्थ बिदा हो जाता है और उसके साथ-साथ जीनेकी इच्छा भी चली जाती है। उन्हें इसका पता न हो तो मानस रोगोंका इलाज करनेवाले उन्हें बता सकते हैं कि कच्ची उम्रमें जननेन्द्रियको बहक जाने देना अच्छे-भले युवकको शराबी, चोर, उचक्का और लंफगा बना देता है। उनकी अक्ल मारी न गई होती तो क्या वह लिखते कि पुरुषकी विषय-वासना तृप्त करना और उसकी वेश्या बनना स्त्रीका धर्म है?

इन अक्लके दुश्मनोंको कौन समझाये कि प्रजामें अगर जन्म-मरण बहुत बढ़ जाय तो उसे रोकनेका बस एक ही उपाय है—विषय-भागसे निवृत्ति ! इनकी आंखें यह क्यों नहीं देख सकतीं कि पशुओंमें यही उपाय अमोघ है ? इनकी अकलमें यह बात क्यों नहीं आती कि इन ऊपरी उपायोंका अवलंबन स्त्रियोंको वेश्या और विपथगामिनी और पुरुषोंको निर्जीव-नपुंसक बना देता है ।

स्वास्थ्यरक्षाके लिए संभोग आवश्यक है, इस भ्रमको दूर कर देना हरएक डाक्टर और अनुभवी सलाहकारपर फर्ज है । मैं तो अपने अनुभव और विद्वान् अनुभवी चिकित्सकोंके साथ बातचीत करके जो-कुछ जान सका हूं, उसके आधारपर यह कहनेको तैयार हूं कि लंबे अरसेतक संभोग न करनेसे कुछ भी हानि नहीं होती, बल्कि बेहद लाभ होता है । कितने ही युवकोंमें जो उछलता हुआ उत्साह और कौंधता हुआ तेज दिखाई देता है वह उनके जी भरकर विषय-भोग करनेका फल नहीं बल्कि संयमका प्रसाद होता है । हरएक पुरुषार्थी 'पुरुष' जाने-अनजाने इस सूत्रका पालन करता है—

विषय-वासनाकी तृप्तिमें खर्च होनेवाली शक्ति सहजही पुरुषार्थ सिद्धिमें लगाई जा सकती है। शक्तिका संयम जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक सिद्धि मिलेगी ।

इन्सान कितनी ही सदियोंसे कीमियाकी तलाशमें भटक रहा है । इस सूत्रमें जैसी शक्तियां भरी हैं वैसी कहां मिलेंगी ?

स्त्रीका कर्त्तव्य

स्त्रियोंको अब जागना, सावधान हो जाना चाहिए । उन्हें यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि हम पुरुषकी विषय-वासना तृप्त करनेके साधन नहीं हैं। इस रूपमें व्यवहार किये जानेका उन्हें तीव्र विरोध करना चाहिए । पुरुष कमाकर स्त्रीको खिलाता है तो इसके लिए इतना उपद्रव क्यों ? वह घर चलाये, बच्चोंको पाले-पोसे, पढ़ाये-लिखाये, घरके वायु-मंडलमें प्रसन्नता

भरे, पति और बच्चोंको ऊंचे आदर्शोंसे अनुप्राणित करे, अपने उगते-खिलते हुए बेटे-बेटियोंको सन्मार्गपर चलाती रहे, इससे अधिक स्त्रीका कर्तव्य और क्या हो सकता है ? इतने कर्तव्योंका बोझ उठानेके लिए तो उसे इनाम मिलना चाहिए, उसके लिए खास सुभीते कर दिये जाने चाहिएं।

ब्रह्मचारिणी जोन

पुरुष जैसे विषय-भोगकी कामनाको पुरुषार्थमें बदल सकता है वैसे ही स्त्री भी कर सकती है। ऊंचे आदर्शको सामने रखकर अपने यौवन-धन, अपने सौन्दर्य और अपने सारे आकर्षणको लेकर वह बड़े-से-बड़ा पुरुषार्थ कर सकती है,। इतिहासमें इसका सबसे ऊंचा उदाहरण जां दार्क (जोन ऑव आर्क)का है। उसके पास अपने निष्कलंक कौमार्य और पारदर्शक ब्रह्मचर्यके सिवा और कौन-सा बल था। १५वीं सदीमें फ्रांसमें कैसी भयावह स्थिति थी ! सब ओर दारिद्रय, दुःख और दुष्टताका साम्राज्य था। फ्रेंच सेना अनेक वर्षोंसे अंग्रेजी सेनासे हारपर हार खाती जा रही थी, सैनिक निस्सत्व, निर्वीर्य हो गये थे। उत्तरके सभी बड़े नगर दुश्मनके कब्जेमें थे। पेरिसकी सड़कोंपर लाशोंके ढेर पड़े सड़ रहे थे। राजा भाग गया था। स्त्रियोंमें शील-जैसी वस्तु रह ही नहीं गई थी, ऐसे कठिन कालमें जां दार्क नामकी अपढ़ पर महा शूरवीर और बुद्धिमती कुमारी आगे आई। लोग उसकी पवित्रता स्वीकार न करते थे। सोचते थे कि वह भी फ्रांसकी दूसरी हजारों छोकरियों-जैसी होगी। सोलह सालकी लड़कीका कौमार्य क्या अखंडित हो सकता है ?

उसके कौमार्यकी जांच करनेके लिए एक कमीशन बिठाया गया। उसका दावा सही साबित हुआ। तब बुद्धिमान पुरुषोंने उसे चांदीका बख्तर पहनाया और फौजके आगे रखा, और वह इस तरह मौतका डर छोड़कर लड़ी मानो उसके अन्दर किसीने बिजली भर दी हो। उसके ब्रह्मचर्यका लोगोंके ऊपर अद्‌भुत् प्रभाव पड़ा। नामर्द मर्द बन गये और कितने ही वर्षोंसे चलनेवाली लड़ाई गिने-गुथे दिनोंमें ही समाप्त हो गई। अंग्रेजोंके कदम

फ्रांससे उखड़ गये। इतिहासमें इस घटनाका जवाब नहीं मिला। पर आज जो प्रवाह बह रहा है वह चलता रहे—स्त्री विषय-वासना की तृप्ति-मात्रका साधन बन जाय। पुरुष उसे भ्रष्ट करता रहे, जनन-निरोधके साधनोंका चलन आम हो जाय, तो इससे समाजमें सत्यानाशका जो चक्र चलेगा उसे रोकनेके लिए ब्रह्मचारिणी तपस्विनी जां दार्क-जैसों की ही आवश्यकता होगी, जो १५वीं सदीकी उस वीरांगनाका जोड़ होगा।

सब स्त्रियां भले ही जां दार्क न बनें, भले ही वे पवित्र विवाह-बंधन-में बंधें; पर इस बंधनमें बंधकर भी वे अपने सम्बन्धकी पवित्रता कायम रखें; उसे वेश्या-वृत्ति न बना दें। माताका धर्म समझें और पुरुषका पुरुषार्थ जगानेवाली शक्ति बनें।

उपसंहार

यह इस सुन्दर पुस्तकका सार है। पहली पुस्तकका सार लगभग शब्दशः उलथा है। पर यह खुलासा उलथा नहीं बल्कि लेखकके भावोंका निचोड़ है। सारी पुस्तकमें जो-कुछ कहा गया है वह मानो अपने इस महामंत्रमें आ जाता है—

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दु-धारणात्

और ज़ां द आर्क-जैसे ज्वलन्त दृष्टान्त अपने वैधव्यके अखंड ब्रह्मचर्यसे चमकनेवाली मीराबाई, झांसीकी महारानी लक्ष्मीबाई और अहिल्याबाई होलकरके तथा संपूर्ण जीवनको कौमार्य—ब्रह्मचर्यसे शोभा-सम्पन्न कर देने-वाली दक्षिण भारतकी दो साध्वियों अव्वै और आंडालके चरित्रमें मिलते हैं।[1]

---

१. स्वर्गीय श्री महादेव देसाई द्वारा किये हुए और 'नवजीवन' प्रकाशित सारांशका उलथा।

: २ :

जनन और पुनर्जनन

(श्री विलियम लॉफ्ट्स हेयरके लेखका भावानुवाद)

जिन जीवोंका शरीर केवल एक कोषका बना होता है उन्हें खुर्दबीनसे देखनेपर प्रकट होता है कि अतिनिम्न कोटिकी जीवश्रेणियोंमें जनन या वंश-वृद्धिकी क्रिया विभाजनके द्वारा होती है। जीव-शरीरके टुकड़े होकर एकसे दो जीव बन जाते हैं। जीव पोषण पाकर पुष्ट होता है और उसकी जातिके जीवके देहकी अधिक-से-अधिक जितनी बाढ़ हो सकती है उस बाढ़को जब वह पहुंच जाता है तब वह अपने प्राण-केन्द्र (न्यूक्लियस) और कुछ क्षण बाद शरीरके भी दो टुकड़े कर लेता है। स्थिति साधारण हो—जल और आहार सुलभ हो—तो जान पड़ता है, उसके जीवनका कार्य यहीं समाप्त हो जाता है। पर ये दोनों वस्तुएं सुलभ न हों तो कभी-कभी यह देखनेमें आता है कि दोनों कोष फिर जुड़ जाते हैं। इससे नये जीवकी उत्पत्ति तो नहीं होती; पर उस जीवकी जवानी लौट आ सकती है।

बहुकोषी जीवोंमें भी पोषण और वृद्धिकी क्रियाएं वैसे ही होती हैं जैसे नीचेकी श्रेणीवाले प्राणियोंमें, पर एक नई बात देखनेमें आती है। जिस कोष-समूहसे शरीरका निर्माण होता है वह कई वर्गोंमें बंटकर भिन्न-भिन्न कार्य करने लगता है। कुछ आहार या पोषण प्राप्त करते हैं, कुछ उसका वितरण करते हैं, कुछ शरीर या उसके विभिन्न अंगोंको हिलने-डुलनेमें समर्थ बनाते हैं तो कुछ उसकी रक्षाका भार उठाते हैं, जैसे खाल। जिन कोषोंको नये काम सौंपे जाते हैं वे विभाजनकी प्राथमिक क्रिया त्याग देते हैं। पर जिनका स्थान पिंडके अधिक भीतरी भागमें होता है वे उसे

---

१. शिकागो अमरीकाके 'ओपेन कोर्ट' नामक मासिकके मार्च, १९२६ के अंकमें प्रकाशित।

किये जाते हैं। जिन कोषोंका रूप-कार्य बदल गया वे उनकी सेवा-रक्षा करते हैं। पर वे खुद जैसे-के-तैसे बने रहते हैं। वे पहलेकी तरह फटते, विभक्त होते रहते हैं, पर बहुकोषी शरीरके अंदर ही आगे चलकर कुछ उससे बाहर भी कर दिये जाते हैं। परन्तु उन्हें एक नई शक्ति मिल जाती है। अपने पुरखोंकी तरह फटकर एकसे दो हो जानेके बदले वे अपने प्राण-केन्द्रके टुकड़े किये विना ही उससे नये पिंड पैदा कर लेते हैं। यह क्रिया तबतक चलती रहती है जबतक प्राणी अपनी जातिकी पूरी बाढ़ नहीं प्राप्तकर लेता। तब उसकी देहमें एक नई बात दिखाई देती है। बीज-कोषोंके मूल समुदाय बाह्य जननके कामसे छुट्टी पा ही जाते हैं। देहके भीतर विभिन्न क्रियाओंके लिए वे नये कोष भी लगातार प्रस्तुत करते रहते हैं। अपने मूल रूपमें बने रहनेवाले कोष इस प्रकार एक साथ दो काम करते हैं—शरीरके विकासके लिए भीतरी जनन या उत्पादन और वंश-रक्षाके लिए बाहरी जनन। यहां इन दोनों क्रियाओंमें हम स्पष्टतः भेद कर सकते हैं। इनमेंसे एकको हम **पुनर्जनन** और दूसरेको **जनन** कहेंगे। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। पुनर्जननकी क्रिया—भीतरी उत्पादन—व्यक्तिकी जीवन-रक्षाके लिए अनिवार्य है, इसलिए आवश्यक और प्रधान है। जननकी क्रिया कोषोंके आवश्यकतासे अधिक हो जानेका परिणाम है इसलिए कम जरूरी, गौण है। संभवतः दोनों शरीरको पूरा पोषण मिलनेपर अवलंबित है, क्योंकि उसमें कमी हुई तो शरीरके भीतरी निर्माणकी क्रिया ठीक तौरसे न हो सकेगी और फिर बाह्य जनन-वंश-वृद्धिकी आवश्यकता न होगी. होना शक्य न होगा। अतः इस स्थितिमें जीवनका नियम यह है कि बीज-कोषोंका पोषण पहले पुनर्जननके लिए किया जाय, फिर जनन-क्रियाके लिए। शरीरको पूरा पोषण न मिलनेकी दशामें पुनर्जनन प्रथम कर्तव्य होगा और जननकी क्रिया बंद रहेगी। इस प्रकार हम जान सकते हैं कि सन्तानोत्पादन कुछ समय तक रोक रखनेकी प्रेरणाका उद्गम कहां है और किस तरह विकसित होकर उसने ब्रह्मचर्य और तपश्चर्याका रूप प्राप्त किया। आन्तरिक पुनर्जननकी क्रिया बंद हो जानेका अर्थ मृत्यु होगा, और यह बात हमें स्वाभाविक मृत्युके मूलका भी पता दे देती है।

जीवन-शास्त्रमें जनन

मनुष्यों और पशु-जातियोंमें लिंग-भेद चरम विकासको पहुंच चुका है और साधारण नियम बन गया है। इनकी स्थितिपर विचार करनेके पहले हमें जनन या वंश-वृद्धिके मध्यवर्ती प्रकारपर एक निगाह डाल लेनी होगी। यह प्रकार है—उभयलिंग प्रकारके पहले और अलिंग प्रकारके बादका। पौराणिक गाथाओंमें इस जीवश्रेणीको उभयलिंगकी संज्ञा दी गई है, इसलिए कि वह नर-नारी दोनोंके काम करता है। कुछ जीवोंमें अब भी यह बात देखनेमें आती है। उनमें बीज-कोषोंकी आन्तरिक वृद्धि तो ऊपर बताई हुई रीतिसे ही होती है; पर जनन-क्रियाके लिए विलकुल अलग कर दिये जानेके बदले वे कुछ कालके लिए ही अलग किये जाते हैं और देहके दूसरे भागमें दाखिल हो जाते हैं, और जबतक स्वतंत्र जीवनकी योग्यता नहीं प्राप्त कर लेते तबतक वहीं उनका पोषण होता रहता है।

जीवनके विकासका नियम यह मालूम होता है कि प्राणी एक-कोषी हो, बहुकोषी हो या उभयलिंग, उसके शरीरकी बाढ़ उस हदतक हो सकती है जिस हदतक उसके जननी-जनक उसके जन्म-कालमें पहुंच चुके थे। इस प्रकार प्रगति व्यष्टि-प्राणीकी होती है। जब-जब वह बच्चा पैदा करता है, शरीर-संघठनकी दृष्टिसे वह खुद पहलेसे अच्छी स्थितिमें होता है या हो सकता है। फलतः उसकी सन्तान अपने मां-बापकी साधारण बाढ़को पहुंचनेमें समर्थ होगी। सन्तानोत्पादनमें समर्थ होनेका काल प्रत्येक व्यक्ति और जातिके लिए भिन्न-भिन्न होता है। पर आदर्श रूपमें वह जवानीसे बुढ़ापेके आरंभतक होता है। जवान होनेके पहले या शक्तियोंका ह्रास आरम्भ हो जानेके बाद सन्तान उत्पन्न की जाय तो वह मां-बापसे बल-बुद्धिमें हीन होगी। यहां भी शरीर-शास्त्रके नियम हमें संभोग-नीतिका एक नियम बताते हैं—वंश-वृद्धि और शरीरकी आंतरिक पुष्टिकी दृष्टिसे पूर्ण यौवनकाल ही सन्तानोत्पादनके लिए सर्वोत्तम काल है।

उभयलिंग प्राणीसे लिंग-भेदकी उत्पत्तिका इतिहास हम छोड़ देते हैं, क्योंकि यह विकास-क्रम निर्विवाद तथ्य है। पर उभय-लिंग प्राणीका

उत्पत्तिके साथ एक नई बात पैदा हो जाती है जिसकी चर्चा आवश्यक है। उभयलिंग प्राणीके दोनों अर्द्धभाग--'नर' और 'मादा'—दो पिंड तो हो ही जाते हैं, हर एक अलगसे बीज-कोष भी पैदा करने लगता है। नर-भाग बीज-कोष या शुक्र-कीट बनाकर आंतरिक जननका पुराना बुनियादी काम बदस्तूर किये जाता है, पर उन्हें पृथक् करनेके बजाय इस उद्देश्यसे बटोर रखता है कि शुक्र-कीट उनमें प्रविष्ट होकर गर्भाधान करे। दोनों अवस्थाओंमें पुनर्जननकी क्रिया व्यक्तिके लिए अनिवार्य आवश्यक है। गर्भ-स्थितिके बादसे भीतरी पुनर्जननकी क्रिया प्रतिक्षण बढ़ती जाती है। मानव-प्राणीके पूरी बाढ़को पहुंच जानेपर सन्तानोत्पादन हो सकता है, पर वह केवल जातिके हितार्थ होता है, व्यक्तिका हित उससे होना जरूरी नहीं है। निम्नकोटिके जीवोंकी तरह यहां भी आंतरिक जनन रुक जानेका अर्थ रोग या मृत्यु होता है। यहां भी व्यक्ति और जातिके हित एक-दूसरेके विरोधी होते हैं। व्यक्तिके पास बीज-कोषोंकी फाजिल पूंजी न हो तो सन्तानोत्पादनमें उसे खर्च करनेसे पुनर्जनन या आंतर उत्पादनकी क्रियाको कुछ आवश्यक सामग्रीकी कमी पड़ जायगी। सच तो यह है कि सभ्य मानव-समाजमें संभोग वंश-रक्षाकी आवश्यकतासे कहीं अधिक और भीतरी पुनर्जननकी क्रियामें अड़चन डालते हुए किया जाता है, जिसका फल रोग, मृत्यु और दूसरे कष्ट होते हैं।

मानव-शरीरकी कल किस तरह चलती है इसपर यहां हम थोड़ी अधिक सूक्ष्म दृष्टि डालना चाहते हैं। हम पुरुष-शरीरको लेते हैं, पर स्त्री-शरीरमें भी, ब्योरेके थोड़े अन्तरके साथ, वही क्रियाएं होती हैं।

शुक्र-कोषोंका केन्द्रीय भंडार प्राणका आदिम और मूलभूत अधिष्ठान है। भ्रूण या गर्भ आरंभसे ही, माताकी देहमें बननेवाले रसोंसे पुष्ट होकर, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है। शुक्र-कोषोंका पोषण ही यहां भी जीवनका नियम दिखाई देता है। गर्भके शुक्र-कोषोंकी संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ती है और उनमें कुछ भिन्नता पैदा होने लगती है, वे आवश्यकतानुसार नये रूप और नये कार्य ग्रहण करने लगते हैं। स्थूल अर्थमें जन्म-ग्रहण-मांके पेटसे बाहर आनेसे इस क्रियामें थोड़ा ही अन्तर पड़ता है, पहले शुक्र-कोषके पोषणकी सामग्री नालके द्वारा मिलती थी, अब होठों और मुंहके रास्ते मिलती है। कोषोंकी

वृद्धि अब तेजीसे होती है और सारे शरीरमें जहां कहीं निकम्मे तन्तुओंकी जगह नये तन्तु बनानेकी आवश्यकता होती है वहां पहुंच जाते हैं। रक्त-वाहिनी नाड़ियां इन कोषोंको अपने आदि अधिष्ठानसे लेकर देहके हर हिस्सेमें पहुंचाती हैं। बड़े-बड़े समूहोंमें वे खास-खास काम अपने जिम्मे लेते हैं और देहके भिन्न-भिन्न अंगोंका निर्माण और मरम्मत करते हैं। जिस कोष-समुदायकी वे व्यष्टि हैं वह जीता रहे इसके लिए वे हजार बार मौतको गले लगाते हैं। ये सारे 'मुर्दे' शरीरकी ऊपरी सतह पर आ जाते हैं, और खासकर हड्डियों, दांतों, खाल और बालोंमें कड़ाई पैदा करके सारे शरीरका बल बढ़ाते और उसकी रक्षा करते हैं। उनकी मृत्यु देहके उच्चतर जीवन और उसपर आश्रित सारी बातोंका मूल्य है। वे, आहार-ग्रहण नये कोषोंका उत्पादन, विभाजन, भिन्न-भिन्न वर्गोंमें बंटकर भिन्न-भिन्न कार्योंका संपादन, और यह सब करके अन्तमें मर जाना बंद कर दें तो शरीर जी नहीं सकता।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, बीज-कोषों या शुक्रकोषोंसे दो तरहके जीवनकी प्राप्ति होती है—१. आन्तरिक या प्रजनन-रूप और २. बाह्य या जननरूप। पुनर्जनन देहके जीवनका आधार है और उसको भी उसी स्रोतसे जीवन मिलता है जिससे जनन-क्रियाको। इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि विशेष अवस्थाओंमें दोनों क्रियाएं एक-दूसरेकी विरोधिनी, एक-दूसरे में बाधक हो सकती हैं।

पुनर्जनन और अचेतन मन

पुनर्जनन यांत्रिक क्रिया—बेजान कलके पुरजोंका हिलना—न है और न हो सकता है। वह तो जीव-सृष्टिमें कोषके प्रथम विभाजनकी तरह प्राण या जीवका अस्तित्व बतानेवाला व्यापार है। अर्थात्, वह कर्त्तामें बुद्धि और संकल्पकी शक्ति होनेकी सूचना देता है। प्राण-तत्त्वका विभाजन और बिलगाव—उसका विशिष्ट कार्योंकी योग्यता प्राप्त करना शुद्ध यांत्रिक क्रिया है, यह बात तो सोची भी नहीं जा सकती। इसमें सन्देह नहीं कि जीवनकी ये मूलभूत क्रियाएं हमारी वर्तमान चेतनासे इतनी दूर जा पड़ी हैं

कि कोई बुद्धिकृत या सहज संकल्प उनका नियमन करता है, यह नहीं जान पड़ता। क्षण-भरके विचारसे ही यह बात स्पष्ट हो जायगी कि पूरी बाढ़को पहुंचे हुए मनुष्यका संकल्प जिस तरह उसकी बाह्य चेष्टाओं और क्रियाओंका संचालन, बुद्धि के निर्देशानुसार करता है, वैसे ही यह भी मानना होगा कि आरंभमें होनेवाली शरीरके क्रमिक संघटनकी क्रियाएं भी, अपनी परिस्थितिकी सीमाओंके अंदर, एक प्रकारकी बुद्धिकी रहनुमाईमें काम करनेवाली एक प्रकारकी इच्छा-शक्ति या संकल्पके द्वारा परिचालित होती है। इस बुद्धिको मानस-शास्त्रके पंडित अब अचेतन मन या अन्तश्चेतना कहने लगे हैं। यह हमारी व्यष्टि सत्ता, हमारी आत्माका ही एक ही अंग है, जो हमारे साधारण चिन्तनसे लगाव न रखते हुए अपने निजके कर्तव्योंके विषयमें अतिशय जागरूक और सावधान रहता है। हमारी बाह्य चेतना सुषुप्ति बेहोशी आदिमें सो जाती है; पर अन्तश्चेतना कभी एक क्षणके लिए आंख नहीं मूंदती।

इस प्रकार हमारी अन्तश्चेतना ही वह प्राण-शक्ति है जो शरीरके भीतरी निर्माण और विकासकी पेचीदा क्रियाओंका नियमन करती है। उसका पहला काम है—गर्भयुक्त डिम्बको अलग करना और इसके बाद प्राणीकी मृत्यु होनेतक मूल बीज-कोषोंको जज्ब कर और उन्हें भिन्न-भिन्न अंगोंको भेजकर, अपने पिंड या शरीरकी रक्षा करते रहना। इस विषयमें मेरा मत अनेक नामी मानस-शास्त्रियोंके मतका विरोध करता हुआ मालूम हो सकता है, पर मेरा कहना है कि अचेतन मनको केवल व्यक्तिकी चिन्ता होती है, जातिके जीने-मरनेकी परवाह उसे नहीं होती। अतः पहले वह पुनर्जननकी गाड़ी चलानेका उपाय करता है। केवल एक ही दृष्टिसे कह सकते हैं कि अचेतनको भावी पीढ़ीकी, जातिकी, चिन्ता होती है—शरीर-संघटनकी दृष्टिसे व्यक्तिको अपने पुरुषार्थसे वह जिस स्तरपर पहुंचा चुका है उसको वह बनाये रखना चाहता है। पर जो बात असंभव है वह उसके किये नहीं हो सकती। चेतन या ज्ञात संकल्पकी सहायतासे भी वह जीवनको अनन्त कालतक बनाये नहीं रह सकता। अतः काम-प्रवृत्ति या संभोगके आवेगके जरिये अपने-आपको फिरसे पैदा करता है। कह सकते हैं कि इस

व्यापारमें अचेतन और चेतन मन—अन्तश्चेतना और बहिश्चेतना—मिल-कर काम करती हैं। संभोगमें मिलनेवाला सुख साधारणतः इस बातकी सूचना माना जा सकता है कि उससे व्यक्तिको सुख मिलनेके सिवा किसी औरके प्रयोजनकी भी पूर्ति होती है। व्यक्तिको इस सुखकी कीमत भी, जितनी वह जानता है, उससे बहुत ज्यादा चुकानी पड़ती है।

जन्म और मृत्यु

इस लेखको विज्ञानके विशेषज्ञोंके अवतरणोंसे भरकर बोझिल बना देना इष्ट नहीं है, पर विषय इतने महत्त्वका है और जन-समाजमें इस विषय-में इतना अज्ञान फैल रहा है कि कुछ प्रामाणिक वचन हमें देने ही होंगे। रे लैंकेस्टर लिखते हैं—

"आदि-जीव (प्रोटोजोऑन) का शरीर केवल एक कोषका होता है, और अपना वंश वह अपने शरीरके टुकड़े करके बढ़ाता है। इससे इस प्रकार-के जीवोंमें मृत्यु कोई स्वाभाविक और साधारण घटना नहीं है।"

वीसमानका कहना है—"स्वाभाविक मृत्यु केवल बहुकोषी जीवोंमें ही होती है, एक कोषवाले जीव उससे बच जाते हैं। उनके विकासका कभी वैसा अन्त नहीं होता जिसकी तुलना मृत्युसे की जा सके, और यह भी जरूरी नहीं कि नये प्राणीके पैदा होने के लिए पुरानेको मरना पड़े। विभाजनमें दोनों अंश समान होते हैं, न कोई बूढ़ा होता है न कोई जवान। इस प्रकार व्यष्टि जीवोंकी अनन्त श्रेणी चलती रहती है, जिसमें हर एककी वय उतनी ही होती है जितनी जातिकी। हर एकमें अनन्त कालतक जीते रहनेकी सामर्थ्य होती है, उसके टुकड़े सदा होते रहते हैं, पर मरता कभी नहीं।"

पैट्रिक गेडेस 'द इवोल्यूशन आव सेक्स' (लिंग-भेदका विकास) पुस्तकमें लिखते हैं—"इस तरह हम कह सकते हैं कि मृत्यु देह-धारणका मूल्य है। यह कीमत हमें कभी-न-कभी चुकानी ही पड़ती है। देहसे हमारा मतलब कोषोंके उस जटिल संघातसे है जिसमें थोड़ा-बहुत अंग-भेद और कार्य-भेद विद्यमान हो।"

श्री वीसमानके अर्थभरे शब्दोंमें "देह एक तरहसे जीवनके सच्चे

अधिष्ठान-उत्पादन-कार्य करनेवाले कोष-समूहका अतिरिक्त विस्तार उनसे जोड़ी हुई चीज-सी जान पड़ती है।"

श्री रे लैंकेस्टर भी यही बात कहते हैं—"बहुकोषी प्राणियोंके शरीरमें कुछ कोष देहके और घटकोंसे अलग कर दिये जाते हैं।...ऊंची श्रेणीके जीवोंकी देह, जो मरणशील होती है, इस दृष्टिसे क्षणिक और गौण वस्तु मानी जा सकती है, जिसकी रचनाका प्रयोजन अधिक महत्त्वशाली और अमर वस्तु-विभाजनसे उत्पन्न कोष-संघात—का कुछ दिनों तक धारण-पोषण करते रहना-भर है।"

"पर इस विषयमें सबसे अधिक मार्केकी और संभवत: सर्वाधिक विस्मय-जनक बात वह गहरा लगाव है जो ऊंचे प्रकारकी बनावट वाली देहों या पिंडोंमें जनन-क्रिया और मृत्युके बीच पाया जाता है। अनेक विज्ञानविद् इस विषयपर स्पष्ट और निश्चयात्मक शब्दोंमें अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। जननका दण्ड मरण है। बहुतेरी जीव-योनियोंमें यह बात बिलकुल स्पष्ट है। वंश-रक्षाका उपाय करनेमें उनमें नर या मादामेंसे एकको अक्सर जानसे हाथ धोना पड़ता है। सन्तानोत्पादनके बाद जीते रहना प्राणीकी विजय है, जो सदा नही होती। कुछ जीव-जातियों में तो कभी नहीं होती। गेटेने मृत्युपर लिखे हुए अपने निबधमें भली-भांति दिखाया है कि जनन और मरणमें कितना निकटका और अनिवार्य सम्बन्ध है। ये दोनों क्रियाएं क्षय क्रियाकी वे मजिलें कही जा सकती हैं जब स्थिति कोई पक्की करवट लेती है।"

श्री पैट्रिक गेडेस पुन: कहते हैं—"सन्तानोत्पादन और मृत्युका सम्बन्ध निस्संदेह स्पष्ट है। पर आम बोल-चालमें इस लगावको गलत रूप दे दिया जाता है। हम लोगोंको यह कहते सुनते हैं कि प्राणीकी मृत्यु अटल है इसलिए उसे बच्चे पैदा करने ही होंगे, नहीं तो जातिका नाश हो जायगा। पर पीछेके उपयोगकी यह दलील आमतौरसे हमारे दिमागकी बादमें होने-वाली उपज होती है। इतिहास हमें बताता है कि प्राणी इसलिए बच्चे नहीं पैदा करता कि उसे एक दिन मरना है, बल्कि वह बच्चे पैदा करता है इसीलिए मरता है।"

गेटेने इस तत्त्वको यों सूत्र-रूपमें बताया है—"मरण जननको आवश्यक नहीं बनाता, बल्कि वह खुद जननका अनिवार्य परिणाम है।"

बहुत-सी मिसालें देनेके बाद गेडेसने इन ध्यान देने योग्य शब्दोंमें इस विषयका उपसंहार किया है—"ऊंची श्रेणीके जीवोंमें वंश-वृद्धिके लिए होनेवाला बलिदान बहुत कम हो गया है, फिर भी काम-वासनाकी तृप्तिके फल-रूपमें मौत होनेका खतरा मनुष्यके लिए रहता ही है। संयत मात्रामें संभोगसे भी तन-मनमें सुस्ती, थकावट आ जाती है और शारीरिक शक्तिके इस ह्रास-कालमें हर तरहके रोग होनेकी संभावना बढ़ जाती है, यह तो सभीको मालूम है।"

इस विवेचनाका निचोड़ यह हो सकता है कि संभोग पुरुषके लिए शरीरके क्षयकी क्रिया या मौतकी ओर बढ़ना है और प्रसव-क्रियामें स्त्रीके लिए भी उसका वही अर्थ होता है। और यह बात बिलकुल पक्की है।

असंयत संभोगका शरीरके स्वास्थ्यपर जो अनिष्टकर प्रभाव पड़ता है उसपर एक पूरा अध्याय लिखा जा सकता है। अखंड ब्रह्मचर्य या पूर्ण संयमका पालन करनेवालेको भी बल-वीर्य, दीर्घायु और आरोग्यकी प्राप्ति होना साधारण नियम है। इसका एक सबूत, यद्यपि वह जरा भद्दा है, यह हो सकता है कि दुर्बल जनोंके शरीरमें इंजेक्शनके जरिये बाहरसे थोड़ा वीर्य पहुंचा देनेसे उनकी बहुत-सी व्याधियां दूर हो जाती हैं।"

प्रस्तुत निबंधके इस भागमें जो मत या निष्कर्ष पाठकोंके सामने रखे गये हैं उनका मन उन्हें माननेसे इनकार कर सकता है। कितने ही लोग बहुतेरे बूढ़े और देखनेमें तन्दुरुस्त लगनेवाले स्त्री-पुरुषोंके नाम लेंगे जिनके बहुत-से बालबच्चे हैं, आंकड़े देकर दिखायंगे कि विवाहित स्त्री-पुरुष अविवाहितोंसे अधिक जीते हैं। पर इनमेंसे कोई भी दलील इस तथ्यके सामने टिक नहीं सकती कि विज्ञानकी दृष्टिसे मृत्यु जीवनके अन्तमें घटित होनेवाली घटना नहीं है, बल्कि एक क्रिया है जो जीवनके साथ ही आरंभ होती और प्रतिक्षण उसके साथ-साथ चलती रहती है। शरीरकी छीजकी पूर्ति अथवा पोषण और उसका क्षय जीवन और मरणकी शक्तियां हैं जो एक-दूसरेके कदम-ब-कदम चला करती हैं। बचपन और चढ़ती जवानी के दिनोंमें

जीवनकी क्रिया दौड़में आगे रहती है। प्रौढ़ावस्थामें दोनों कदम-ब-कदम चलती हैं; पर जब उम्र ढलने लगती है तो मृत्युकी क्रिया आगे निकल जाती है और अन्तमें निधनके क्षणमें जीवनकी शक्तिको पक्के तौरसे पछाड़ देती है। इस जय-लाभमें सहायक होनेवाली हर बात, हर बात जो उस घड़ीको एक दिन, एक बरस या एक दशक आगे खींच लाती है, मृत्युकी क्रिया है। और संभोग निस्सन्देह ऐसा ही कार्य है, खासकर जब वह अति मात्रामें किया जाय।

अपने उपर्युक्त कथनकी प्रामाणिकतापर सन्देह करनेवालोंको मैं एक बहुत ही रोचक और ज्ञानगर्भ पुस्तक पढ़नेकी सलाह दूंगा। वह चार्ल्स एस माइनट लिखित 'द प्राब्लम आव एज ग्रोथ ऐंड डेथ' (वय विकास और मृत्युकी समस्या)।[1] विद्वान लेखकने इस पुस्तकमें क्षय और मृत्युका अर्थ और स्वरूप शरीर-शास्त्रकी दृष्टिसे बताया है। उसकी इस बातको मैं पक्के तौरसे मानता हूं कि स्वाभाविक मृत्यु जीवनकी कोई अलग, असंबद्ध घटना नहीं है, बल्कि एक निरंतर चलती रहनेवाली क्रिया है। पर कामुकताके विषयपर जो पुस्तक मुझे सबसे अधिक महत्त्वकी जान पड़ी वह है डाक्टर केनेथ सिलवां गुथरीकी 'रिजेनरेशन द गेट ऑंव हेवेन' (पुनर्जनन-स्वर्ग-द्वार[2])। उसका नाम तो बताता है कि वह आध्यात्मिक दृष्टिसे लिखी गई है, पर उसमें शरीरशास्त्र और नीतिशास्त्रकी दृष्टिसे भी विषयका पूर्ण विवेचन किया गया है और अपने मतकी पुष्टिमें विज्ञानके प्रमुख पण्डितों तथा ईसाई धर्माचार्योंके मत पेश किये गए हैं।

मनकी इन्द्रिय

शरीरके उच्चतर कार्यों, खासकर मनकी भौतिक इंद्रिय-नाड़ी-संस्थान

---

[1] 'The Problem of Age, Growth and Death, by Charls S. Minot (1908. Johan Murray)

[2] Regeneration, the Gate of Heaven. by Dr. Kenneth Sylvan Guthrie (Boston, the Barta, Press)

और मस्तिष्कका विचार करनेसे जनन और पुनर्जनन क्रियाके स्थिर विरोधका कुछ अंदाजा हमें लग सकता है। हमारा सम्पूर्ण नाड़ी-संस्थान भी ऐसे कोषोंसे ही बना है जो कभी बीज-कोष रह चुके हैं और जो प्राणके आदि अधिष्ठानसे खिंचकर आये हैं। विभिन्न संस्थानोंके नाड़ी-जाल केन्द्रोंको उनकी धारा सदा सींचती रहती है, दिमागको तो प्रचुर मात्रामें उसकी प्राप्ति होती है। इन कोषोंका ऊपरकी ओर जाकर शरीरके पोषणमें लगना रोककर वे सन्तानोत्पादन या केवल भोग-सुखके लिए खर्च किये जायं तो वह खजाना खाली हो जाता है, जिससे उक्त अंग रोज होनेवाली छीजकी पूर्ति किया करते है ? यही शारीरिक सचाइयां हमारी वैयक्तिक संभोग-नीतिका आधार हैं जो अखंड ब्रह्मचर्य नहीं तो सयमकी सलाह जरूर देती हैं—संयमकी प्रेरणाका मूल स्रोत कहां है यह तो बताती ही हैं।

कुछ दर्शन मानते हैं कि ब्रह्मचर्य-धारणसे मन और आत्माकी शक्तियां बढ़ती हैं। भारतका योग-दर्शन उनमें प्रधान है। पाठक पातंजल योग-दर्शनके किसी भी प्रामाणिक उलथेको देखकर मेरे कथनकी सचाईकी जांच कर सकते हैं। ('हारवर्ड ओरियंटल सिरीज'में प्रकाशित जेम्स एच० वुड कृत उलथा मेरी समझसे अंग्रेजीमें उसका सर्वश्रेष्ठ अनुवाद है।)

भारतके धार्मिक और सामाजिक जीवनसे परिचित जनोंको मालूम होगा कि हिन्दू लोग पहले तपस्या किया करते थे और बहुतेरे अब भी करते हैं। उसके दो उद्देश्य होते हैं—शरीरकी शक्तियोंको बनाये रखना और बढ़ाना और मनकी अतीन्द्रिय शक्तियां या सिद्धियां प्राप्त करना। पहलेको हठयोग कहते हैं। शारीरिक पूर्णता—आदर्श स्वास्थ्यको ही उसने अपना लक्ष्य मान लिया है। उसके अन्दर बहुतसे करामाती काम किये जाते हैं। दूसरेका नाम राजयोग है, जिसका उद्देश्य मन, बुद्धि और आत्माकी शक्तियों-का विकास है। पर शारीरिक सदाचारका अंग दोनोंमें समान है। यह पतंजलिके योगसूत्र और प्राचीन भारतके इस महान मानस-शास्त्रीके सिद्धान्तोंके सहारे रचित अन्य कितने ही ग्रन्थोंमें वर्णित है।

पंच क्लेशोंमें 'राग' का स्थान तीसरा है। पतंजलिके कथनानुसार उसका अर्थ है सुख या सुख-प्राप्तिके साधनोंकी कामना या तृष्णा। सुखमें

दुःख मिला हुआ है। **सुखानुशायी रागः** (२-७) इसलिए वह योगीके लिए त्याज्य है।

योगके आठ अंग हैं। उनमें पहला और दूसरा यम-नियम हैं, जिनका पालन योगके अभ्यासीको सबसे पहले करना होता है। यह देखकर अचरज होता है कि योगके रहस्योंके अनेक उद्घाटनकर्त्ता या तो इस बातसे अनभिज्ञ हैं या जानते हुए भी इस विषयमें चुप्पी साध लेते हैं कि चौथा यम आठ प्रकारके मैथुनका त्याग है, और ब्रह्मचर्य जननेन्द्रियका निग्रह है।

पर पतंजलिके कथनानुसार ब्रह्मचर्यके लाभ महान हैं : **ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः** (३८-२)—ब्रह्मचर्यमें प्रतिष्ठित होनेवालेको वीर्यलाभ होता है। वीर्यके मानी हैं बल, पौरुष। उसके लाभसे अणिमादि अष्ट सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है।...

श्री मणिलाल ना० द्विवेदी अपनी योग-सूत्रकी टीकामें लिखते हैं। "शरीर-शास्त्रका यह सर्वविदित नियम है कि वीर्यका बुद्धिके साथ बहुत गहरा लगाव है, और हम कह सकते हैं कि आध्यात्म-भावके साथ भी है। जीवनके इस अमूल्य तत्त्वका अपव्यय रोकनेसे मनुष्यको मन-इन्द्रियोंकी अभीष्ट अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त होती है। इस यमका पालन किये बिना किसीकी योग-सिद्धि होनेकी बात हमें नहीं मालूम।"

योग-सूत्रोंके कितने ही भाष्योंमें योगका प्रयोजन और प्रक्रिया रहस्यवादकी शब्दावलीमें वर्णित है। शक्तिके विषयमें कहा जाता है कि वह है सर्पके समान सबसे नीचेके चक्रसे सबसे ऊपरके चक्र अंड-कोषसे ब्रह्माण्डको जाती है।

वैयक्तिक काम-नीति

सदाचारके नियम सामान्यतः जीवनके अनुभवोंसे बनते हैं, चाहे वे व्यक्तियोंके जीवनके हों या समाजोंके अथवा जातिके। इतिहासके कथनानुसार उनकी रचना प्रायः कोई महापुरुष करता है। कभी-कभी उसे ईश्वरके अवतार या दूतका पद प्राप्त होता है। मूसा, बुद्ध, कनफ्यूशियस, सुकरात, अरस्तू, ईसा और उनके बाद हर देशमें हुए महान् धर्मोपदेष्टा और तत्त्व-

ज्ञानी सबने अपने-अपने देश और कालमें मनुष्यके आचारको परखनेकी कोई-न-कोई कसौटी पेश की। अतः सामान्य, सर्वोपयोगी नीति-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, मानस-शास्त्र, शरीर-शास्त्र और समाज-शास्त्रके सिद्धान्तोंपर आश्रित होगा। ये सब मिलकर अनेक तथ्य या माने हुए तथ्य प्रस्तुत करते हैं जो स्वतःप्रमाण होते हैं। अतः किसी भी युग या सभ्यतामें वैयक्तिक काम-नीति या संभोग-नीतिके नियम उन्हीं तथ्योंके आधार बनेंगे जो लोगोंके अपने अनुभवमें उनपर सबसे ज्यादा असर डालते हैं। सामाजिक काम-नीतिकी तरह वैयक्तिक काम-नीति भी युग-युगमें भिन्न होती है। पर उसकी बातें स्थायी और अल्पाधिक सार्वकालिक होती हैं।

इस युगके लिए वैयक्तिक काम-नीति निर्धारित करनेमें हमें सभी ज्ञात तथ्यों और सम्भावनाओंका विचार करना होगा, खासकर जब विश्वसनीय समीक्षकोंके अनुभव उसकी पुष्टी कर देते हों। यह कहना अपनी बड़ाई करना नहीं है कि प्रस्तुत लेखकके पहले और पांचवें प्रकरणोंमें जो तथ्य दिये गए हैं वे निर्विकार चित्तके समझदार पाठकको तत्क्षण कुछ युक्ति-संगत अनिवार्य परिणामोंपर पहुंचाते हैं। व्यक्तिके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक हितकी दृष्टिसे वे तथ्य यही बताते हैं कि ब्रह्मचर्य जीवनका अकाट्य नियम है। पर इस नियमको चुनौती देनेके लिए तुरंत ही दूसरा नियम हमारे सामने आकर ताल ठोकता है। एक नियम दूसरेका खंडन करता है। पहला नियम प्रकृतिका है, कामकी वासना या वेग उसकी देन है। पिछला नियम है अपरोक्षज्ञान (इंस्प्यूशन) का, विज्ञानका, अनुभवका, विश्वासका, आदर्शका। पुराने नियमके अनुसरणका का फल है जल्दी बूढ़ा होना और जल्दी परलोक सिधारना। नये नियमके रास्तेमें ऐसी विकट बाधाएं खड़ी हैं कि उनपर चलनेकी हिम्मत बिरले ही करते हैं। वस्तुस्थिति परविश्वास करना लोगोंके लिए कठिन होता है, वे तुरंत किन्तु-परन्तु करने लगते हैं। पर यहां यह बात उल्लेखनीय है कि योगियों, संन्यासियों और भिक्षुओंके लिए जो आचारके कड़े-से-कड़े नियम रखे गये हैं वे पौराणिक आख्यानों या अंध-विश्वासोंपर आश्रित नहीं है, बल्कि इस निबंधमें वर्णित शारीरिक सचाइयों द्वारा आदिष्ट हैं।

काम-वासनाकी तृप्तिमें सदाचार-पालनका पक्ष, जहांतक मेरी जानकारी है, किसी आधुनिक लेखकने काउंट टालस्टायसे ज्यादा जोरदार या स्पष्ट शब्दोंमें उपस्थित नहीं किया है। रूसके इस आदर्शवादी तत्त्वज्ञानीके विचारों[1] की एक बानगी मैं यहां देता हूं—

"१०२. वंश-रक्षाकी प्रवृत्ति—काम-वासना—मनुष्यमें स्वभावजन्य है। पशु-दशामें वह इस सहज वासनाकी तृप्ति कर अपने जीवनके प्रकृति-निर्दिष्ट उद्देश्यकी पूर्ति करता है। उसीमें उसका हित है।

१०३. पर चेतनाके जगनेपर उसका मन यह कहने लगता है कि इस वासनाकी तृप्तिसे व्यष्टिरूपमें उसकी कुछ अधिक भलाई होगी और वह उसकी तृप्ति जातिकी रक्षाके उद्देश्यसे नहीं बल्कि अपने निजके भलेके लिए करने लगता है। यही कामगत पाप है।

१०७. पहली हालतमें जब मनुष्य पवित्रता अर्थात् ब्रह्मचर्यका जीवन बिताना और अपनी सारी शक्ति भगवानकी आराधनामें लगाना चाहता हो, संभोग-मात्र—उसका उद्देश्य बच्चे पैदा करना और उन्हें पालना-पोसना हो तो भी—कामगत पाप होगा। जिस आदमीने ब्रह्मचर्यका रास्ता अपने लिए चुना हो शुद्धतम वैवाहिक जीवन भी उसके लिए एक स्वभावकृत पाप होगा।

११३. जिसने सेवा और पवित्रता या ब्रह्मचर्यका रास्ता अपने लिए चुना हो उसके लिए विवाह इस कारण पाप या गलती है कि वह इस बंधनमें न बंधता तो संभव है सबसे ऊंचा धंधा अपने लिये चुनता और अपनी सारी शक्तियां भगवानकी सेवामें—फलतः प्रेमके प्रचार और व्यक्तिके परम श्रेयकी प्राप्तिमें—लगाता। इसके बदले वह जीवनके नीचेके स्तर-पर उतर आता है और अपने परम श्रेयसे वंचित रहता है।

११४. जो आदमी वंश-रक्षाके रास्तेपर चलना चाहता हो उसके लिए

[1]. टालस्टायकी परिभाषामें पाप धर्म-शास्त्रके किसी विधि-निषेधका उल्लंघन नहीं है। जो-कुछ प्रेम अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति मैत्रीकी अभिव्यक्तिमें बाधक है, वही पाप है।

विवाह न करना पाप होगा। इसलिए कि बाल-बच्चों, अन्ततः कुटुम्बके नेह-नातेसे वंचित रहकर वह अपने-आपको दाम्पत्य-जीवनके सबसे बड़े प्रेमसे वंचित रखता है।

११५. इसके सिवा जो लोग संभोग-सुखको बढ़ानेका यत्न करते हैं उनका स्वाभाविक सुख, ज्यों-ज्यों उन्हें कामुकताकी लत लगती है, घटता जाता है। सभी शारीरिक वासनाओंकी तृप्तिमें ऐसा होता है।"

इन पंक्तियोंसे प्रकट होता है कि टालस्टायका सिद्धांत नैतिक सापेक्ष्य-वाद है। मनुष्यके लिए परमेश्वर, परब्रह्म किसी अवतारी धर्माचार्यने नियत नहीं कर दिया है, हर एकको खुद उसे चुनना पड़ता है। हां, यह जरूरी है कि वह जो नियम, जो रास्ता अपने लिए चुने उसका अनुसरण करे।

यह आचार-नीति ऊपरसे नीचेकी ओर आनेवाला एक निषेध परम्परा-का विधान करती है। जिस आदमीको नैष्ठिक ब्रह्मचर्यमें पक्की निष्ठा है और जो ऊंचे शारीरिक-मानस लक्ष्योंके लिए बुद्धिपूर्वक संयमका पालन करता है, उसके लिए सब प्रकारका संभोग वर्जित है। जो आदमी विवाह-बंधनमें बंध चुका है उसके लिए पर-स्त्री या पर-पुरुषका संग निषिद्ध है। अविवाहित स्त्री-पुरुषके अनियमित या स्वच्छंद संभोगमें भी वेश्या-गमन या वेश्यावृत्ति जैसे पतनकारी संबंधका निषेध होगा, और प्राकृतिक रीतिसे कर्म करनेवालेको अप्राकृतिक बुराइयोंसे बचना चाहिए। अपनी काम-वासनाकी तृप्ति करनेवालेके लिए भी अति संभोग हर हालतमें दोष माना जायगा और कच्ची उम्रके युवक-युवतियोंको प्रौढ़ वयको पहुंचने तक संभोग-सुखकी चाह दबा रखनी होगी। यही काम-नीति है।

ऐसा आदमी तो शायद ही मिले जो इस सामान्य काम-नीतिको समझ न सकता हो और ऐसे भी बिरले ही होंगे जो दिमागपर जोर डालकर सोचें तो उसकी सचाईको अस्वीकार करें। हां, कुतर्कसे उसका विरोध करनेकी प्रवृत्ति अवश्य पाई जाती है। लोग यह मानते हैं कि चूंकि ब्रह्मचर्यका पालन कठिन है और बिरले ही उसे निभा सकते हैं इसलिए उसका उपदेश देना बेकार है। तर्ककी दृष्टिसे तो विवाहित स्त्री-पुरुषके पर-पुरुष या पर-स्त्री शरीर-संग न करने, पति-पत्नीमें भी विषय-भोगकी अति न होने या प्राकृतिक

रीतिसे ही काम-वासनाकी तृप्ति करनेके विषयमें भी यही बात कहीं जा सकती है। वे एक आदर्शको अस्वीकार करते हैं तो आदर्श-मात्रको कर सकते हैं और हमें गन्दी आदतों और कामुकताके गढ़ेमें गिरनेकी सलाह दे सकते हैं। बुद्धि-विवेक हमें एक ही राह बताता है—आदर्शरूपी ध्रुवतारेका अनुसरण। यह ध्रुवतारा हमें रास्तेके गढ़ोंसे बचाता और इस योग्य बनाता है कि हम एक नियमका सहारा ले उसके बलसे विरोधी नियमपर विजय प्राप्त कर लें। इस प्रकार इस नीति-नियमका सोच-समझकर और इच्छा-पूर्व अनुसरण करके मनुष्य जवानीकी अप्राकृतिक बुराइयोंसे स्वाभाविक संयोगकी स्थितिको पहुंच सकता है, भले ही वह अविवाहित, स्वच्छन्द हो। इस स्थितिसे और ऊंचा उठकर वह एकनिष्ठ दाम्पत्य-जीवनके बंधनमें बंधेगा और अपने तथा अपने साथीके हितके लिए अपनी भोगवासनापर उतना अंकुश रखेगा जितना रख सकता है। यही नीति उसे ब्रह्मचर्यसे होनेवाले उच्चतर लाभोंका अधिकारी बना सकती है, अति भोगकी अनेक बुराइयोंके गढ़ेमें गिरनेसे तो निश्चय ही बचा सकती है।

सामाजिक काम-नीति

समाज व्यक्तियोंके कार्य-कलापका विस्तार और उनका एक लड़ीमें गूंथा जाना । अतः सामाजिक काम-नीति भी वैयक्तिक काम-नीतिसे ही उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि समाजको वैयक्तिक सदाचारके नियमोंको कुछ बढ़ाना और कुछ मर्यादित करना पड़ता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण विवाहकी व्यवस्था है। विज्ञानके पंडितोंने विवाहके इतिहासपर बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे हैं और इस विषयके तथ्य तो इतने इकट्ठे कर दिये हैं कि उनका ढेर लग गया है। इसलिए आज जो सुधार सुझाये जा रहे हैं उनकी चर्चा करनेके लिए उक्त विद्वानोंकी रायाका निचोड़ दे देना भर काफी होगा।

प्राचीन कालमें मानव-वंशमें माताका पद पितासे बड़ा था। सन्तानोत्पादन-कार्यमें वही प्रकृतिका प्रधान कार परदाज थी और है। उसीको लेकर, उसीको केन्द्र बनाकर कुटुम्बकी उत्पत्ति हुई। फलतः एक जमानेमें

माताका राज विश्वकी व्यापक व्यवस्था थी। बहुपतित्व अर्थात् एक स्त्रीका अनेक पुरुषोंसे सम्बन्ध उस समय जायज माना जाता था। एशियाकी कुछ जंगली जातियोंमें अबभी इस प्रथाके अवशेष पाये जाते हैं। इस प्रथासे और अंशतः जातियों-कबीलोंके संघठनसे भी पतिके पदकी पैदाइश हुई। एक स्त्रीसे सम्बद्ध अनेक पुरुषोंमेंसे जो सबसे अधिक बलवान और संरक्षण समर्थ होता था उनका पद-अधिकार औरोंसे कुछ बड़ा होने लगा। पतिका अंग्रेजी पर्याय—'हस्बैंड' विवाह-प्रथाका इतिहास अपने भीतर लिये हुए है। वह मूलतः Hasboundi है जिसके मानी हैं घरमें रहनेवाला। उसपर घरमें रहना फर्ज होता था। औरोंपर नहीं होता था। धीरे-धीरे वह घरकी रखवाली करनेवाले घरका मालिक बन गया और पीछे कोई-कोई 'गृहपति' जातिका सरदार या राजा भी बन गया। माताके राज या स्त्रीराज्यमें जैसे बहुपतित्वकी प्रथा उपजी थी पिता या पुरुषके राजमें वैसे ही बहुपत्नीत्वका रिवाज पैदा हुआ और फैला।

अतः सामाजिक दृष्टिसे नहीं तो मानव-शास्त्रकी दृष्टिसे पुरुष स्वाभावतः अनेक पत्नियोंकी और स्त्री अनेक पतियोंकी कामना रखनेवाली है। पुरुष अपनी कामनाकी किरणें सब ओर छिटकाता और जो स्त्री तत्काल उसे सबसे अधिक आकृष्ट करती उसीपर उसे केन्द्रित करता है। स्त्री भी यही करती है। पर मनुष्यके प्रकृति-प्रेरित, उसकी मनोरचनासे उद्भूत अव्यवस्थित आवेगोंपर थोड़ा-बहुत अंकुश न रखा गया तो मनुष्य-समाज टिक नहीं सकता, चाहे वह आदिम हो या आधुनिक। मनुष्य से नीचके सभी प्राणियोंमें ऐसे आवेगोंकी अतिशयता होती है। समाजको इन आवेगोंके लिए विवाहके सिवा और कोई उपयुक्त अंकुश न मिला और अन्तमें एकनिष्ठ विवाह—एक स्त्री-पुरुषके साथ एक स्त्री-पुरुषके ब्याह या पति-पत्नी सम्बन्ध—को ही अपनाना पड़ा। इसका विकल्प एक ही हो सकता है—स्वच्छन्दाचार और अन्ततः वर्तमान रूपमें समाजका पूर्ण विनाश। दोनों जीवन-प्रणालियोंका संघर्ष हमारी आंखोंके सामने चल रहा है और हम उसे देख सकते हैं। वेश्या-वृत्ति, अनियमित और अवैध सम्बन्ध, व्यभिचार और तलाक रोज-ब-रोज हमारे सामने इस बातका सबूत पेश

कर रहे हैं कि एकनिष्ठ विवाह आदिम प्रकारके स्त्री-पुरुष सम्बन्धोंके ऊपर अपनी सत्ता अभी स्थापित नहीं कर सका है। कभी कर सकेगा ?

इस बीच हमें एक और उपायकी योग्यतापर विचार कर लेना होगा। वह है तो बहुत पुरानी चीज, पर पहले वह लुक-छिपकर अपना काम करती थी; इधर थोड़े दिनोंसे बिना घूंघट, बुरकेके सामने आने लगा है। उसका नाम है 'जनन-निरोध' (बर्थ-कंट्रोल); और अर्थ है ऐसी दवाओं और बाह्य साधनोंका व्यवहार जो गर्भ-स्थिति न होने दें। गर्भ-धारणमें स्त्रीपर तो बोझ पड़ता ही है, पुरुषको भी खासकर भले स्वभावके पुरुषको, उसके कारण काफी अरसे तक संयम रखना पड़ता है। जनन-निरोध या गर्भ-निरोध संयमको अनावश्यक बना देता और इसका सुभीता कर देता है कि जबतक वासना या शरीर ही शिथिल न हो जाय तबतक हम मनमाना संभोग-सुख भोगते रहें। इसका असर विवाह-सम्बन्धके बाहर भी पड़ता है। यह अनियमित, अवैध और अफलजनक संभोगका दरवाजा खोल देता है, जो आधुनिक उद्योग-धन्धों, समाज-शास्त्र और राजनीति सबकी दृष्टिसे खतरोंसे भरी हुई बात है। यहां इन बातोंकी विस्तारसे चर्चा नहीं की जा सकती। इतना ही कहना काफी है कि गर्भ-निरोधके साधनोंसे विवाहित-अविवाहित दोनों तरहके स्त्री-पुरुषके लिए अति संभोगका सुभीता हो जाता है। और ऊपर मैंने शरीर-शास्त्रकी जो दलीलें दी हैं वे सही हों तो इससे व्यक्ति और समाज दोनोंकी हानि होना अनिवार्य है।

उपसंहार

किसान खेतमें जो बीज बिखेरता है वे सभी उगते नहीं। वैसे ही यह निबंध भी कुछ ऐसे लोगोंके हाथमें पड़ेगा जो इसे घृणाकी दृष्टिसे देखेंगे। कुछ तो अयोग्यता या निरे आलस्यसे इसे समझेंगे ही नहीं, कुछके लिए इसमें प्रकट किये हुए विचार बिलकुल नये होंगे और उनके मानसमें वे विरोध या क्रोधकी भावना भी जगा सकते हैं। पर थोड़े-से-लोग ऐसे भी अवश्य

निकलेंगे जिन्हें वह सच्चा और कामका जान पड़े। मगर उनके मनमें भी शंका उठेगी। उनमें जो सबसे भोले होंगे वे कहेंगे—"आपकी दलीलोंके अनुसार तो संभोग कभी होना ही नहीं चाहिए। तब तो दुनियामें जीवधारी रह ही न जायंगे। इसलिए आपकी राय गलत होनी ही चाहिए।" मेरा जवाब यह है कि मेरे पास कोई ऐसा खतरनाक अताई नुस्खा नहीं है। जनन-विरोध जन्म रोकनेका सबसे प्रभावकर उपाय है और संयम या ब्रह्मचर्यकी तुलनामें बहुत जल्दी दुनियाको आदमियोंसे खाली कर देगा। मैं जो बात चाहता हूं वह तो बहुत सीधी है। अज्ञान और असंयत भोगके मुकाबलेमें दर्शन और विज्ञानकी कुछ सचाइयोंको खड़ा करके मैं अपने युगके स्त्री-पुरुष-सम्बन्धकी शुद्धिमें सहायता करना चाहता हूं।

: २ :

ब्रह्मचर्य—१

ब्रह्मचर्य–१

: १ :

ब्रह्मचर्य

हमारे व्रतोंमें तीसरा ब्रह्मचर्य-व्रत है। वास्तवमें देखनेपर तो दूसरे सभी व्रत एक सत्यके व्रतमेंसे ही उत्पन्न होते हैं और उसीके लिए उनका अस्तित्व है। जिस मनुष्यने सत्यको वरा है, उसीकी उपासना करता है, वह दूसरी किसी भी वस्तुकी आराधना करे तो व्यभिचारी बन जाता है। फिर विकारकी आराधनाकी तो बात ही कहां उठ सकती है? जिसकी कुल प्रवृत्तियां सत्यके दर्शनके लिए हैं, वह संतानोत्पत्तिके काममें या घर-गिरस्ती चलानेके झगड़ेमें पड़ ही कैसे सकता है? भोग-विलास द्वारा किसीको सत्य प्राप्त होनेकी आज तक हमारे सामने एक भी मिसाल नहीं है।

अथवा अहिंसाके पालनको लें तो उसका पूरा पालन ब्रह्मचर्यके विना असाध्य है। अहिंसा अर्थात् सर्वव्यापी प्रेम। जहां पुरुषने एक स्त्रीको या स्त्रीने एक पुरुषको अपना प्रेम सौंप दिया वहां उसके पास दूसरेके लिए क्या बच रहा? इसका अर्थ ही यह हुआ कि 'हम दो पहले और दूसरे सब बादको।' पतिव्रता स्त्री पुरुषके लिए और पत्नीव्रती पुरुष स्त्रीके लिए सर्वस्व होमनेको तैयार होगा। अतः यह स्पष्ट है कि उससे सर्वव्यापी प्रेमका पालन नहीं हो सकता। वह सारी सृष्टिको अपना कुटुम्ब नहीं बना सकता, क्योंकि उसके पास अपना माना हुआ एक कुटुम्ब मौजूद है या तैयार हो रहा है। उसकी जितनी वृद्धि, उतना ही सर्वव्यापी प्रेममें विक्षेप होता है। इसके उदाहरण हम सारे संसारमें देख रहे हैं। इसलिए-अहिंसा

व्रतका पालन करनेवालेसे विवाह नहीं बन सकता; विवाहके बाहरके विकारकी तो बात ही क्या ?

फिर जो विवाह कर चुके हैं उनकी क्या गति होगी ? उन्हें सत्यकी प्राप्ति कभी न होगी ? वे कभी सर्वार्पण नहीं कर सकते ? हमने तो इसका रास्ता निकाल ही रखा है—विवाहितका अविवाहितकी भांति हो जाना। इस दिशामें इससे बढ़कर मैंने दूसरी बात नहीं देखी। इस स्थितिका मजा जिसने चखा है वह गवाही दे सकता है। आज तो इस प्रयोगकी सफलता सिद्ध हुई कही जा सकती है। विवाहित स्त्री-पुरुष एक-दूसरेको भाई-बहन आनने लग जायं तो सारे झगड़ोंसे वे मुक्त हो जाते हैं। संसार-भरकी सारी स्त्रियां बहनें हैं, माताएं हैं, लड़कियां हैं—यह विचार ही मनुष्यको एकदम ऊंचे ले जानेवला, बंधनमेंसे मुक्ति देनेवाला हो जाता है। इसमें पति-पत्नी कुछ खोते नहीं, वरन् अपनी पूंजीमें वृद्धि करते हैं, कुटुम्ब बढ़ाते हैं; विकार-रूपी मैल निकलनेसे प्रेम भी बढ़ता है। विकारोंके जानेसे एक-दूसरेकी सेवा अधिक अच्छी हो सकती है, एक-दूसरेके बीच कलहके अवसर कम होते हैं। जहां स्वार्थी एकांगी प्रेम है, वहां कलहके लिए ज्यादा गुंजाइश रहती है।

इस प्रधान विचारके समझ लेने और उसके हृदयमें बैठ जानेके बाद ब्रह्मचर्यसे होनेवाले शारीरिक लाभ, वीर्य-लाभ आदि बहुत गौण हो जाते हैं। जान-बूझकर भोग-विलासके लिए वीर्य खोना और शरीरको निचोड़ना कितनी बड़ी मूर्खता है ? वीर्यका उपयोग दोनोंकी शारीरिक और मानसिक शक्तिको बढ़ानेके लिए है। उसका विषय-भोगमें उपयोग करना यह उसका अति दुरुपयोग है। इस दुरुपयोगके कारण वह बहुतेरे रोगोंकी जड़ बन जाता है।

ऐसे ब्रह्मचर्यका पालन मन, वचन और कर्म तीनोंसे होना चाहिए। व्रत-मात्रके विषयमें यही बात समझनी चाहिए। हम गीतामें पढ़ते हैं कि जो शरीरको तो वशमें रखता हुआ जान पड़ता है; पर मनसे विकारका पोषण किया करता है, वह मूढ़ मिथ्याचारी है। सबका यह अनुभव है कि मनको विकारी रहने देकर शरीरको दबानेकी कोशिश करनेमें हानि ही है। जहां

मन होता है वहां शरीर अंतमें घिसटाये बिना नहीं रहता। यहां एक भेद समझ लेना जरूरी है। मनको विकारवश होने देना एक बात है; मनका अपने-आप, अनिच्छासे, बलात्कारसे विकारको प्राप्त हो जाना या होते रहना दूसरी बात है। इस विकारमें यदि हम सहायक न बनें तो अंतमें जीत ही है। हमारा प्रतिपलका यह अनुभव है कि शरीर काबूमें रहता है, पर मन नहीं रहता। इसलिए शरीरको तो तुरन्त ही वशमें करके मनको वशमें करनेका हम सतत प्रयत्न करते रहें तो हमने अपना कर्तव्य पालनकर लिया। हमारे, मनके अधीन होते ही, शरीर और मनमें विरोध खड़ा हो जाता है, मिथ्याचारका आरम्भ हो जाता है। पर जहां तक मनोविकारको दबाते ही रहते हैं वहां तक दोनों साथ जानेवाले हैं, ऐसा कह सकते हैं।

इस ब्रह्मचर्यका पालन बहुत कठिन, करीब-करीब असम्भव माना गया है। इसके कारणकी खोज करनेसे मालूम होता है कि ब्रह्मचर्यको संकुचित अर्थमें लिया गया है। जननेंद्रिय-विकारके निरोध-भरको ही ब्रह्मचर्यका पालन मान लिया गया है। मेरे खयालमें यह व्याख्या अधूरी और गलत है। विषय-मात्रका विरोध ही ब्रह्मचर्य है। निस्सदेह, जो अन्य इंद्रियोंको जहां-तहां भटकने देकर एक ही इंद्रियको रोकनेका प्रयत्न करता है, वह निष्फल प्रयत्न करता है। कानसे विकारी बातें सुनना, आंखसे विकार उत्पन्न करने-वाली वस्तु देखना, जीभसे विकारोत्तेजक वस्तुका स्वाद लेना, हाथसे विकारोंको उभारनेवाली चीजको छूना, और फिरभी जननेंद्रियको रोकनेका इरादा रखना तो आगमें हाथ डालकर जलनेसे बचनेके प्रयत्नके समान है। इसलिए जननेंद्रियको रोकनेका निश्चय करनेवालेके लिए इंद्रिय-मात्रका, उनके विकारोंसे रोकनेका निश्चय होना ही चाहिए। यह मुझे हमेशा लगता रहा है कि ब्रह्मचर्यका संकुचित व्याख्यासे नुकसान हुआ है। मेरा तो यह निश्चित मत और अनुभव है कि यदि हम सब इंद्रियोंको एकसाथ वशमें करनेका अभ्यास डालें तो जननेंद्रियको वशमें रखनेका प्रयत्न तुरन्त सफल हो सकता है। इसमें मुख्य स्वादेंद्रिय है, और इसलिए व्रतोंमें उसके संयमको हमने पृथक् स्थान दिया है। उसपर अगली बार विचार करेंगे।

ब्रह्मचर्यके मूल अर्थको सब याद रखें। ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्मकी, सत्य-

की—शोधमें चर्या, अर्थात् तत्संबंधी आचार। इस मूल अर्थमेंसे सर्वेन्द्रिय-संयम-रूपी विशेष अर्थ निकलता है। केवल जननेंद्रिय-संयम-रूपी अधूरे अर्थको तो हमें भूल जाना चाहिए।

: २ :

ब्रह्मचर्यकी व्याख्या

(मादरण मुकामपर एक अभिनन्दन-पत्रका उत्तर देते हुए लोगोंके अनुरोधसे गांधीजीने ब्रह्मचर्यपर लम्बा प्रवचन किया । उसका सार यहां दिया जाता है ।—सं०)

"आप चाहते हैं ब्रह्मचर्यके विषयपर कुछ कहूं । कितने ही विषय ऐसे हैं जिनपर मैं 'नवजीवन' में प्रसंगोपान्त ही लिखता हूं । और उनपर व्याख्यान तो शायद ही देता हूं; क्योंकि यह विषय ही ऐसा है कि कहकर नहीं समझाया जा सकता । आप तो मामूली ब्रह्मचर्यके विषयमें सुनना चाहते हैं । 'समस्त इंद्रियोंका संयम,' विस्तृत व्याख्या जिस ब्रह्मचर्यकी है, उसके विषयमें नहीं । इस साधारण ब्रह्मचर्यको भी शास्त्रकारोंने बड़ा कठिन बताया है । यह बात ९९ फीसदी सच है, १ फीसदी इसमें कमी है । इसका पालन इसलिए कठिन मालूम होता है कि हम, दूसरी इंद्रियोंको संयममें नहीं रखते । उनमें मुख्य है रसनेन्द्रिय । जो अपनी जिह्वाको कब्जेमें रख सकता है उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है । प्राणि-शास्त्रके ज्ञाताओंका कथन है कि पशु जिस दर्जेतक ब्रह्मचर्यका पालन करता है उस दर्जेतक मनुष्य नहीं करता । यह सच है । इसका कारण देखनेपर मालूम होगा कि पशु अपनी जिह्वेन्द्रियपर पूरा-पूरा निग्रह रखते हैं—इच्छापूर्वक नहीं, स्वभावतः ही । केवल चारेपर अपनी गुजर करते हैं—सो भी महज पेट भरने लायक ही खाते हैं । वे जिन्दगीके लिए खाते हैं, खानेके लिए जीते नहीं हैं; पर हम तो इसके बिलकुल विपरीत हैं । मां बच्चेको तरह-तरहके सुस्वादु भोजन कराती है । वह मानती है कि बालक के साथ प्रेम दिखानेका यही सर्वोत्तम रास्ता है । ऐसा करते हुए हम उन

चीजोंमें स्वाद डालते नहीं; बल्कि ले लेते हैं। स्वाद तो रहता है भूखमें। भूखके वक्त सूखी रोटी भी मीठी लगती है और बिना भूखे आदमी को लड्डू भी फीके और अस्वादु मालूम होंगे; पर हम तो अनेक चीजोंको खा-खाकर पेटको ठसाठस भरते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य पालन नहीं हो पाता। जो आंखें ईश्वरने हमें देखनेके लिए दी हैं उनको हम मलिन करते हैं और देखनेकी वस्तुओंको देखना नहीं सीखते। 'माताको क्यों गायत्री न पढ़ना चाहिए औय बालकोंक। वह क्यों गायत्री सिखावे ?' इसकी छान-बीन करनेकी अपेक्षा उसके तत्त्व—सूर्योपासनाको समझकर सूर्योपासना करावे तो क्या अच्छा हो। सूर्यकी उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी दोनों कर सकते हैं। यह तो मैंने स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया है। इस उपासनाके मानी क्या हैं ? अपना सिर ऊंचा रखकर, सूर्य-नारायणके दर्शन करके, आंखकी शुद्धि करना। गायत्रीके रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्होंने कहा कि सूर्योदयमें जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है वह और कहीं नहीं दिखाई दे सकती। ईश्वरके जैसा सुन्दर सूत्रधार अन्यत्र नहीं मिल सकता और आकाशसे बढ़कर भव्य रंगभूमि कहीं नहीं मिल सकती। पर कौन माता आज बालककी आंखें धोकर उसे आकाश-दर्शन कराती हैं ? बल्कि माताके भावोंमें तो अनेक प्रपंच रहते हैं। बड़े-बड़े घरोंमें जो शिक्षा मिलती है उसके फलस्वरूप तो लड़का शायद बड़ा अधिकारी होगा; पर इस बातका कौन विचार करता है कि घरमें जाने-बेजाने जो शिक्षा बच्चोंको मिलती है उससे कितनी बातें वह ग्रहण कर लेता है ! माँ-बाप हमारे शरीरको ढकते हैं, सजाते हैं; पर इससे कहीं शोभा ब्रढ़ सकती है ? कपड़े बदनको ढकनेके लिए हैं, सर्दी-गर्मीसे रक्षा करनेके लिए हैं, सजानेके लिए नहीं। जाड़ेसे ठिठुरते हुए लड़केको जब हम अंगीठीके पास धकेलेंगे, अथवा मुहल्लेमें खेलने-कूदने भेज देंगे, अथवा खेतमें कामपर छोड़ देंगे, तभी उसकाश री वज्रकी तरह होगा। जिसने ब्रह्मचर्यका पालन किया है उसका शरीर वज्रकी तरह जरूर होना चाहिए। हम तो बच्चोंके शरीरका नाश कर डालते हैं। हम उसे जो घरमें रखकर गरमाना चाहते हैं उससे तो उसकी चमड़ीमें इस तरहकी

गरमी आती है जिसे हम छाजनकी उपमा दे सकते हैं। हमने शरीरको दुलराकर उसे बिगाड़ डाला है।

यह तो हुई कपड़ेकी बात। फिर घरमें तरह-तरहकी बातें करके हम उनके मनपर बुरा प्रभाव डालते हैं। उसकी शादीकी बातें किया करते हैं, और इसी किस्मकी चीजें और दृश्य भी उसे दिखाये जाते हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम महज़ जंगली ही क्यों न हो गये? मर्यादा तोड़नेके अनेक साधनोंके होते हुए भी मर्यादाकी रक्षा हो सकती है। ईश्वरने मनुष्यकी रचना इस तरहसे की है कि पतनके अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है। ऐसी उसकी लाला गहन है। यदि ब्रह्मचर्यके रास्तेसे ये विघ्न हम दूर कर दें तो उसका पालन बहुत आसान हो जाय।

ऐसी हालत होते हुए भी हम दुनियाके साथ शारीरिक मुकाबला करना चाहते हैं। उसके दो रास्ते हैं। एक आसुरी और दूसरा दैवी—आसुरी मार्ग है—शरीर-बल प्राप्त करनेके लिए हर किस्मके उपायोंसे काम लेना, हर तरहकी चीजें खाना, शारीरिक मुकाबले करना, गो-मांस खाना इत्यादि। मेरे लड़कपनमें मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता था कि मांसाहार हमें अवश्य करना चाहिए, नहीं तो अंग्रेजोंकी तरह हट्टे-कट्टे हम न हो सकेंगे। जापानको भी जब दूसरे देशके साथ मुकाबला करनेका समय आया तब वहां गो-मांस-भक्षणको स्थान मिला। सो यदि आसुरी प्रकारसे शरीरको तैयार करनेकी इच्छा हो तो इन चीजोंका सेवन करना होगा।

परन्तु यदि दैवी साधनसे शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एक उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है तब मुझे अपने-पर दया आती है। इस अभिनन्दन-पत्रमें मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है। सो मुझे कहना चाहिए कि जिन्होंने इस अभिनन्दन-पत्रका मजमून तैयार किया है उन्हें पता नहीं है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी किसका नाम है? और जिसके बाल-बच्चे हुए हैं उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारीको न तो कभी बुखार आता है, न कभी सिर दर्द करता है, न कभी खांसी होती है और न कभी अपेंडिसाइटिस होता है। डॉक्टर लोग

कहते हैं कि नारंगीका बीज आंतमें रह जानेसे भी अपेंडिसाइटिस होता है; परन्तु जिसका शरीर स्वच्छ और निरोगी होता है उसमें ये बीज टिक ही नहीं सकते। जब आंतें शिथिल पड़ जाती हैं तब वे ऐसी चीज़ोंको अपने-आप बाहर नहीं निकाल सकतीं। मेरी भी आंतें शिथिल हो गई होंगी। इसीसे मैं ऐसी कोई चीज़ हज़म न कर सका हूंगा। बच्चे ऐसी अनेक चीज़ें खा जाते हैं। माता इसका कहां ध्यान रख सकती है ? पर उसकी आंतमें इतनी शक्ति स्वाभाविक तौरपर ही होती है । इसलिए मैं चाहता हूं कि मुझ-पर नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके पालनका आरोपण करके कोई मिथ्याचारी न हों। नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका तेज तो मुझसे अनेक गुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। हां, यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूं। मैंने तो आपके सामने अपने अनुभवकी कुछ बूंदें पेश की हैं जो ब्रह्मचर्यकी सीमा बताते हैं। ब्रह्मचारी रहनेका अर्थ यह नहीं कि मैं स्त्रीको स्पर्श न करूं, अपनी बहनका स्पर्श न करूं; पर ब्रह्मचारी होनेका अर्थ यह है कि स्त्रीका स्पर्श करनेसे किसी प्रकारका विकार न उत्पन्न हो, जिस तरह कि कागजको स्पर्श करनेसे नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए, उसका स्पर्श करते हुए ब्रह्मचर्यके कारण मुझे हिचकन पड़े तो वह ब्रह्मचर्य कौड़ीका है। जिस निर्विकार दशाका अनुभव जब हम किसी बड़ी सुन्दरी युवतीका स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हों कि बालक ऐसे ब्रह्मचर्यको प्राप्त करें तो इसका अभ्यास-क्रम आप नहीं बना सकते, मुझ जैसा अधूरा भी क्यों न हो; पर ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम संन्यासाश्रमसे भी बढ़कर है; पर उसे हमने गिरा दिया। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा है, वानप्रस्थाश्रम भी बिगड़ा है और संन्यासका तो नाम भी नहीं रह गया है। ऐसी हमारी असहाय अवस्था भी हो गई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है कि उसका अनुकरण करके तो आप पांच सौ वर्षों तक भी पठानोंका मुकाबला न कर सकेंगे। दैवी-मार्गका अनुकरण यदि आज हो तो आज ही पठानोंका मुकाबला हो सकता

है; क्योंकि दैवी साधनसे आवश्यक मानसिक परिवर्तन एक क्षणमें हो सकता है; पर शारीरिक परिवर्तन करते हुए युग बीत जाते हैं। इस दैवी मार्गका अनुसरण तभी हमसे होगा जब हमारे पल्ले पूर्व-जन्मका पुण्य होगा, और माता-पिता हमारे लिए उचित सामग्री पैदा करेंगे।

हिन्दी नवजीवन,
२६ जनवरी, १९२५

: ३ :

एक अस्वाभाविक पिता

एक नवयुवकने मुझे एक पत्र भेजा है जिसका सार ही यहां दिया जा सकता है। वह निम्न प्रकार है :

'मैं एक विवाहित पुरुष हूं। मैं विदेश गया हुआ था। मेरा एक मित्र था, जिसपर मुझे और मेरे मां-बापको पूरा विश्वास था। मेरी अनुपस्थितिमें उसने मेरी पत्नीको फुसला लिया, जिससे अब वह गर्भवती भी हो गई है। अब मेरे पिता इस बातपर जोर देते हैं कि मेरी पत्नी गर्भको गिरा दे; नहीं तो वह कहते हैं, खानदानकी बदनामी होगी। मुझे ऐसा लगता है कि यह तो ठीक नहीं होगा। बेचारी स्त्री पश्चात्तापके मारे मरी जा रही है। न तो उसे खानेकी सुध है, न पीनेकी। जब देखो तब रोती ही रहती है। क्या आप कृपा करके बतलायेंगे कि इस हालतमें मेरा क्या फर्ज है !'

यह पत्र मैंने बड़ी हिचकिचाहटके साथ प्रकाशित किया है। जैसा कि हरेक जानता है, समाज में ऐसी घटनाएं कभी-कदास ही नहीं होतीं। इसलिए संयमके साथ सार्वजनिक-रूपसे इस प्रश्नकी चर्चा करना मुझे असंगत नहीं मालूम पड़ता।

मुझे तो दिनके प्रकाशकी तरह यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि गर्भ गिराना जुर्म होगा। इस बेचारी स्त्रीने जो असावधानी की है, वैसी असावधानी तो अनगिनत पति करते हैं; लेकिन उनको कभी कोई कुछ नहीं कहता। समाज उन्हें माफ ही नहीं करता; बल्कि उनकी निन्दा भी नहीं करता। स्त्री तो अपनी शर्म को उस तरह छिपा भी नहीं सकती, जिस तरह कि पुरुष अपने आपको सफलताके साथ छिपा सकता है।

यह स्त्री तो दयाकी पात्र है। पतिका यह पवित्र कर्तव्य होगा कि वह अपने पिताकी सलाहको न माने और बच्चेकी परवरिश अपने भरसक

पूरे लाड़-प्यारसे करे। वह अपनी पत्नीके साथ रहना जारी रखे या नहीं, यह एक टेढ़ा सवाल है। परिस्थितियां ऐसी भी हो सकती हैं जिनके कारण उसे उससे अलग होना पड़े; लेकिन उस हालतमें वह इस बातके लिए बाध्य होगा कि उसकी परवरिश तथा शिक्षाकी व्यवस्था करे और शुद्ध मनसे हो तो उसे ग्रहण करनेमें भी मुझे कोई गलती नहीं मालूम पड़ती। यही नहीं; बल्कि मैं तो ऐसी स्थितिकी भी कल्पना कर सकता हूं जब पत्नीके अपनी गलतीके लिए पूरी तरह पश्चात्ताप करके उससे मुक्त हो जानेपर पतिका यह पुनीत कर्त्तव्य होगा कि वह उसको फिरसे ग्रहण कर ले।

यंग इंडिया,

३ जनवरी, १९२९,

: ४ :

विद्यार्थियों की दशा

एक बहन, जिन्हें अपनी जिम्मेदारीका पूरा खयाल है, लिखती हैं :

"जबतक हमारे बच्चे वीर्यकी रक्षा करना नहीं सीखते, तबतक हिन्दुस्तानको जैसे आदमियोंकी जरूरत है, वैसे कभी नहीं मिल सकते। हिन्दुस्तानमें कोई १६ वर्षोंतक, लड़कोंके स्कूलोंका भार मुझपर रहा है। यह देखकर रुलाई आती है कि हमारे बहुतसे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई लड़के स्कूलकी पढ़ाई शुरू करते हैं जोश, ताकत और उम्मीदोंसे भरकर; लेकिन खत्म करते हैं शरीरसे निकम्मे बनकर। गिनकर सैकड़ों बार मैंने देखा है कि इसके कारणका पता ठेठ वीर्य-नाश, अप्राकृतिक कर्म या बाल-विवाहमें ही मिलता है। अभी आज मेरे पास ४२ लड़कोंके नाम हैं। ये अप्राकृतिक कर्मके दोषी हैं और इनमेंसे एक भी १३ सालसे अधिक का नहीं है। शिक्षक और माता-पिता ऐसी हालतका होना गलत मानेंगे; लेकिन अगर सही तरीकोंसे काम लिया जाय तो व्याधिका पता तुरन्त ही लग जायगा और करीब-करीब हमेशा ही लड़के अपना गुनाह कबूल कर लेंगे। इनमेंसे अधिक लडके कहते हैं कि वह ऐब उन्होंने स्याने आदमियों, कभी-कभी अपने सम्बन्धियोंसे ही सीखा है।"

यह कोई खयाली तसवीर नहीं है। यह वह सचाई है, जिसे जानने वाले स्कूलोंके कितने-एक मास्टर दबा जाते हैं। मैं इसे पहलेसे जानता था। आज कोई आठ साल हुए, दिल्लीके किसी स्कूलमास्टरने मेरा ध्यान इस ओर दिलाया था। इसके इलाजके बारेमें अबतक खानगीमें ही मैं बातें करता पाया हूं और चुप रहा हूं। यह दोष सिर्फ हिन्दुस्तान-भर में ही परिमित नहीं है; मगर बाल-विवाहके पापके कारण हमपर इसका और भी अधिक मारक प्रभाव पड़ता है। इस बहुत ही नाजुक और मुश्किल

सवालकी आम चर्चा करना जरूरी हो गया है; क्योंकि अबसे कुछ साल पहले जिस स्वच्छन्दतासे स्त्री-पुरुषके सम्बन्धकी बातोंपर विचार करना गैर मुमकिन था, आज उसके साथ हम प्रतिष्ठित समाचार-पत्रोंमें भी इस-पर बहस होते देखते हैं।

संभोगको देह और दिमागकी तन्दुरुस्तीके लिए फायदेमन्द, नैतिक, जरूरी और स्वाभाविक समझनेकी प्रथाने इस पापकी वृद्धि की है। हमारे सुशिक्षित पुरुषोंके गर्भ-निरोधक साधनोंके स्वच्छन्द व्यवहारके समर्थनने इस काम-वासनाके कीड़ोंकी वृद्धिके लिए समुचित वातावरण पैदा कर दिया है। कमसिन लड़कोंके नाजुक और संग्राहक दिमाग ऐसे नतीजे बहुत जल्द निकाल लेते हैं कि उनकी अधार्मिक इच्छाएं अच्छी और उचित हैं। इस मारक पापके प्रति माता-पिता और शिक्षक, बहुत ही बुरी; बल्कि पापके बराबर, उदासीनता और सहनशीलता दिखलाते हैं। मेरी समझमें, सामाजिक वातावरणको पूरा-पूरा शुद्ध बनाये बिना इस गुनाह-को और कुछ नहीं रोक सकता, विषय-भोगके ख़यालोंसे भरे हुए वाता-वरणका अज्ञात और सूक्ष्म प्रभाव देशके विद्यार्थियोंके मनपर बिना पड़े रह ही नहीं सकता। नागरिक जीवनकी परिस्थिति, साहित्य, नाटक, सिनेमा, घरकी रचना, कितने एक सामाजिक रिवाज, सबका एक ही असर होता है, वह है काम-वासनाकी वृद्धि। छोटे लड़कोंके लिए, जिन्हें अपनी इस पाशविक प्रवृत्तिका पता लग गया है, इसके जोरको रोकना ग़ैर-मुमकिन है। ऊपरी इलाजोंसे काम नहीं चलनेका। यदि नई पीढ़ीके प्रति वे अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहते हैं तो बड़ोंको पहले अपनेसे ही यह सुधार शुरू करना होगा।

हरिजन सेवक,
३ अप्रैल, १९३३

: ५ :

बढ़ता हुआ दुराचार

सनातन धर्म कालेज, लाहौरके प्रिंसिपल लिखते हैं :

"इसके साथ मैं कटिंग और विज्ञप्तियां वगैरह भेज रहा हूं, उन्हें देखनेकी मैं आपसे प्रार्थना करता हूं। इन कागजोंसे ही आपको सारी बात-का पता चल जायगा। यहां पंजाबमें 'युवक हितकारी संघ' बहुत उपयोगी काम कर रहा है। विद्वत्-समाज एवं अधिकारी वर्गका ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ है, और बालकोंके सुसंस्कृत माता-पिताओंकी भी दिल-चस्पी संघने प्राप्त की है। बिहारके पण्डित सीतारामदासजी इस आन्दोलनके प्रणेता हैं, और इस आन्दोलनके आश्रयदाताओंमें यहांके अनेक प्रतिष्ठित सज्जनोंके नाम गिनाये जा सकते हैं।

"इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कोमल वयके बालकोंको फंसानेका यह दुराचार भारतके दूसरे भागोंकी अपेक्षा इधर पंजाब और उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्तमें ज्यादा है।

"क्या आप कृपा कर 'हरिजन' में अथवा किसी दूसरे अखबारमें लेख या पत्र लिखकर इस बुराईकी तरफ देशका ध्यान आकर्षित करेंगे ?"

इस अत्यन्त नाजुक प्रश्नके सम्बन्धमें बहुत दिन हुए कि युवकसंघके मन्त्रीने मुझे लिखा था। उनका पत्र आनेपर मैंने डॉ० गोपीचन्दके साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया, और उनसे यह मालूम हुआ कि संघके मन्त्रीने जो बातें अपने पत्रमें लिखी हैं, वे सब सच्ची हैं; लेकिन मुझे यह स्पष्ट नहीं सूझ रहा था कि इस प्रश्नकी क्या 'हरिजन' में या किसी दूसरे पत्रमें चर्चा करूँ। इस दुराचारका मुझे पता था; मगर मुझे इस बातका पता नहीं था कि अखबारोंमें इसकी चर्चा करनेसे कोई लाभ हो सकेगा या नहीं।

यह विश्वास अब भी नहीं है। किन्तु कालेजके प्रिंसिपल साहबने जो प्रार्थना की है उसकी मैं अवहेलना नहीं करना चाहता।

यह दुराचार नया नहीं है। यह बहुत दूर-दूरतक फैला हुआ है; चूंकि उसे गुप्त रखा जाता है इसलिए वह आसानीसे पकड़में नहीं आ सकता। जहां विलासपूर्ण जीवन होगा वहीं यह दुराचार होगा। प्रिंसिपल साहबके बताये हुए किस्सेसे तो यह प्रकट होता है कि अध्यापकही अपने विद्यार्थियोंको भ्रष्ट करने के दोषी हैं। बाड़ी जब खुद ही खेतको चर जाय तो फिर किससे रखवारीकी आशा करे? बाइबिलमें कहा है—"नौन जब खुद अलौना हो जाय तब उसे कौन चीज नमकीन बना सकती है?"

यह प्रश्न ऐसा है कि इसे न तो कोई जांच-कमेटी ही हल कर सकती है, न सरकार ही। यह तो एक नैतिक सुधारका काम है। माता-पिताओंके दिल में उनके उत्तरदायित्वका भाव पैदा करना चाहिए। विद्यार्थियोंको शुद्ध स्वच्छ रहन-सहनके निकट संसर्गमें लाना चाहिए। सदाचार और निर्विकार जीवन ही सच्ची शिक्षाका आधार-स्तम्भ है, इस विचारका गम्भीरताके साथ प्रचार करना चाहिए। शिक्षण-संस्थाओंके ट्रस्टियोंको अध्यापकोंके चुनावमें बहुत ही खबरदारी रखनी चाहिए और अध्यापकोंको चुनने के बाद भी यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका आचरण ठीक है या नहीं? ये तो मैंने थोड़े से उपाय बतलाये हैं। इन उपायोंके सहारे यह भयंकर दुराचार निर्मूल न हो तो कम-से-कम काबूमें तो आ ही सकता है।

हरिजन सेवक,

३ मई, १९३५

: ६ :

नम्रताकी आवश्यकता

बंगालमें कार्यकर्त्ताओंसे बातचीत करते हुए एक नवयुवकसे मेरा साबका पड़ा, जिसने कहा लोग मुझे इसलिए भी मानें कि मैं ब्रह्मचारी हूं। उसने यह बात इस तरह कही और ऐसे यकीनके साथ कही कि मैं देखता रह गया। मैंने मनमें कहा कि यह उन विषयोंकी बातें करता है जिनका ज्ञान इसे बहुत थोड़ा है। उसके साथियोंने उसकी बातका खण्डन किया। और जब मैंने उससे जिरह करनी शुरू की तब तो खुद उसने भी कबूल किया कि हां, मेरा दावा नहीं टिक सकता। जो शख्स शारीरिक पाप चाहे न करता हो; पर मानसिक पाप ही करता हो, वह ब्रह्मचारी नहीं। जो व्यक्ति परम रूपवती रमणीको देखकर अविचल नहीं रह सकता वह ब्रह्मचारी नहीं। जो केवल आवश्यकताके वशीभूत होकर अपने शरीरको वशमें रखता है, वह करता तो अच्छी बात है; पर वह ब्रह्मचारी नहीं। हमें अनुचित अप्रासंगिक प्रयोग करके पवित्र शब्दोंका मान घटाना न चाहिए। वास्तविक ब्रह्मचर्यका फल तो अद्‌भुत होता है और वह तो पहचाना भी जा सकता है। इस गुणका पालन करना कठिन है। प्रयत्न तो बहुतेरे लोग करते हैं; पर सफल विरले ही होते हैं। जो लोग गेरुए कपड़े पहनकर संन्यासियोंके वेशमें देशमें घूमते-फिरते हैं, वे अक्सर बाजारके मामूली आदमीसे ज्यादा ब्रह्मचारी नहीं होते। फर्क इतना ही है कि मामूली आदमी अक्सर उसकी डींग नहीं हांकता और इसलिए बेहतर होता है। वह इस बातपर सन्तुष्ट रहता है कि परमात्मा मेरी आजमाइशको, मेरे प्रलोभनोंको तथा मेरे विजयोत्सव और भगीरथ प्रयत्नके होते हुए भी, हो जानेवाले पतनको जानता है। यदि दुनिया उसके पतनको देखे और उससे उसे तोले तो भी वह सन्तुष्ट रहता

है। अपनी सफलताओंको वह कंजूसके धनकी तरह छिपाकर रखता है। वह इतना विनयी होता है कि उसे प्रगट नहीं करता। ऐसा मनुष्य उद्धारकी आशा रख सकता है; परन्तु वह आधा संन्यासी, जो कि संयमका ककहरा भी नहीं जानता, यह आशा नहीं रख सकता। वे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता जो कि संन्यासीका वेष नहीं बनाते; पर जो अपने त्याग और ब्रह्मचर्यका ढिंढोरा पीटते फिरते हैं और दोनोंको सस्ता बताते हैं तथा अपनेको और अपने सेवा-कार्यको बदनाम करते हैं, उनसे खतरा समझिए।

जब कि मैंने अपने साबरमती वाले आश्रमके लिए नियम बनाए तो उन्हें मित्रोंके पास सलाह और समालोचनाके लिए भेजा। एक प्रति स्वर्गीय सर गुरुदास बनर्जीको भी भेजी थी। उस प्रतिकी पहुंच लिखते हुए उन्होंने सलाह दी कि नियमों में उल्लिखित व्रतोंमें नम्रताका भी एक व्रत होना चाहिए। अपने पत्रमें उन्होंने कहा था कि आजकलके नवयुवकोंमें नम्रताका अभाव पाया जाता है। मैंने उनसे कहा कि मैं आपकी सलाहके मूल्यको तो मानता हूं और नम्रताकी आवश्यकताको भी सोलहों-आना मानता हूं; पर एक व्रतमें उसको स्थान देना उसके गौरवको कम कर देना है। यह बात तो हमें गृहीत ही करके चलना चाहिए कि जो लोग अहिंसा, ब्रह्मचर्यका पालन करेंगे वे अवश्य ही नम्र रहेंगे। नम्र-हीन सत्य एक उद्धत हास्य-चित्र होगा। जो सत्य का पालन करना चाहता है वह जानता है कि वह कितनी कठिन बात है। दुनिया उसकी विजयपर तो तालियां बजायगी, पर वह उसके पतनका हाल बहुत कम जानती है। सत्य-परायण मनुष्य बड़ा आत्म-ताड़न करने वाला होता है। उसे नम्र बननेकी आवश्यकता है। जो शख्स सारे संसारके साथ, यहांतक कि उसके भी साथ जो उसे अपना शत्रु कहता हो, प्रेम करना चाहता है वह जानता है कि केवल अपने बलपर ऐसा करना किस तरह असम्भव हैं। जबतक वह अपनेको एक क्षुद्र रज-कण न समझने लगेगा तबतक वह अहिंसाके तत्त्वको नहीं ग्रहण कर सकता। जिस प्रकार उसके प्रेमकी मात्रा बढ़ती जाती है उसी प्रकार यदि उसकी नम्रताकी मात्रा न बढ़ी तो वह किसी कामका नहीं। जो मनुष्य अपनी आंखोंमें तेज लाना चाहता है,

जो स्त्री-मात्रको अपनी सगी माता या बहन मानता है उसे तो रज-कणसे भी क्षुद्र होना पड़ेगा। उसे एक खाईके किनारे समझिए। जरा ही मुंह इधर-उधर हुआ कि गिरा। वह अपने मनसे भी अपने गुणोंकी काना-फूसी करनेका साहस नहीं कर सकता; क्योंकि वह नहीं जानता कि इसी अगले क्षणमें क्या होनेवाला है ? उसके लिए 'अभिमान विनाशके पहले जाता है और मगरूरी पतनके पहले।' गीता में सच कहा है—

विषया विनवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज्यं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

और जबतक मनुष्यके मनमें अहंभाव मौजूद है तबतक उसे ईश्वरके दर्शन नहीं हो सकते। यदि वह ईश्वर में मिलना चाहता हो तो उसे शून्यवत् ही जानना चाहिए। इस संघर्ष-पूर्ण जगत्में कौन कहनेका साहस कर सकता है—"मैंने विजय प्राप्त की ?" हम नहीं, ईश्वर हमें विजय प्राप्त कराता है।

हमें इन गुणोंका मूल्य ऐसा कम न कर देना चाहिए जिससे कि हम सब उनका दावा न कर सकें। जो बात भौतिक विषयमें सत्य है वही आध्यात्मिक विषयमें भी सत्य है। यदि एक सांसारिक संग्राममें विजय पानेके लिए यूरोपने पिछले युद्धमें, जो कि स्वयं ही एक नाशवान् वस्तु है, कितने ही करोड़ लोगोंका बलिदान कर दिया; तब यदि आध्यात्मिक युद्धमें करोड़ों लोगोंको इसके प्रयत्नमें मिट जाना पड़े, जिससे कि संसारके सामने एक पूर्ण उदाहरण रह जाय तो क्या आश्चर्य है ? यह हमारे अधीन है कि हम असीम नम्रताके साथ इस बातका उद्योग करें।

इन उच्च गुणोंकी प्राप्ति ही उनके लिए परिश्रमका पुरस्कार है। जो उसपर व्यापार चलाता है वह अपनी आत्माका नाश करता है। सद्गुण कोई व्यापार करनेकी चीज नहीं है। मेरा सत्य, मेरी अहिंसा, मेरा ब्रह्मचर्य, ये मेरे और मेरे कर्त्तासे सम्बन्ध रखनेवाले विषय हैं। वे बिक्रीकी चीजें नहीं हैं। जो युवक उनकी तिजारत करनेका साहस करेगा

वह अपना ही नाश कर बैठेगा। संसारके पास कोई बाट ऐसा नहीं है, कोई साधन नहीं है, जिससे कि इन बातोंकी तोल की जा सके। छान-बीन और विश्लेषणकी वहां गुजर नहीं। इसलिए हम कार्यकर्त्ताओंको चाहिए कि हम उन्हें केवल अपने शुद्धीकरणके लिए प्राप्त करें। हम दुनियासे कह दें कि वह हमारे कार्योंसे हमारी पहचान करे। जो संस्था या आश्रम लोगोंसे सहायता पानेका दावा करता हो, उसका लक्ष्य भौतिक-सांसारिक होना चाहिए जैसे—कोई अस्पताल, कोई पाठशाला, कोई कताई और खादी-विभाग। सर्वसाधारणको इन कामोंकी योग्यता परखनेका अधिकार है और यदि वे उन्हें पसंद करें तो उनकी सहायता करें। शर्तें स्पष्ट हैं। व्यवस्थापकोंमें नेक-नीयती और योग्यता होनी चाहिए। वह प्रामाणिक मनुष्य जो शिक्षा-शास्त्रसे अपरिचित हो, शिक्षकके रूपमें लोगोंसे सहायता पानेका दावा नहीं कर सकता। सार्वजनिक संस्थाओंका हिसाब-किताव ठीक-ठीक रखा जाना चाहिए, जिससे कि लोग जब चाहें तब देख-भाल सकें। इन शर्तोंकी पूर्ति संचालकोंको करनी चाहिए। उनकी सच्चरित्रता लोगोंके आदर और आश्रयके लिए भाररूप न होनी चाहिए।

हरिजन सेवक,
२५ जून, १९३५

: ७ :

एक परित्याग

सन् १८९१ में विलायतसे लौटनेके बाद मैंने अपने परिवारके बच्चोंको क़रीब-क़रीब अपनी निगरानीमें ले लिया, और उनके—बालक-बालिकाओं-के—कंधोंपर हाथ रखकर उनके साथ घूमनेकी आदत डाल ली। वे मेरे भाइयोंके बच्चे थे। उनके बड़े हो जानेपर भी यह आदत जारी रही। ज्यों-ज्यों परिवार बढ़ता गया, त्यों-त्यों इस आदतकी मात्रा इतनी बढ़ी कि इसकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित होने लगा।

जहांतक मुझे याद है, मुझे कभी यह पता नहीं चला कि मैं इसमें कोई भूल कर रहा हूं। कुछ वर्ष हुए कि साबरमतीमें एक आश्रमवासीने मुझसे कहा था कि 'आप जब बड़ी-बड़ी उम्रकी लड़कियों और स्त्रियोंके कन्धोंपर हाथ रखकर चलते हैं, तब इससे लोक-स्वीकृत सभ्यताके विचारको चोट पहुंचती मालूम होती है।' किन्तु आश्रमवासियोंके साथ चर्चा होनेके बाद यह चीज जारी ही रही। अभी हालमें मेरे दो साथी जब वर्धा आये तब उन्होंने कहा कि 'आपकी यह आदत सम्भव है कि दूसरोंके लिए एक उदाहरण बन जाय, इसलिए आपको यह बन्द कर देनी चाहिए।' उनकी यह दलील मुझे जंची नहीं। तो भी उन मित्रोंकी चेतावनीकी मैं अवहेलना नहीं करना चाहता था। इसलिए मैंने पांच आश्रमवासियोंसे इसकी जांच करने और इसके सम्बन्धमें सलाह देनेके लिए कहा। इसपर विचार हो ही रहा था कि इस बीचमें एक निर्णया-त्मक घटना घटी। मुझे किसीने बताया कि यूनिवर्सिटीका एक तेज विद्यार्थी अकेलेमें एक लड़कीके साथ, जो उसके प्रभाव में थी, सभी तरहकी आज़ादीसे काम लेता था, और दलील यह दिया करता था कि वह उस लड़कीको सगी बहनकी तरह प्यार करता है, और इसीसे कुछ चेष्टाओंका

प्रदर्शन किये बिना उससे रहा नहीं जाता। कोई उसपर अपवित्रताका जरा भी आरोपण करता तो वह नाराज हो जाता। वह नवयुवक क्या-क्या करता था उन सब बातोंको अगर यहां लिखूं तो पाठक बिना किसी हिच-किचाहटके यह कह देंगे कि जिस आजादीसे वह काम लेता था, उसमें अवश्य ही गन्दी भावना थी। मैंने और दूसरे जिन लोगोंने इस सम्बन्धका पत्र-व्यवहार जब पढ़ा तब हम इस नतीजेपर पहुंचे कि या तो वह युवक विद्यार्थी परले सिरेका बना हुआ आदमी है, या फिर खुद अपने-आपको धोखा दे रहा है।

चाहे जो हो, इस अनुसन्धानने मुझे विचारमें डाल दिया। मुझे अपने उन दोनों साथियोंकी दी हुई चेतावनी याद आई और मैंने अपने दिलसे पूछा कि अगर मुझे यह मालूम हो कि वह नवयुवक अपने बचावमें मेरे व्यवहारकी दलील दे रहा है तो मुझे कैसा लगे? मैं यहां यह बतला दूं कि यह लड़की, जो उस नवयुवक की चेष्टाओंका शिकार बन गई है, यद्यपि वह उसे बिलकुल पवित्र और भाईके समान मानती है, तो भी वह उसकी उन चेष्टाओंको पसन्द नहीं करती; बल्कि यह आपत्ति भी करती है; पर उस बेचारीमें इतनी ताकत नहीं कि वह उस युवककी आपत्तिजनक चेष्टाओंको रोक सके। इस घटनाके कारण मेरे मनमें जो आत्म-परीक्षण मंथन कर रहा था, उसका यह परिणाम हुआ कि स पत्र-व्यवहारको पढ़नेके दो-तीन दिनके अन्दर मैंने अपनी उपर्युक्त प्रथाका परित्याग कर दिया और गत १२वीं तारीखको मैंने वर्धाके आश्रमवासियोंको अपना यह निश्चय सुना दिया। यह बात नहीं कि यह निर्णय करते समय मुझे कष्ट न हुआ हो। इस व्यवहारके बीच या इसके कारण कभी कोई अपवित्र विचार मेरे मनमें नहीं आया। मेरा आचरण कभी छिपा हुआ नहीं रहा है। मैं मानता हूं कि मेरा आचरण पिताके जैसा रहा है, और जिन अनेक लड़-कियोंका मैं मार्ग-दर्शक और अभिभावक रहा हूं, उन्होंने अपने मनकी बातें इतने विश्वासके साथ मेरे सामने रखीं कि जितने विश्वासके साथ वे शायद और किसीके सामने न रखतीं। यद्यपि ऐसे ब्रह्मचर्यमें मेरा विश्वास नहीं, जिसमें स्त्री-पुरुषका परस्पर स्पर्श बचानेके लिए एक रक्षाकी दीवार

बनानेकी जरूरत पड़े, और जो ब्रह्मचर्य जरा प्रलोभनके आगे भंग हो जाय तो भी जो स्वतन्त्रता मैंने ले रखी है उसके खतरेसे मैं अनजान नहीं हूं।

इसलिए जिस अनुसन्धानका मैंने ऊपर जिक्र किया है; उसने मुझे अपनी यह आदत छोड़ देनेके लिए सचेत कर दिया, फिर मेरा कन्धोंपर हाथ रखकर चलनेका व्यवहार चाहे जितना पवित्र रहा हो। मेरे हरेक आचरण-को हजारों स्त्री-पुरुष खूब सूक्ष्मतासे देखते हैं, क्योंकि मैं जो प्रयोग कर रहा हूं, उसमें सतत जागरूक रहनेकी आवश्यकता है। मुझे ऐसे काम नहीं करने चाहिएं जिनका बचाव मुझे दलीलोंके सहारे करना पड़े। मेरे उदाहरणका कभी यह अर्थ नहीं था कि उसका चाहे जो अनुसरण करने लग जाय। इस नवयुवकका मामला बतौर एक चेतावनीके मेरे सामने आया और उससे मैं आगाह हो गया। मैंने इस आशासे यह निश्चय किया है कि मेरा यह त्याग उन लोगोंको सही रास्ता सुझा देगा, जिन्होंने या तो मेरे उदाहरणसे प्रभावित होकर गलती की है या यों ही। निर्दोष युवावस्था एक अनमोल निधि है। क्षणिक उत्तेजनाके पीछे, जिसे गलतीसे 'आनन्द' कहते हैं, इस निधिको यों ही बरबाद नहीं कर देना चाहिए। और इस चित्रमें चित्रित लड़कीके समान कमजोर मनवाली लड़कियोंमें इतना बल तो होना ही चाहिए कि वे उन बदमाश या अपने कामोंसे अनजान नवयुवकों-की हरकतोंका—फिर वे उन्हें चाहे जितना निर्दोष जतलावें—साहसके साथ सामना कर सकें।

हरिजन सेवक,
२७ सितम्बर, १६३५

: ८ :

सुधारकोंका कर्त्तव्य

लाहौरके सनातन धर्म कालेजके प्रिंसिपलका निम्नलिखित पत्र मैं सहर्ष यहां प्रकाशित कर रहा हूं :

"बालकों पर जो अप्राकृतिक [illegible]

अधिक-से-अधिक जोर देकर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

आपको यह तो मालूम ही होगा कि इनमेंसे बहुत ही थोड़े मामलोंकी पुलिसमें रपट लिखाई जाती है, या उन्हें अदालतमें ले जाते हैं। इधर कुछ दिनोंसे पंजाबमें ऐसे केस इतने ज्यादा होने लगे हैं कि जिनकी कोई हद नहीं। इस पत्रके साथ आपके अवलोकनार्थ अखबारोंकी कुछ कतरनें भेज रहा हूं। अदालतमें कभी-कभी जो एकाध मामले आते हैं, उनमेंसे अत्यन्त बीभत्स किस्से ही अखबारोंमें प्रकाशित होते हैं। इन्हें पढ़कर आपको यह पूरी तरहसे मालूम हो जायगा कि हमारे कोमल वयस्क बालक-बालिकाओं पर इस भयका किस कदर आतक छाया हुआ है। कुछ महीने पहले लाहौरमें गुण्डोंने दिन-दहाड़े कुछ स्कूलोंके फाटकों परसे छोटे-छोटे बच्चोंको उठा ले जानेके साहसिक प्रयत्न किये थे। आज भी बालकोंके स्कूलमें जाते और आते वक्त खास इन्तजाम रखना पड़ता है। अदालतमें जो मामले गये हैं, उनकी रिपोर्टोंमें बालकोंके ऊपर किये गए जिन आक्रमणोंका वर्णन आया है वे अत्यन्त क्रूरता और साहसपूर्ण हैं। ऐसे राक्षसी काम विरले ही मनुष्य कर सकते हैं।

साधारण जनता या तो इस विषयमें उदासीन है, या वह इस तरहकी लाचारी महसूस करती है कि इन अपराधोंको संगठित होकर कुचल देनेकी लोगोंमें आत्म-श्रद्धा नहीं।

पंजाब-सरकारके जारी किये गए सरकुलरकी जो नकल इसके साथ मैं

भेज रहा हूं उससे आपको यह पता चल जायगा कि जनता और सरकारी अफसरोंकी उदासीनताके कारण सरकार भी इस विषयमें अपनेको लाचार-सा अनुभव करती है।

आपने 'यंग इंडिया' के ६ सितम्बर, १६२६ के तथा २७ जून, १६२६ के अंकमें यह ठीक ही कहा था कि इस प्रकारके अप्राकृतिक व्यभिचारके अपराधोंके सम्बन्धमें सार्वजनिक चर्चा करनेका समय आ गया है और इस विषयमें सारे देशमें लोकमत जागृत करनेके लिए अखबारों द्वारा इन जुर्मोंका प्रकाशन ही एक-मात्र प्रभावोत्पादक उपाय है।

मैं आपको अत्यन्त आदरके साथ यह बतलाना चाहता हूं कि आजकी मौजूदा स्थितिमें कम-से-कम इतना तो हमें करना ही चाहिए।। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि इस दुराचारके विरुद्ध अखबारों द्वारा जोरदार आन्दोलन चलानेके लिए आप अपनी प्रभावशाली आवाज उठाकर दूसरे अखबारोंको रास्ता दिखाइए।"

इस बुराईके ख़िलाफ़ हमें अविश्रान्त लड़ाई लड़नी चाहिए, इस विषयमें तो शंका हो ही नहींसकती। इस पत्रके साथ जो अत्यन्त घृणोत्पादक रिपोर्ट भेजी गई थीं, उन्हें मैंने पढ़ डाला है। सनातन धर्म कालेजके आचार्यने मेरे जिन लेखोंका उल्लेख किया है, उनमें जिस किस्मके मामलोंकी मैंने चर्चा की थी, उससे ये मामले जुदे ही प्रकारके हैं। वे मामले अध्यापकोंकी अनीतिके थे, जिनमें उन्होंने बालकोंको फुसलाया था। और इन रिपोर्टोंमें अधिकतर जिन मामलोंका वर्णन आया है, उनमें तो गुण्डोंने कोमल वयके बालकों पर अप्राकृतिक व्यभिचार करके उनका खून किया है। अप्राकृतिक व्यभिचार और उनके बाद खून किये जानेके केस हालांकि और भी अधिक घृणा पैदा करनेवाले मालूम होते हैं, तो भी मेरा यह विश्वास है कि जिन मामलोंमें बालक जान-बूझकर अध्यापकोंकी विषय-वासनाके शिकार होते हैं, उनकी अपेक्षा इस प्रकारके मामलोंका इलाज करना सहज है। दोनोंके ही विषयमें सुधारकोंके सतत-जागृत रहने और इस बीभत्स कार्यके सम्बन्धमें लोगोंकी अन्तरात्मा जगानेकी आवश्यकता है। पंजाबमें चूंकि इस किस्मके अपराध बहुत अधिक होने लगे हैं, इसलिए वहांके

नेताओंका यह कर्तव्य है कि वे जाति और धर्मका भेद एक तरफ रखकर एक जगह इकट्ठे हों, और बालकोंको फुसलाकर फंसानेवाले या उन्हें उठा ले जाकर उनके साथ अप्राकृतिक बलात्कार करके उनका खून करने वाले अपराधियोंके पंजेसे इस पंचनद प्रदेशके, कोमल वयस्क युवकोंको बचानेके उपायका आयोजन करें। अपराधियोंकी निंदा करने वाले प्रस्ताव पास करनेसे कुछ भी होने-हवानेका नहीं। पाप-मात्र भिन्न-भिन्न प्रकारके रोग हैं और सुधारकोंको उन्हें ऐसा रोग समझकर ही उनका इलाज करना चाहिए।

इसका अर्थ यह नहीं कि पुलिस इन मामलोंको सार्वजनिक अपराध समझनेका अपना काम मुल्तवी रखेगी; किन्तु पुलिस जो कार्रवाई करती है, उसकी मंशा इन सामाजिक अव्यवस्थाओंके मूल कारण ढूंढकर उन्हें दूर करनेकी होती ही नहीं। यह तो सुधारकोंका खास अधिकार है। और अगर समाजमें सदाचारके विषयकी भावना और आग्रह न बढ़ा तो अखबारोंमें दुनिया-भरके लेख लिखे जायं तो भी ऐसे अपराध और-और बढ़ते ही जायंगे। इसका कारण यही है कि इस उलटे रास्तेपर जाने वाले लोगोंकी नैतिक भावना कुंठित हो जाती है और वे अखबारोंको—खासकर उन भागोंको जिनमें ऐसे-ऐसे दुराचारोंके विरुद्ध जोशसे भरी हुई नसीहतें हाती हैं—शायद ही कभी पढ़ते हों। इसलिए मुझे भी यह एक ही प्रभावकारक मार्ग सूझ रहा है कि सनातन धर्म कालेजके प्रिंसिपल (यदि वे उनमेंसे एक हों तो) जैसे कुछ उत्साही सुधारक दूसरे सुधारकोंको एकत्रित करें और इस बुराईको दूर करनेके लिए कुछ सामूहिक उपाय हाथमें लें।

हरिजन सेवक,

२ नवम्बर, १९३५

: ९ :

उसको कृपा बिना कुछ नहीं

डॉक्टरों और अपने-आप जेलर बनने वाले सरदार वल्लभभाई तथा जमनालालजी की कृपासे मैं फिर पाठकोंके सम्पर्कमें आनेके काबिल हो गया हूँ, हालांकि है यह परीक्षणके तौरपर और एक निश्चित सीमातक ही। इन लोगोंने मेरी स्वतन्त्रतापर यह बन्धन लगा दिया है और मैंने उसे स्वीकार कर लिया है कि फिलहाल मैं 'हरिजन' में उससे अधिक किसी हालतमें नहीं लिखूंगा जो कि मुझे बहुत जरूरी मालूम पड़े; और वह भी इतना ही कि जिसके लिखनेमें प्रति सप्ताह कुछ घंटेसे अधिक समय न लगे। सिवा उनके कि जिनके साथ मैंने अभीसे लिखा-पढ़ी शुरू कर दी है, और किसीकी निजी समस्याओं या घरेलू कठिनाइयोंके बारेमें मैं निजी पत्र-व्यवहार नहीं करूंगा; और न तो मैं किसी सार्वजनिक कार्यक्रमको स्वीकार करूंगा, न किसी सार्वजनिक सभामें भाषण दूंगा या उपस्थित ही होऊंगा। सोने, दिलबहलाव, मिहनत और भोजनके बारेमेंभी निश्चित रूपसे निर्देशकर दिये गये हैं, लेकिन उनके वर्णनकी कोई जरूरत नहीं; क्योंकि उनसे पाठकों-का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझे आशा है कि इन हिदायतोंका पालन करनेमें 'हरिजन'के पाठक तथा संवाददाता लोग मेरे और महादेव भाईके साथ, जिन-के जिम्मे सब पत्र-व्यवहारको भुगतानेका काम होगा, पूरा सहयोग करेंगे।

मेरी बीमारीके मूल और उसके लिये किए जानेवाले उपायोंकी कुछ बात पाठकोंके लिए अवश्य रुचिकर होगी। जहांतक मैंने अपने डॉक्टरोंको समझा है, मेरे शरीरका बहुत सावधानी और सिरदर्दीके साथ निरीक्षण करनेपर भी उन्हें मेरे शारीरिक अवयवोंमें कोई खराबी नहीं मिली। उनकी रायमें बहुत सम्भवतः 'प्रोटीन' और 'कारबोहाइड्रेट्स' की कमी, जो की शक्कर और निशास्तेके द्वारा प्राप्त होती है, और बहुत दिनोंसे

अपने रोजमर्राके सार्वजनिक काम-काजके अलावा लगातार लम्बे-लम्बे समयतक परेशान कर देनेवाली विविध निजी समस्याओंमें उलझे रहनेसे यह बीमारी हुई थी। जहांतक मुझे याद पड़ता है पिछले बारह महीने या उससे भी अधिक समयसे मैं इस बातको बराबर कहता आ रहा था कि लगातार बढ़ते जानेवाले कामकी तादादमें अगर कमी न हुई तो मेरा बीमार पड़ जाना निश्चित है। इसलिए, जब बीमारी आई तो मेरे लिए वह नई बात नहीं थी। और बहुत सम्भव है कि दुनियामें इसका इतना ढिंढोरा ही न पिटता, अगर एक मित्रकी जरूरतसे ज्यादा चिन्ता सामने न आती, जिन्होंने कि मेरे स्वास्थ्यको गिरता देखकर जमनालालजीको सनसनीदार रुक्का भेज दिया। बस, जमनालालजीने यह खबर पाते ही उन सब होशियार डाक्टरोंको बुला लिया जो कि वर्धामें मिल सकते थे और विशेष सहायताके लिए नागपुर व बम्बई भी खबर भेज दी।

जिस दिन मैं बीमार पड़ा, उस दिन सबेरे ही मुझे उसकी चेतावनी मिल गई थी। जैसे ही सोकर उठा, मुझे अपनी गर्दनके पास एक खास तरहका दर्द मालूम पड़ा; लेकिन मैंने उसपर ज्यादा ध्यान नहीं दिया और किसीसे कुछ नहीं कहा। दिन-भर मैं अपना काम करता रहा। शामकी हवाखोरीके वक्त जब मैं एक मित्रके साथ बातें कर रहा था तो मुझे बहुत थकावट मालूम पड़ने लगी और मैं बहुत गम्भीर हो गया। मेरे स्नायु इससे पहले पखवाड़ेमें ऐसी समस्याओंके सोच-विचारमें पहले ही काफी ढीले पड़ चुके थे, जो कि मेरे लिए मानों स्वराज्यके सर्वप्रधान प्रश्नकी ही तरह महत्त्वपूर्ण थीं।

मेरी बीमारीको अगर इतना तूल न दिया गया होता तो भी जो निश्चित चेतावनी प्रकृति मुझे दे रही थी, उसपर मुझे ध्यान देना पड़ता और मैंने अपनेको थोड़ा आराम देकर उस कठिनाईको हल करनेकी कोशिश की होती; लेकिन जो कुछ हो गया उसपर नजर डालनेसे मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि जो-कुछ हुआ वह ठीक ही हुआ। डॉक्टरोंने जो असाधारण सावधानी रखनेकी सलाह दी और उन्हींके समान असाधारण रूपसे उक्त दोनों जेलरोंने जो देख-भाल रखी उसके कारण मजबूरन मुझे

आराम करना पड़ा, जो वैसे मैं कभी न करता, और उससे मुझे आत्म-निरीक्षणका काफी समय मिल गया। इसलिए उससे मुझे स्वास्थ्यका लाभ ही नहीं हुआ; बल्कि आत्म-निरीक्षणसे मुझे यह भी मालूम हुआ कि गीता-का जो अर्थ मैं समझा हूं उसका पालन करनेमें मैं कितनी गलती कर रहा हूं। मुझे पता लगा कि जो विविध समस्याएं हमारे सामने उपस्थित हैं, उनकी काफी गहराईमें मैं नहीं पहुंचा हूं। यह स्पष्ट है कि उनमेंसे अनेक-ने मेरे हृदयपर असर डाला है और मैंने उन्हें, अपनी भावुकताको प्रेरित करके, अपने स्नायुओंपर जोर डालने दिया है। दूसरे शब्दोंमें कहूं तो गीताके भक्तोंको उनके प्रति जैसा अनासक्त रहना चाहिए वैसा मेरा मन या शरीर नहीं रहा है। सचमुच मेरा यह विश्वास है कि जो व्यक्ति प्रकृतिके आदेशका पूर्णतः अनुसरण करता है उसके मनमें बुढ़ापेका भाव कभी आना ही नहीं चाहिए। ऐसा व्यक्ति तो अपनेको सदा तरो-ताजा और नौजवान ही महसूस करेगा और जब उसके मरनेका समय आयगा तो उसी तरह मरेगा जैसे किसी मजबूत वृक्षके पत्ते गिरते हों। भीष्म पितामहने मृत्यु-शैय्यापर पड़े हुए भी युधिष्ठिरको जो उपदेश दिया, मेरी समझमें उसका यही अर्थ है। डॉक्टर लोग मुझे यह चेतावनी देते कभी नहीं थकते थे कि हमारे आस-पास जो घटनाएं हो रही हैं, उनसे मुझे उत्तेजित हर्गिज नहीं होना चाहिए। कोई दुःखद या उत्तेजक घटना अथवा समाचार मेरे सामने न आये, इसकी भी खास तौरपर सावधानी रखी गई। यद्यपि मेरा खयाल है कि मैं गीताका उतना बुरा अनुयायी नहीं हूं, जैसा कि इस सावधानीकी कार्रवाईसे मालूम पड़ता है; लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि उनकी हिदायतोंमें सार अवश्य था; क्योंकि मगनवाड़ी-से महिलाश्रम जानेकी जमनालालजीकी बात मैंने कितनी अनिच्छासे कबूल की, यह मुझे मालूम है। जो भी हो, उन्हें यह विश्वास नहीं रहा कि अनासक्त रूपसे मैं कोई काम कर सकता हूं। मेरा बीमार पड़ जाना उनके लाए इस बातका बड़ा भारी प्रमाण था कि अनासक्तिकी मेरी जो ख्याति है, वह थोथी ,और इसमें मुझे अपना दोष स्वीकार करना ही पड़ेगा।

लेकिन अभी तो इससे भी अधिक बुरा होनेको बाकी था। १८९९ से

मैं, जान-बूझकर और निश्चयके साथ, बराबर ब्रह्मचर्य का पालन करनेकी कोशिश करता रहा हूं। मेरी व्याख्याके अनुसार, इसमें न केवल शरीर की, बल्कि मन और वचनकी शुद्धता भी शामिल है। और सिवा उस अपवादके, जिसे कि मानसिक स्खलन कहना चाहिए, अपने ३६ वर्षसे अधिक समयके सतत एवं जागरूक प्रयत्नके बीच मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी भी मेरे मनमें इस सम्बन्धमें ऐसी बेचैनी पैदा हुई हो, जैसी कि इस बीमारीके समय मुझे महसूस हुई। यहांतक कि मुझे अपनेसे निराशा होने लगी; लेकिन जैसे ही मेरे मनमें ऐसी भावना उठी, मैंने अपने परिचारकों और डाक्टरोंको उससे अवगत कर दिया; लेकिन वे मेरी कोई मदद नहीं कर सके। मैंने उनसे आशा भी नहीं की थी। अलबत्ता इस अनुभवके बाद मैंने उस आराममें ढिलाई कर दी, जो कि मुझपर लादा गया था और अपने इस बुरे अनुभवको स्वीकार कर लेनेसे मुझे बड़ी मदद मिली। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो मेरे ऊपरसे बड़ा भारी बोझ हट गया और कोई हानि हो सकनेसे पहले ही मैं सम्हल गया; लेकिन गीताका उपदेश तो स्पष्ट और निश्चित है; जिसका मन एक बार ईश्वरमें लग जाय वह कोई पाप नहीं कर सकता। मैं उससे कितना दूर हूं, यह तो वही जानता है। ईश्वरको धन्यवाद है कि अपने महात्मापनकी प्रसिद्धिसे मैं कभी धोखेमें नहीं पड़ा हूं; लेकिन इस ज़बरदस्तीके विश्रामने तो मुझे इतना विनम्र बना दिया है, जितना मैं पहले कभी नहीं था। इससे अपनी मर्यादाएं और अपूर्णताएं भली-भांति मेरे सामने आ गई हैं; लेकिन उनके लिए मैं उतना लज्जित नहीं हूं जितना कि सर्वसाधारणसे उनको छिपानेमें होता। गीताके सन्देशमें सदाकी तरह आज मेरा वैसा ही विश्वास है। उस विश्वासको ऐसे सुन्दर रूपमें परिणित करनेके लिए कि जिससे गिरावटका अनुभव ही न हो, लगातार अथक प्रयत्नकी आवश्यकता है; लेकिन उसी गीतामें साथ-साथ असंदिग्ध रूपसे यह भी कहा हुआ कि ईश्वरीय अनुग्रहके बिना वह स्थिति ही प्राप्त नहीं हो सकती। अगर विधाताने इतनी गुंजाइश न रखी होती तो हमारे हाथ-पैर ही फूल गये होते और हम अकर्मण्य हो गये होते।

हरिजन सेवक २९. २. ३६

: १० :

सन्तति-निग्रह—१

मेरे एक साथीने, जो मेरे लेखोंको बड़े ध्यानके साथ पढ़ते रहते हैं, जब यह पढ़ा कि सन्तति-निग्रहके लिए सम्भवतः मैं उन दिनों सहवासकी बात स्वीकार कर लूंगा जिनमें कि गर्भ रहनेकी सम्भावना नहीं होती, तो उन्हें बड़ी बेचैनी हुई। मैंने उन्हें यह समझानेकी कोशिश की कि कृत्रिम साधनोंसे संतति-निग्रह करनेकी बात मुझे जितनी खलती है उतनी यह नहीं खलती, फिर यह है भी अधिकतर विवाहित दम्पतियोंके ही लिए। आखिर बहस बढ़ते-बढ़ते इतनी गहराईपर चलती गई जिसकी हम दोनोंमेंसे किसीने आशा न की थी। मैंने देखा कि यह बात भी उन मित्रको कृत्रिम साधनोंसे संतति-निग्रह करने-जैसी ही बुरी प्रतीत हुई। इससे मुझे मालूम पड़ा कि यह मित्र स्मृतियोंके इस बन्धनको साधारण मनुष्योंके लिए व्यवहार योग्य समझते हैं कि पति-पत्निको भी तभी सहवास करना चाहिए, जबकि उन्हें सचमुच सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा हो। इस नियमको जानता तो मैं पहलेसे था; लेकिन उसे इस रूपमें पहले कभी नहीं माना था, जिस रूपमें कि इस बातचीतके बाद मानने लगा हूं। अभी तक तो, पिछले कितने ही सालोंसे, मैं इसे ऐसा पूर्ण आदर्श ही मानता आया हूं, जिसपर ज्यों-का-त्यों अमल नहीं हो सकता। इसलिए मैं समझता था कि सन्तानोत्पत्तिकी खास इच्छाके बगैर भी विवाहित स्त्री-पुरुष जबतक एक-दूसरेकी रजामन्दीसे सहवास करें तबतक वे वैवाहिक उद्देश्यकी पूर्ति करते हुए स्मृतियोंके आदेशका भंग नहीं करते, लेकिन जिस नये रूपमें अब मैं स्मृतिकी बातको लेता हूं वह मेरे लिए मानो एक इलहाम है। स्मृतियोंका जो यह कहना है कि जो विवाहित स्त्री-पुरुष इस आदेशका दृढ़ताके साथ पालन करें वे वैसे ही ब्रह्मचारी हैं जैसे

अविवाहित रहकर सदाचारी जीवन व्यतीत करनेवाले होते हैं, उसे अब मैं इतनी अच्छी तरह समझ गया हूं जैसे पहले कभी नहीं जानता था।

इस नये रूपमें, अपनी काम-वासनाको तृप्त करना नहीं; बल्कि सन्तानोत्पत्ति ही सहवासका एक-मात्र उद्देश्य है। साधारण काम-पूर्ति तो विवाह-की इस दृष्टिसे, भोग ही माना जायगा। जिस आनन्दको अभी तक हम निर्दोष और वैध मानते आये हैं उसके लिए ऐसे शब्दका प्रयोग कठोर तो मालूम होगा; लेकिन प्रचलित प्रथाकी बात मैं नहीं कर रहा हूं, बल्कि उस विवाह-विज्ञानको ले रहा हूं जिसे हिन्दू-ऋषियोंने बताया है। यह हो सकता है कि उन्होंने ठीक ढंगसे न रखा हो या वह बिलकुल गलत ही हो; लेकिन मुझ-जैसे आदमीके लिए तो, जो स्मृतियोंकी कई बातोंको अनुभवके आधार-भूत मानता है, उनके अर्थको पूरी तरह स्वीकार किये बगैर कोई चाराही नहीं है। कुछ पुरानी बातोंको उनके पूरे अर्थोंमें ग्रहण करके प्रयोगमें लानेके अलावा और कोई ऐसा तरीका मैं नहीं जानता जिससे उनकी सचाई-का पता लगाया जा सके। फिर वह जांच कितनी ही कड़ी क्यों न प्रतीत हो और उससे निकलनेवाले निष्कर्ष कितने ही कठोर क्यों न लगें।

ऊपर मैंने जो-कुछ कहा है उसको देखते हुए, कृत्रिम साधनों या ऐसे दूसरे उपायोंसे सन्तति-निग्रह करना बड़ी भारी गलती है। अपनी जिम्मे-दारीको पूरी तरह समझते हुए मैं यह लिख रहा हूं। श्रीमती मार्गरेट सेंगर और उनके अनुयायियोंके लिए मेरे मनमें बड़े आदरका भाव है। अपने उद्देश्यके लिए उनके अन्दर जो अदम्य उत्साह है उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं। यह भी मैं जानता हूं कि स्त्रियोंको अनचाहे बच्चोंकी सार-सम्हाल और परवरिश करनेके कारण जो कष्ट उठाना पड़ता है, उसके लिए उनके मनमें स्त्रियोंके प्रति बड़ी सहानुभूति है। साथ ही यह भी मैं जानता हूं कि कृत्रिम सन्तति-निग्रहका अनेक उदार धर्माचार्यों, वैज्ञानिकों, विद्वानों और डॉक्टरोंने भी समर्थन किया है, जिनमें बहुतोंको तो मैं व्यक्तिगत रूपसे जानता और मानता भी हूं; लेकिन इस सम्बन्धमें मेरी जो मान्यता है उसे अगर मैं पाठकों या कृत्रिम सन्तति-निग्रहके महान् समर्थकोंसे छिपाऊं तो मैं अपने ईश्वरके प्रति, जोकि सत्यके अलावा और कुछ नहीं है, सच्चा

साबित नहीं होऊंगा, और अगर मैंने अपनी मान्यताको छिपाया तो यह निश्चित है कि अपनी गलतीको, अगर मेरी यह मान्यता गलत हो, मैं कभी नहीं जान सकूंगा। अलावा इसके, उन अनेक स्त्री-पुरुषोंकी खातिर भी मैं यह जाहिर कर रहा हूं जोकि सन्तति-निग्रह सहित अनेक नैतिक समस्याओंके बारेमें मेरे आदेश और मतको स्वीकार करते हैं।

सन्तति-निग्रह होना चाहिए, इस बातपर तो वे भी सहमत हैं जो इसके लिए कृत्रिम साधनोंका समर्थन करते हैं, और वे भी जो अन्य उपाय बतलाते हैं। आत्म-संयमसे सन्तति-निग्रह करनेमें जो कठिनाई होती है, उससे इन्कार नहीं किया जा सकता; लेकिन अगर मनुष्य-जातिको अपनी किस्मत जगानी है तो इसके सिवा इसकी पूर्तिका कोई और उपाय ही नहीं है; क्योंकि यह मेरा आन्तरिक विश्वास है कि कृत्रिम साधनोंसे सन्तति-निग्रहकी बात सबने मंजूर करली तो मनुष्य-जातिका बड़ा भारी नैतिक पतन होगा। कृत्रिम सन्तति-निग्रहके समर्थक इसके विरुद्ध प्रायः जो दलीलें पेश करते हैं उनके बावजूद मैं यह कहता हूं।

मेरा विश्वास है कि मुझमें अन्ध-विश्वास कोई नहीं है। मैं यह नहीं मानता कि कोई बात इसलिए सत्य है; क्योंकि वह प्राचीन है। न मैं यह मानता हूं कि चूंकि वह प्राचीन है इसलिए उसे सन्दिग्ध समझा जाय। जीवनकी आधारभूत कई ऐसी बातें हैं जिन्हें हम यह समझकर यों ही नहीं छोड़ सकते कि उनपर अमल करना मुश्किल है।

इसमें शक नहीं कि आत्म-संयमके द्वारा सन्तति-निग्रह है कठिन; लेकिन अभीतक ऐसा कोई नजर नहीं आया जिसने संजीदगीके साथ इसकी उपयोगितामें सन्देह किया हो या न माना हो कि कृत्रिम साधनोंकी बनिस्बत यह ऊंचे दर्जेका है।

मैं समझता हूं, जब हम सहवासको दृढ़तासे मर्यादित रखनेके शास्त्रोंके आदेशको पूर्णतः स्वीकार कर लें, और उसको ही सबसे बड़ा आनन्दका साधन न मानें,तो यह अपेक्षाकृत आसान भी हो जायगा। जननेन्द्रियोंका काम तो सिर्फ यही है कि विवाहित दम्पतिके द्वारा यथासम्भव सर्वोत्तम सन्तानोत्पत्ति करें। और यह तभी हो सकता है, और होना चाहिए, जबकि

स्त्री-पुरुष दोनों सहवासकी नहीं बल्कि सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे, जो कि ऐसे सहवासका परिणाम होता है, प्रेरित हों। अतएव सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाके बगैर सहवास करना अवैध समझा जाना चाहिए और उसपर नियंत्रण लगाना चाहिए।

साधारण आदमियोंपर ऐसा नियंत्रण किया जा सकता है या नहीं, इसपर आगे विचार किया जायगा।

हरिजन सेवक,
१४ मार्च, १६३६

: ११ :

सन्तति-निग्रह—२

हमारे समाजकी आज ऐसी दशा है कि आत्म-संयमकी कोई प्रेरणा ही उससे नहीं मिलती। शुरूसे हमारा पालन-पोषण ही उससे विपरीत दिशामें होता है। माता-पिताकी मुख्य चिन्ता तो यही होती है कि, जैसे भी हो अपनी सन्तानका ब्याह कर दें जिससे चूहोंकी तरह वे बच्चे जनते रहें और अगर कहीं लड़की पैदा हो जाय तब तो जितनी भी कम उम्रमें हो सके, बिना यह सोचे कि इससे उसका कितना नैतिक पतन होगा, उसका ब्याह कर दिया जाता है। विवाहकी रस्म भी क्या है, मानो दावत और फिजूल-खर्चीकी एक लम्बी सरदर्दी ही है। परिवारका जीवन भी वैसा ही होता है जैसा कि पहलेसे होता आया है, यानी भोगकी ओर बढ़ना ही होता है। छुट्टियां और त्यौहार भी इस तरह रखे गये हैं, जिनसे वैषयिक रहन-सहनकी ओर ही अधिक-से-अधिक प्रवृत्ति होती है। जो साहित्य एक तरहसे गले चपेटा जाता है उससे भी आमतौरपर विषयोन्मुख मनुष्योंको उसी ओर अग्र-सर होनेका प्रोत्साहन मिलता है। और अत्यंत आधुनिक साहित्य तो प्रायः यही शिक्षा देता है कि विषय-भोग ही कर्त्तव्य है और पूर्ण संयम एक पाप है।

ऐसी हालतमें कोई आश्चर्य नहीं कि काम-पिपासाका नियंत्रण बिलकुल असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है और अगर हम यह मानते हैं कि सन्तति-निग्रहका अत्यंत वांछनीय और बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सर्वथा निर्दोष साधन आत्म-संयम ही है तो सामाजिक आदर्श और वातावरणको ही बदलना होगा। इस इच्छित उद्देश्यकी सिद्धिका एक-मात्र उपाय यही है कि जो व्यक्ति आत्म-संयमके साधनमें विश्वास रखते हैं वे दूसरोंको भी उससे प्रभावित करनेके लिए अपने अटूट विश्वासके साथ खुद ही इसका अमल शुरू कर दें। ऐसे लोगोंके लिए, मैं समझता हूं, विवाहकी जिस धारणाकी मैंने

पिछले सप्ताह चर्चा की थी वह बहुत महत्त्व रखती है। उसे भली-भांति ग्रहण करनेका मतलब है अपनी मनःस्थितिको बिलकुल बदल देना अर्थात् पूर्ण मानसिक क्रान्ति। यह नहीं कि सिर्फ कुछ चुने हुए व्यक्तिही ऐसा करें; बल्कि यही समस्त मानव-जातिके लिए नियम हो जाना चाहिए; क्योंकि इसके भंगसे मानव-प्राणियोंका दर्जा घटता है और अनचाहे बच्चोंकी वृद्धि, सदा बढ़ती रहनेवाली बीमारियोंकी शृंखला और मनुष्यके नैतिक पतनके रूपमें उन्हें तुरन्त ही इसकी सजा मिल जाती है। इसमें शक नहीं कि कृत्रिम साधनों द्वारा सन्तति-निग्रहसे नव-जात शिशुओंकी संख्या-वृद्धिपर किसी हदतक अंकुश रहता है, और साधारण स्थितिके मनुष्योंका थोड़ा बचाव हो जाता है; लेकिन व्यक्ति और समाजकी जो नैतिक हानि इसमें होती है उसका पार नहीं; क्योंकि जो लोग भोगके लिए ही अपनी काम-वासनाकी तृप्ति करते हैं; उनके लिए जीवनका दृष्टिकोण ही बिलकुल बदल जाता है। उनके लिए विवाह धार्मिक सम्बन्ध नहीं रहता, जिसका मतलब है उन सामाजिक आदर्शोंका बिलकुल बदल जाना, जिन्हें अभीतक हम बहुमूल्य निधिके रूपमें मानते रहे हैं। निस्सन्देह जो लोग विवाहके पुराने आदर्शोंको अन्ध-विश्वास मानते हैं, उनपर इस दलीलका ज्यादा असर न होगा। इसलिए मेरी यह दलील सिर्फ उन्हीं लोगोंके लिए है जो विवाहको एक पवित्र संबंध मानते हैं और स्त्रीको पाशविक आनन्द (भोग) का साधन नहीं; बल्कि सन्तानके धारण और संरक्षणका गुण रखनेवाली माताके रूपमें मानते हैं।

मैंने और मेरे साथी कार्यकर्त्ताओंने आत्म-संयमकी दिशामें जो प्रयत्न किया है, उसके अनुभवसे इस विचारकी पुष्टि होती है, जिसे कि मैंने यहां उपस्थित किया है। विवाहकी प्राचीन धारणाके प्रखर प्रकाशमें होनेवाली खोजसे इसे बहुत ज्यादा बल प्राप्त हो गया है। मेरे लिए तो अब विवाहित-जीवनमें ब्रह्मचर्य बिलकुल स्वाभाविक और अनिवार्य स्थिति बनकर स्वयं विवाहकी तरह एक मामूली बात हो गई है। सन्तति-निग्रहका और कोई उपाय व्यर्थ और अकल्पनीय मालूम पड़ता है। एक बार जहां स्त्री और पुरुषमें इस विचारने घर किया नहीं कि जननेन्द्रियोंका एक-मात्र

और महान् कार्य सन्तानोत्पत्ति ही है, सन्तानोत्पत्तिके अलावा और किसी उद्देश्यसे सहवास करनेको वे अपने रज-वीर्यकी दण्डनीय क्षति मानने लगेंगे और उसके फलस्वरूप स्त्री-पुरुषमें होनेवाली उत्तेजनाको अपनी मूल्यवान शक्तिकी वैसी ही दण्डनीय क्षति समझेंगे। हमारे लिए यह समझना बहुत मुश्किल बात नहीं है कि प्राचीन कालके वैज्ञानिकोंने वीर्य-रक्षाको क्यों इतना महत्त्व दिया है और क्यों इस बातपर उन्होंने इतना जोर दिया है कि हम समाजके कल्याणके लिए उसे शक्तिके सर्वोत्कृष्ट रूपमें परिणत करें। उन्होंने तो स्पष्टरूपसे इस बातकी घोषणा की है कि जो (स्त्री-पुरुष) अपनी काम-वासनापर पूर्ण नियंत्रण कर ले वह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी प्रकारकी इतनी शक्ति प्राप्त कर लेता है जो और किसी उपायसे प्राप्त नहीं की जा सकती।

ऐसे महान् ब्रह्मचारियोंकी अधिक संख्या क्या, एक भी कोई हमें अपने बीचमें दिखाई नहीं पड़ता, इससे पाठकोंको घबराना नहीं चाहिए। अपने बीच जो ब्रह्मचारी आज हमें दिखाई देते हैं वे सचमुच बहुत अपूर्ण नमूने हैं। उनके लिए तो बहुत-से बहुत यही कहा जा सकता है कि वे ऐसे जिज्ञासु हैं, जिन्होंने अपने शरीरका संयम कर लिया है; पर मनपर अभी संयम नहीं कर पाये हैं। ऐसे दृढ़ वे अभी नहीं हुए हैं कि उनपर प्रलोभनका कोई असर ही न हो; लेकिन यह इसलिए नहीं है कि ब्रह्मचर्यकी प्राप्ति बहुत दुरूह है; बल्कि सामाजिक वातावरण ही उसके विपरीत है और जो लोग ईमानदारीके साथ यह प्रयत्न कर रहे हैं उनमेंसे अधिकांश अनजाने सिर्फ इसी संयमका यत्न करते हैं, जबकि इसमें सफल होनेके लिए उन सब विषयोंके संयमका यत्न किया जाना चाहिए, जिनके चंगुलमें मनुष्य फंस सकता है। इस तरह किया जाय तो साधारण स्त्री-पुरुषोंके लिए भी वैसे ही प्रयत्नकी आवश्यकता है जैसा कि किसी भी विज्ञानमें निष्णात होनेके अभिलाषी किसी विद्यार्थीको करना पड़ता है। यहां जिस रूपमें ब्रह्मचर्य लिया गया है, उस रूपमें जीवन-विज्ञानमें निष्णात होना ही वस्तुतः उसका अर्थ भी है।

हरिजन सेवक,

२१ मार्च, १९३६

: १२ :

नवयुवकोंसे !

आजकल कहीं-कहीं नवयुवकोंकी यह आदत-सी पड़ गई है कि बड़े-बड़े जो-कुछ कहें वह नहीं मानना चाहिए। मैं यह तो नहीं कहना चाहता कि उनके ऐसा माननेका बिलकुल कोई कारण नहीं है; लेकिन देशके युवकोंको इस बातसे आगाह जरूर करना चाहता हूं कि बड़े-बड़े स्त्री-पुरुषों द्वारा कही हुई हरेक बातको सिर्फ इसी कारण माननेसे इन्कार न करें कि उसे बड़े-बूढ़ोंने कहा है। अक्सर बुद्धिकी बात बच्चों तकके मुंहसे जैसे निकल जाती है, उसी तरह बहुधा बड़े-बूढ़ोंके मुंहसे निकल जाती है। स्वर्ण-नियम तो यही है कि हरेक बातको बुद्धि और अनुभवकी कसौटीपर कसा जाय, फिर वह चाहे किसीकी कही या बताई हुई क्यों न हो। कृत्रिम साधनोंसे सन्तति-निग्रहकी बातपर मैं अब आता हूं। हमारे अन्दर यह बात जमा दी गई है कि अपनी विषय-वासनाकी पूर्ति करना भी हमारा वैसा ही कर्तव्य है; जैसे वैध रूपमें लिये हुए कर्जको चुकाना हमारा कर्तव्य है; और अगर हम ऐसा न करें तो उससे हमारी बुद्धि कुण्ठित हो जायगी। इस विषयेच्छाको सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे पृथक् माना जाता है और सन्तति-निग्रहके लिए कृत्रिम-साधनोंके समर्थकोंका कहना है कि जबतक सहवास करने वाले स्त्री-पुरुषको बच्चे पैदा करनेकी इच्छा न हो तब तक गर्भ-धारण नहीं होने देना चाहिए। मैं बड़े साहसके साथ यह कहता हूं कि यह ऐसा सिद्धान्त है, जिसका कहीं भी प्रचार करना बहुत खतरनाक है; और हिन्दुस्तान-जैसे देशके लिए तो, जहां मध्य-श्रेणीके पुरुष अपनी जननेन्द्रियका दुरुपयोग करके अपना पुरुषत्व ही खो बैठे हैं; यह और भी बुरा है। अगर विषयेच्छाकी पूर्ति कर्तव्य हो, तब तो जिस अप्राकृतिक व्यभिचारके बारेमें कुछ समय पहले मैंने लिखा था उसे तथा कामपूर्तिके कुछ

अन्य उपायोंको भी ग्रहण करना होगा । पाठकोंको याद रखना चाहिए कि बड़े-बड़े आदमी भी ऐसे काम पसन्द करते मालूम पड़ रहे हैं जिन्हें आम तौरपर वैषयिक पतन माना जाता है। सम्भव है कि इस बातसे पाठकोंको कुछ ठेस लगे; लेकिन अगर किसी तरह इस पर प्रतिष्ठाकी छाप लग जाय तो बालक-बालिकाओंमें अप्राकृतिक व्यभिचारका रोग बुरी तरह फैल जायगा । मेरे लिए तो कृत्रिम साधनोंके उपयोगसे कोई खास फर्क नहीं है, जिन्हें लोगोंने अभीतक अपनी विषयेच्छा-पूर्तिके लिए अपनाया है, और जिनसे ऐसे कुपरिणाम आये हैं कि बहुत कम लोग उनसे परिचित हैं। स्कूली लड़के-लड़कियोंमें गुप्त व्यभिचारने क्या तूफान मचाया है, यह मैं जानता हूं। विज्ञानके नामपर-सन्तति निग्रहके कृत्रिम साधनोंके प्रवेश और प्रख्यात सामाजिक नेताओंके नामसे उनके छिपानेसे स्थिति आज और भी पेचीदा हो गई है और सामाजिक जीवनकी शुद्धता के लिए सुधारकोंका काम बहुत-कुछ सम्भव-सा हो गया है । पाठकोंको यह बताकर मैं अपने पर किये गए किसी विश्वासको भंग नहीं कर रहा हूं कि स्कूल-कालिजोंमें ऐसी अविवाहित जवान लड़कियां भी हैं, जो अपनी पढ़ाईके साथ-साथ कृत्रिम सन्तति-निग्रहके साहित्य व मासिक पत्रोंको बड़े चावसे पढ़ती रहती हैं और कृत्रिम साधनोंको अपने साथ रखती हैं । इन साधनोंको विवाहिता स्त्रियोंतक ही सीमित रखना असम्भव है । और, विवाहकी पवित्रता तो तभी लोप हो जाती है, जबकि उसके स्वाभाविक परिणाम सन्तानोत्पत्ति-को छोड़कर महज अपनी पाशविक विषय-वासनाकी पूर्ति ही उसका सबसे बड़ा उपयोग मान लिया जाता

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि जो विद्वान् स्त्री-पुरुष सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोंके पक्षमें बड़ी लगनके साथ प्रचार-कार्य कर रहे हैं, वे इस झूठे विश्वासके साथ कि इससे उन बेचारी स्त्रियोंकी रक्षा होती है, जिन्हें अपनी इच्छाके विरुद्ध बच्चोंका भार सम्भालना पड़ता है, देशके युवकोंकी ऐसी हानि कर रहे हैं, जिसकी कभी पूर्ति ही नहीं हो सकती । जिन्हें अपने बच्चोंकी संख्या सीमित करनेकी जरूरत है, उनतक तो आसानी से वे पहुंच भी नहीं सकेंगे, क्योंकि हमारे यहांकी गरीब स्त्रियोंको पश्चिमी

स्त्रियोंकी भांति ज्ञान या शिक्षण कहां प्राप्त है ? यह भी निश्चय है कि मध्य-श्रेणीकी स्त्रियोंकी ओरसे भी यह प्रचार-कार्य नहीं हो रहा है; क्योंकि इस ज्ञानकी उन्हें उतनी जरूरत ही नहीं है, जितनी कि गरीब लोगोंको है।

इस प्रचार-कार्यसे सबसे बड़ी जो हानि हो रही है, वह तो पुराने आदर्शको छोड़कर उसकी जगह एक ऐसे आदर्शको अपनाना है, जो अगर अमलमें लाया गया तो जातिका नैतिक तथा शारीरिक सर्वनाश निश्चित है। प्राचीन शास्त्रोंने व्यर्थ-वीर्य-नाशको जो भयावह बताया है, वह कुछ अज्ञान-जनित अन्ध-विश्वास नहीं है। कोई किसान अपने पासके सबसे बढ़िया बीजको बंजर जमीनमें बोवे, या बढ़िया खादसे खूब उपजाऊ बने हुए किसी खेतके मालिकको इस शर्तपर बढ़िया बीज मिले कि उसके लिए उसकी उपज करना ही सम्भव न हो तो उसे हम क्या कहेंगे ? परमेश्वरने कृपा करके पुरुषको तो बहुत बढ़िया बीज दिया है और स्त्रीको ऐसा बढ़िया खेत दिया है कि जिससे बढ़िया इस भू-मण्डलमें कोई मिल ही नहीं सकता। ऐसी हालतमें मनुष्य अपनी बहुमूल्य सम्पत्तिको व्यर्थ जाने दे तो यह उसकी दण्डनीय मूर्खता है। उसे तो चाहिए कि अपने पासके बढ़िया-से-बढ़िया हीरे-जवाहरात अथवा अन्य मूल्यवान वस्तुओंकी वह जितनी देख-भाल रखता हो, उससे भी ज्यादा इसकी सार-सम्हाल करे। इसी प्रकार वह स्त्री भी अक्षम्य मूर्खताकी ही दोषी है, जो अपने जीवन-उत्पादक क्षेत्रमें जान-बूझकर व्यर्थ जाने देनेके विचारसे बीजको ग्रहण करे। दोनों ही उन्हें मिले हुए गुणोंका दुरुपयोग करनेके दोषी होंगे और उनसे उनके ये गुण छिन जायंगे। विषयेच्छा एक सुन्दर और श्रेष्ठ वस्तु है, इसमें शर्मकी कोई बात नहीं है; किन्तु यह है सन्तानोत्पत्तिके लिए। इसके सिवा इसका कोई उपयोग किया जाय तो वह परमेश्वर और मानवताके प्रति पाप होगा। सन्तति-निग्रहके कृत्रिम उपाय किसी-न-किसी रूपमें पहले भी थे और बादमें भी रहेंगे; परन्तु पहले उनका उपयोग पाप माना जाता था। व्यभिचारको सद्गुण कहकर उसकी प्रशंसा करनेका काम हमारे ही युगके लिए सुरक्षित रखा हुआ था। कृत्रिम साधनोंके हिमायती हिन्दुस्तानके नौजवानोंकी जो सबसे बड़ी हानि कर रहे हैं वह

उनके दिमागमें ऐसी विचार-धारा भर देता है, जो मेरे खयालमें गलत है। भारतके नौजवान स्त्री-पुरुषोंका भविष्य उनके अपने हाथोंमें है। उन्हें चाहिए कि इस झूठे प्रचारसे सावधान हो जायं और जो बहुमूल्य वस्तु परमेश्वरने उन्हें दी है, उसकी रक्षा करें, और जब वे उसका उपयोग करना चाहें तो सिर्फ उसी उद्देश्यसे करें कि जिसके लिए वह उन्हें दिया गया है।

हरिजन सेवक,
२८ मार्च, १९३६

: १३ :

कृत्रिम साधनोंसे सन्तति-निग्रह

एक सज्जन लिखते हैं :

"हालमें 'हरिजन'में श्रीमती सेंगर और महात्मा गांधीकी मुलाकातका जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसके बारेमें मैं कुछ कहना चाहता हूं।

"इस बातचीतमें जिस खास बातकी ओर ध्यान नहीं दिया गया मालूम पड़ता है वह यह है कि मनुष्य अन्ततोगत्वा कलाकार और उत्पादक है। कम-से-कम आवश्यकताओंकी पूर्तिपर ही वह संतोष नहीं करता; बल्कि सुन्दरता, रंग-बिरंगापन और आकर्षण भी उसके लिए आवश्यक होता है। मुहम्मद साहबने कहा है कि 'अगर तेरे पास एक ही पैसा हो तो उससे रोटी खरीद ले; लेकिन अगर दो हों तो एकसे रोटी खरीद और एकसे फूल।' इसमें एक महान् मनोवैज्ञानिक सत्य निहित है—वह यह कि मनुष्य स्वभावतःकलाकार है, इसलिए हम उसे ऐसे कामोंके लिए भी प्रयत्नशील पाते हैं, जो महज उसके शरीर-धारणके लिए आवश्यक नहीं हैं। उसने तो अपनी आवश्यकता-को कलाका रूप दे रखा है और उन कलाओंकी खातिर मनों खून बहाया है। मनुष्यकी उत्पादक-बुद्धि नई-नई कठिनाइयों और समस्याओंको पैदा करके उनका तैल निकालनेके लिए उसे प्रेरित करती रहती है। रूसो, रस्किन, टॉलस्टाय, थोरो और गांधी उसे जैसा 'सरल-सादा' बनाना चाहते हैं वैसा बन नहीं सकता। युद्ध भी उसके लिए एक आवश्यक चीज है; और उसे भी उसने एक महान् कलाके रूपमें परिणत कर दिया है।

"उसके मस्तिष्कको अपील करनेके लिए प्रकृतिका उदाहरण व्यर्थ है, क्योंकि वह तो उसके जीवनसे ही बिलकुल मेल नहीं खाती है। 'प्रकृति उसकी शिक्षिका नहीं बन सकती।' जो लोग प्रकृतिके नामपर अपील करते हैं वे यह भूल करते हैं कि प्रकृतिमें केवल पर्वत तथा उपत्यकाएं और कुसुम-

क्यारियां ही नहीं हैं, बल्कि बाढ़, झंझावात और भूकम्प भी हैं। कट्टर निराकारवादी नीत्सेका कहना है कि कलाकारकी दृष्टिसे प्रकृति कोई आदर्श नहीं है। वह तो अत्युक्ति तथा विकृतीकरणसे काम लेती है और बहुत-सी चीजोंको छोड़ जाती है। प्रकृति तो एक आकस्मिक घटना है। 'प्रकृतिसे अध्ययन करना' कोई अच्छा चिह्न नहीं; क्योंकि इन नगण्य चीजोंके लिए धूलमें लोटना अच्छे कलाकारके योग्य नहीं है। भिन्न प्रकारकी बुद्धिके कार्यको, कला-विरोधी मामूली बातोंको, देखनेके लिए यह आवश्यक है कि हम यह जानें कि हम क्या हैं? हम यह जानते हैं कि जंगली जानवर अपने शरीरको बनाये रखनेकी आवश्यकतावश कच्चा मांस खाते हैं, स्वाद-वश नहीं। यह भी जानते हैं कि प्रकृतिमें तो पशुओंसे समागमकी ऋतुएं होती हैं। ऋतुओंके अतिरिक्त कभी मैथुन होता ही नहीं; लेकिन उसी फिलासफरके अनुसार यह तो अच्छे कलाकारके योग्य नहीं है। जो मनुष्य स्वभावत: अच्छा कलाकार है इसलिए जब सन्तानोत्पत्तिकी आवश्यकता न रहे तब मैथुन-कार्यको बन्द कर देना या केवल सन्तानोत्पत्तिकी स्पष्ट इच्छासे प्रेरित होकर ही मैथुन करना, इतनी प्राकृतिक, इतनी मामूली, इतनी हिसाब-किताबकी-सी बात है कि हमारे फिलासफरके कथनानुसार वह उसकी कला-प्रेमी प्रकृतिको अपील नहीं कर सकता। इसलिए वह तो स्त्री-पुरुषके प्रेमको एक बिलकुल दूसरे पहलूसे देखता है—ऐसे पहलूसे जिसका सन्तान-वृद्धिसे कोई सम्बन्ध नहीं। यह बात हेवलॉक एलिस और मेरी स्टोप्स-जैसे आप्त पुरुषोंके कथनोंसे स्पष्ट होती है। यह इच्छा यद्यपि आत्मासे उत्पन्न होती है, पर वह शारीरिक सम्भोगके बिना अपूर्ण रह जाती है। यह उस समयतक रहेगा जबतक हम इस अंशको केवल आत्मामें पूरा नहीं कर सकते और उसके लिए शरीरयंत्रकी आवश्यकता समझते हैं। ऐसे ही सहवासके परिणामका सामना करना बिलकुल दूसरी समस्या है। यहीं सन्तान-निग्रहके आन्दोलनका काम आ जाता है; पर यह काम अगर स्वयं आत्माकी ही पुन: व्यवस्था पर छोड़ दिया जाय और बाह्य अनुशासन द्वारा—आत्म-संयमके माने इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं—तो हमें यह आशा नहीं होती कि उससे जिन उद्देश्योंकी पूर्ति होनी चाहिए

उन सबको वह सिद्ध कर सकेगा। न इससे बिना सुदृढ़ मनोवैज्ञानिक आधारके सन्तति-निग्रह ही हो सकता है।

"अपनी बात को समाप्त करनेसे पहले मैं यह और कहूंगा कि आत्मसंयम या ब्रह्मचर्यका महत्त्व मैं किसी प्रकार कम नहीं करना चाहता। वैषयिक नियंत्रणको पूर्णतापर ले जानेवाली कलाके रूपमें मैं हमेशा उसकी सराहना करूंगा; लेकिन जैसे अन्य कलाओंकी सम्पूर्णता हमारे जीवनमें, (और नीत्सेके अनुसार) हमारे सारे जीवनमें, कोई हस्तक्षेप नहीं करती, वैसे ही ब्रह्मचर्यके आदर्शको मैं दूसरी बातोंपर प्रभुत्व पानेका सहारा नहीं बनने दूंगा—जनसंख्या-वृद्धि-जैसी समस्याओंके हल करनेका साधन तो वह और भी कम है। हमने इसका कैसा हौवा बना डाला है। युद्धकालीन बच्चोंके बारेमें तो हम जानते ही हैं। जिन सैनिकोंने अपना खून बहाकर अपने देशवासियोंके लिए समरांगणमें विजय प्राप्त की, क्या हम इसीलिए उन्हें इसका श्रेय न देंगे कि उन्होंने रणक्षेत्रमें भी बच्चे पैदा कर डाले? नहीं, कोई ऐसा नहीं करेगा। मैं समझता हूं कि इन बातोंको मद्दे-नजर रखकर ही शास्त्रों (प्रश्नोपनिषद्) में यह कहा गया है कि 'ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यते' अर्थात् केवल रात्रिमें ही… …(याने दिनके असाधारण समयको छोड़कर) सहवास किया जाय तो वह ब्रह्मचर्य ही जैसा है। यहां साधारण वैषयिक जीवनको भी ब्रह्मचर्यके ही समान बताया गया है, उसमें इतनी कठोरता तो जीवनके विविध रूपोंमें उलट-फेर करनेके फलस्वरूप ही आई है।"

जो भी कोई ऐसी चीज हो, जिसमें कोरा शब्दाडम्बर, गालीगलौज या आरोप-आक्षेप न हो उसे मैं सहर्ष प्रकाशित करूंगा, जिससे पाठकोंके सामने समस्याके दोनों पहलू आ जायं, और वे अपने आप किसी निर्णयपर पहुंच सकें। इसलिए इस पत्रको मैं बड़ी खुशीके साथ प्रकाशित करता हूं। खुद मैं भी यह जाननेके लिए उत्सुक हूं कि जिस बातको विज्ञान-सिद्ध और हितकारी होनेका दावा किया जाता है तथा अनेक प्रमुख व्यक्ति जिसका समर्थन करते हैं, उसका उज्ज्वल पक्ष देखनेकी कोशिश करनेपर भी मुझे वह क्यों इतनी खलती है?

लेकिन मेरे सन्तोषकी कोई ऐसी बात सिद्ध नहीं होती, जिससे मुझे इसका विश्वास हो जाय कि विवाहित जीवनमें मैथुन स्वयं कोई अच्छाई है और उसे करनेवालोंको उससे कोई लाभ होता है। हां, अपने खुदके तथा दूसरे अनेक अपने मित्रोंके अनुभवके आधारपर इससे विपरीत बात मैं जरूर कह सकता हूं। हममेंसे किसीने भी मैथुन द्वारा कोई मानसिक, आध्यात्मिक या शारीरिक उन्नति की हो, यह मैं नहीं जानता। क्षणिक उत्तेजन और सन्तोष तो उससे अवश्य मिला; लेकिन उसके बाद ही थकावट भी जरूर हुई और जैसे ही उस थकावटका असर मिटा नहीं कि मैथुनकी इच्छा तुरन्त ही फिर जागृत हो गई। हालांकि मैं सदासे जागरूक रहा हूं, फिर भी अच्छी तरह मुझे याद है कि इस विकारसे मेरे कामों में बड़ी बाधा पड़ी है। इस कमजोरीको समझकर ही मैंने आत्म-संयमका रास्ता पकड़ा, और इसमें सन्देह नहीं कि तुलनात्मक रूपसे काफी लम्बे-लम्बे समय तक मैं जो बीमारीसे बचा रहता हूं और शारीरिक एव मानसिक रूपसे जो इतना अधिक और विचित्र प्रकारका काम कर सकता हूं कि जिसे देखनेवालोंने अद्भुत बतलाया है, उसका कारण मेरा यह आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य-पालन ही है।

मुझे भय है कि उक्त सज्जनने जो-कुछ पढ़ा उसका उन्होंने गलत अर्थ लगाया है। मनुष्य कलाकार और उत्पादक है इसमें तो कोई शक नहीं; सुन्दरता और रंग-बिरंगापन भी उसे चाहिए ही; लेकिन मनुष्यकी कलात्मक और उत्पादक प्रवृत्तिने अपने सर्वोत्तम रूपमें उसे यही सिखाया है कि वह आत्म-संयममें कलाका और अनुत्पादक (जो सन्तानोत्पत्तिके लिए न हो) ऐसे सहवासमें अ-सुन्दरताका दर्शन करे। उसमें कलात्मकताकी जो भावना है, उसने उसे विवेकपूर्वक यह जाननेकी शिक्षा दी है कि विविध रंगोंका चाहे-जैसा मिश्रण सौन्दर्यका चिह्न नहीं है, और न हर तरहका आनन्द ही अपने-आपमें कोई अच्छाई है। कलाकी ओर उसकी जो दृष्टि है उसने उसे यह सिखाया है कि वह उपयोगितामें ही आनन्दकी खोज करे, याने वही आनन्दोपभोग करे, जो हितकर हो। इस प्रकार अपने विकासके प्रारम्भिक कालमें ही उसने यह जान लिया था कि खानेके लिए ही उसे

खाना नहीं खाना चाहिए, जैसा कि हममेंसे कुछ लोग अभी भी करते हैं; बल्कि जीवन ठिका रहे इसलिए खाना चाहिए। बादमें उसने यह भी जाना कि जीवित रहनेके लिए ही उसे जीवित नहीं रहना चाहिए, बल्कि अपने सहजीवियों और उनके द्वारा उस प्रभुकी सेवाके लिए उसे जीना चाहिए, जिसने उसे तथा उन सबको बनाया या पैदा किया है। इसी प्रकार जब उसने विषय-सहवास या मैथुनजनित आनन्दकी बातपर विचार किया तो उसे मालूम पड़ा कि अन्य प्रत्येक इन्द्रियकी भांति जननेन्द्रियका भी उपयोग दुरुपयोग होता है और इसका उचित कार्य याने सदुपयोग इसीमें है कि केवल प्रजनन या सन्तानोत्पत्तिके ही लिए सहवास किया जाय इसके सिवा और किसी प्रयोजनसे किया जानेवाला सहवास अ-सुन्दर है और ऐसा करने वाला व्यक्ति और उसकी नस्लके लिए उसके बहुत भयंकर परिणाम हो सकते हैं। मैं समझता हूं, अब इस दलीलको और आगे बढ़ानेकी कोई जरूरत नहीं।

उक्त सज्जनका यह कहना ठीक है कि मनुष्य आवश्यकतासे प्रेरित होकर कलाकी रचना करता है। इस प्रकार आवश्यकता न केवल आविष्कारकी जननी है; बल्कि कलाकी भी जननी है। इसलिए जिस कलाका आधार आवश्यकता नहीं है, उससे हमें सावधान रहना चाहिए।

साथ ही, अपनी हरेक इच्छाको हमें आवश्यकता का नाम नहीं देना चाहिए। मनुष्यकी स्थिति तो एक प्रकारसे प्रयोगात्मक है। इस बीच आसुरी और दैवी दोनों प्रकारकी शक्तियां अपने खेल खेलती हैं। किसी भी समय वह प्रलोभनका शिकार हो सकता है। अतः प्रलोभनसे लड़ते हुए, उनका शिकार न बननेके रूपमें उसे अपना पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहिए। जो अपने माने हुए बाहरी दुश्मनोंसे तो लड़ता है; किन्तु अपने अन्दरके विविध शत्रुओंके आगे अंगुली भी नहीं उठा सकता या उन्हें अपना मित्र समझनेकी गलती करता है, वह योद्धा नहीं है। "उसे युद्ध तो करना ही चाहिए"—लेकिन उक्त सज्जनका यह कहना गलत है "कि उसे भी उसने (मनुष्यने) एक महान् कलाके ही रूपमें परिणत कर दिया है।" क्योंकि युद्धकी कला तो हमने अभी शायद ही सीखी हो। हमने तो झूठे युद्धको

उसी तरह सच्चा मान लिया है, जैसे हमारे पूर्व पुरुषोंने बलिदानका ग़लत अर्थ लगातार बजाय अपनी दुर्वासनाओंके, बेचारे निर्दोष पशुओंका बलिदान शुरू कर दिया। अबीसीनियाकी सीमामें आज जो-कुछ हो रहा है, उसमें निश्चय ही न तो कोई सौन्दर्य है और न कोई कला। उक्त सज्जनने उदाहरणके लिए जो नाम चुने हैं, वे भी (अपने) दुर्भाग्यसे ठीक नहीं चुने; क्योंकि रूसो, रस्किन, थोरो और टॉलस्टॉय तो अपने समयमें प्रथम श्रेणीके कलाकार थे और उनके नाम हममेंसे अनेकोंके मरकर भुला दिये जानेके बाद भी वैसे ही अमर रहेंगे।

'प्रकृति' शब्दका उक्त सज्जनने जो उपयोग किया है, वह भी ठीक नहीं किया मालूम पड़ता है। प्रकृतिका अनुसरण या अध्ययन करनेके लिए जब मनुष्यको प्रेरित किया जाता है तो उनसे यह नहीं कहा जाता कि वे जंगली कीड़े-मकोड़ों या शेरकी तरह काम करने लगें; बल्कि यह अभिप्राय होता है कि मनुष्यकी प्रकृतिका उसके सर्वोत्तम रूपमें अध्ययन किया जाय। मेरे ख़यालसे वह सर्वोत्तम रूप मनुष्यका नई सृष्टि पैदा करनेकी प्रकृति है, या जो-कुछ भी वह हो, उसीके अध्ययनके लिए कहा जाता है, लेकिन शायद इस बातको जाननेके लिए काफी प्रयत्नकी आवश्यकता है। पुराने लोगोंके उदाहरण देना आजकल ठीक नहीं है। उक्त सज्जनसे मेरा कहना है कि नीत्से या प्रश्नोपनिषद्को बीचमें घुसेड़ना व्यर्थ है। मेरे लिए तो इस बारेमें अब उद्धरणोंका कोई जरूरत नहीं रही है। देखना यह है कि जिस बारेमें हम चर्चा कर रहे हैं, उसमें तर्क क्या कहता है? प्रश्न यह है कि हम जो यह कहते हैं कि जननेन्द्रियका सदुपयोग केवल इसीमें है कि प्रजनन या सन्तानोत्पत्तिके लिए ही उसका उपयोग किया जाय और उसका अन्य कोई उपयोग दुरुपयोग ही है, यह बात ठीक है या नहीं? अगर यह ठीक है, तो फिर दुरुपयोगको रोककर सदुपयोग पर जानेमें कितनी ही कठिनाई क्यों न हो, उससे वैज्ञानिक शोधकको घबराना नहीं चाहिए।

हरिजन सेवक,
४ अप्रैल, १९३६

: १४ :

सुधारक बहनोंसे

एक बहनसे गम्भीरतापूर्वक मेरी जो बातचीत हुई उससे मुझे भय होता है कि कृत्रिम सन्तति-निरोध-सम्बन्धी मेरी स्थितिको अभीतक लोगोंने काफी अच्छी तरह नहीं समझा। कृत्रिम सन्तति-निरोधके साधनोंका मैं जो विरोध करता हूं वह इस कारण नहीं कि वे हमारे यहां पश्चिमसे आये हैं। कुछ पश्चिमी चीजें तो हमारे लिए वैसी ही उपयोगी हैं जैसी कि वे पश्चिमके लिए हैं और कृतज्ञताके साथ मैं उनका प्रयोग करता हूं। अतएव कृत्रिम सन्तति-निरोधके साधनोंसे मेरा विरोध तो केवल उनके गुण-दोषकी दृष्टिसे ही है।

मैं यह मानता हूं कि कृत्रिम सन्तति-निग्रहके साधनोंका प्रतिपादन करनेवालोंमें जो सबसे अधिक बुद्धिमान हैं वे उन्हें उन स्त्रियोंतक ही मर्यादित रखना चाहते हैं जो सन्तानोत्पत्तिसे बचते हुए अपनी और अपने पतियोंकी विषय-वासनाको तृप्ति करना चाहती हैं; लेकिन मेरे खयालमें, मानव-प्राणियोंमें यह इच्छा अस्वाभाविक है और इसको तृप्त करना मानव-कुटुम्बकी आध्यात्मिक गतिके लिए घातक है। इसके खिलाफ अन्य बातोंके साथ अक्सर पेन के लार्ड डासनकी यह राय पेश की जाती है :

"विषय-सम्बन्धी प्रेम संसारकी एक प्रचण्ड और प्रधान शक्ति है। हमारे अन्दर यह भावना इतनी तीव्र, मौलिक और बलवती होती है कि हमें इसके प्रभावको तथ्य-रूपमें स्वीकार करना ही होगा, आप इसका दमन नहीं कर सकते। आप चाहें तो इसे अच्छे रूपमें परिणत कर सकते हैं; किन्तु इसके प्रवाहको रोक नहीं सकते। और यदि इसके प्रवाहका स्रोत अपर्याप्त या जरूरतसे ज्यादा प्रतिबन्ध-युक्त हुआ तो यह अनियमित

स्रोतोंसे निकल पड़ेगा। आत्म-संयममें हानिकी सम्भावना रहती है। और यदि किसी जातिमें विवाह होनेमें कठिनाई होती हो या बहुत देरमें जाकर विवाह होते हों तो उसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि अनुचित संबन्धों की वृद्धि हो जायगी। इस बातको तो सभी मानते हैं कि शारीरिक सहवास तभी होना चाहिए जब मन और आत्मा भी उसके अनुकूल हों और इस बातपर भी सब सहमत हैं कि सन्तानोत्पत्ति ही उसका प्रधान उद्देश्य है; लेकिन क्या यह सच नहीं है कि बारम्बार हम जो सम्भोग करते हैं वह हमारे प्रेमका शारीरिक प्रदर्शन ही होता है, जिसमें सन्तानोत्पत्तिका कोई विचार या इरादा नहीं होता। तो क्या हम सब गलत ही करते आ रहे हैं? या, यह बात है कि धर्मका हमारे वास्तविक जीवनसे आवश्यक सम्पर्क नहीं है, जिसके कारण उसके और सर्वसाधारणके बीच खाई पड़ गई है? जबतक किसी सत्ता या शासकका, और धर्माधिकारियोंको भी मैं इन्हींमें शुमार करता हूं, रुख नौजवानोंके प्रति अधिक स्पष्ट, अधिक साहस-पूर्ण और वास्तविकताके अधिक अनुकूल न होगा तबतक उनकी वफा-दारी कभी प्राप्त नहीं होगी।

"फिर सन्तानोत्पत्ति के अलावा भी विषय-प्रेमका अपना प्रयोजन है। विवाहित जीवनमें स्वस्थ और सुखी रहनेके लिए यह अनिवार्य है। वैषयिक सहवास यदि परमेश्वरकी देन है तो उसके उपयोगका ज्ञान भी प्राप्त करनेके लायक है। अपने क्षेत्रमें यह इस तरह पैदा किया जाना चाहिए जिससे न केवल एक की; बल्कि सम्भोग करने वाले स्त्री-पुरुष दोनोंकी शारीरिक तृप्ति हो। इस तरह एक-दूसरेको जो शारीरिक आनन्द प्राप्त होगा उससे उन दोनोंमें एक स्थायी बन्धन स्थापित होगा, उससे उनका विवाह-सम्बन्ध स्थिर होगा। अत्यधिक विषय-प्रेमसे उतने विवाह असफल नहीं होते जितने कि अपर्याप्त और बेढंगे वैषयिक प्रेमसे होते हैं। काम-वासना अच्छी चीज है; ऐसे अधिकांश व्यक्ति, जो किसी भी रूपमें अच्छे हैं, काम-भावना रखनेमें समर्थ हैं। काम-भावना-विहीन विषय-प्रेम तो बिलकुल बेजान चीज है। दूसरी ओर ऐयाशी पेटूपनके समान एक शारी-रिक अति है। अब चूंकि 'प्रार्थना-पुस्तक' के परिवर्द्धन पर विचार हो रहा है,

मैं यह बड़े आदरके साथ सुझाना चाहता हूं कि उसके विवाह-विधानमें यह और जोड़ दिया जाय कि 'स्त्री और पुरुषके पारस्परिक प्रेमकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति ही विवाहका उद्देश्य है।'

"अब मैं यह सब छोड़कर सन्तति-निग्रहके सबसे जरूरी प्रश्नपर आता हूं। सन्तति-निग्रह स्थायी होनेके लिए आया है। वह तो अब जम चुका है...और अच्छा हो या बुरा, उसे हमको स्वीकार करना ही होगा। इन्कार करनेसे उसका अन्त नहीं होगा। जिन कारणोंसे प्रेरित होकर अभिभावक लोग सन्तति-निग्रह करना चाहते हैं, उनमें कभी-कभी तो स्वार्थ होता है; लेकिन वे बहुधा आदरणीय और उचित ही होते हैं। विवाह करके अपनी सन्तानको जीवन-संघर्षके योग्य बनाना, मर्यादित आय, जीवन-निर्वाहका खर्च, विविध करोंका बोझ—ये सब इसके लिए जोरदार कारण हैं। और फिर शिक्षितवर्गके अन्दर स्त्रियां अपने पतियोंके काम-धन्धों तथा सार्वजनिक जीवनमें भाग लेनेकी भी इच्छा करती हैं। यदि वे बार-बार गर्भवती होती रहें तो वे इच्छाएं पूरी नहीं हो सकतीं। यदि सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोंका सहारा न लिया जाय तो देरमें विवाह करनेका तरीका अख्तियार करना पड़ेगा; लेकिन ऐसा होनेपर उसके साथ अनुचित (गुप्त) रूपसे अपनी विषयेच्छा तृप्त करनेके विविध दुष्परिणाम सामने आयगे। एक ओर तो हम ऐसे अनुचित सम्बन्धोंकी बुराई करें और दूसरी ओर विवाहके मार्गमें बाधाएं उपस्थित करें तो उससे कोई लाभ न होगा। बहुत-से लोग कहते हैं "सम्भव है कि सन्तति-निग्रह करना ठीक हो सकता है वह तो स्वेच्छापूर्ण संयम ही है; लेकिन ऐसा संयम या तो व्यर्थ होगा या यदि उसका कोई असर पड़ा तो वह अव्यावहारिक और स्वास्थ्य व सुखके लिए हानिकारक होगा।' परिवारके लिए, मान लो, हम चार बच्चोंकी मर्यादा बना लें, तो यह विवाहित स्त्री-पुरुषके लिए एक तरहका संयम ही होगा, जो देर-देरमें संतानोत्पत्ति होनेके कारण ब्रह्मचर्यके समान ही माना जायगा। और जब हम इस बातपर ध्यान दें कि आर्थिक कठिनाईके कारण विवाहित जीवनके प्रारम्भिक वर्षोंमें बहुत कठोर संयम करना पड़ेगा, जब कि विषयेच्छा बहुत प्रबल रहती है, तो मैं

कहता हूं कि वह इच्छा इतनी तीव्र होगी कि अधिकांश व्यक्तियोंके लिए उसका दमन करना असंभव होगा और यदि उसे ज़बर्दस्ती दबानेका यत्न किया तो स्वास्थ्य और सुखपर उसका बहुत बड़ा असर पड़ेगा और नैतिकताके लिए भी वह बहुत खतरनाक होगा। यह तो बिलकुल अस्वाभाविक बात है। यह तो वही बात हुई कि प्यासे आदमीके पास पानी रखकर उससे कहा जाय कि खबरदार, इसे पीना मत। नहीं, संयम द्वारा सन्तति-निग्रहसे कोई लाभ न होगा और यदि इसका असर हुआ भी तो वह विनाशक होगा।

"यह तो अस्वाभाविक और मूलतः अनैतिक बात कही जाती है। सभ्यताका तो काम ही यह है कि प्राकृतिक शक्तियोंको वशमें करके उन्हें इस तरह परिणत कर लिया जाय कि मनुष्य अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग कर सके। बच्चा आसानीसे पैदा करनेके लिए जब पहले-पहल औजारों (Anaesthetics) का प्रयोग शुरू हुआ तो यही शोर मचाया गया था कि ऐसा करना अस्वाभाविक और अधार्मिक काम है; क्योंकि प्रसव-पीड़ा सहनेके लिए ही तो भगवान्ने स्त्रियोंको बनाया है। यही बात कृत्रिम साधनोंसे सन्तति-निग्रह करनेकी है, उसमें भी इससे अधिक कोई अस्वाभाविकता नहीं है। उनका प्रयोग तो अच्छा ही है, अलबत्ता दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। अंतमें क्या मैं यह प्रार्थना करूं कि धर्माधिकारी लोग इस प्रश्नका विचार करते समय इन पुरातन परम्पराओंकी परवाह नहीं करेंगे जो व्यर्थ-सी हो गई हैं; बल्कि ऐसे ही अन्य कुछ प्रश्नोंकी तरह, नये संसारकी आवश्यकताओं और आधुनिक ज्ञानके प्रकाशमें ही इस प्रश्नपर विचार करेंगे?"

यह कितने बड़े डॉक्टर हैं इससे इन्कार नहीं किया जा सकता; लेकिन डॉक्टरके रूपमें उनका जो बड़प्पन है, उसके लिए काफी आदरका भाव रखते हुए भी मैं इस बातपर सन्देह करनेका साहस करता हूं कि उनका यह कथन कहांतक ठीक है, खासकर उस हालतमें जबकि यह उन स्त्री-पुरुषोंके अनुभवके विपरीत है, जिन्होंने आतम-संयमका जीवन बिताया है; किन्तु उससे उनकी कोई नैतिक या शारीरिक हानि नहीं हुई। वस्तुतः बात यह है कि डॉक्टर लोग आमतौर पर उन्हीं लोगोंके सम्पर्कमें आते हैं

जो स्वास्थ्य के नियमोंकी अवहेलना करके कोई-न-कोई बीमारी मोल ले लेते हैं। इसलिए बीमारीके अच्छा होनेके लिए क्या करना चाहिए, यह तो वे अक्सर सफलताके साथ बता देते हैं; लेकिन यह बात वे हमेशा नहीं जानते कि स्वस्थ स्त्री-पुरुष किसी खास दिशामें क्या कर सकते हैं? अतएव विवाहित स्त्री-पुरुषोंपर संयमके जो असर पड़नेकी बात लार्ड डासन कहते हैं उसे अत्यन्त सावधानीके साथ ग्रहण करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि विवाहित स्त्री-पुरुष अपनी विषय-तृप्तिको स्वतः कोई बुराई नहीं मानते, उनकी प्रवृत्ति उसे वैध माननेकी ही है; लेकिन आधुनिक युगमें तो कोई बात स्वयंसिद्ध नहीं मानी जाती और हरेक चीजकी बारीकीसे छान-बीन की जाती है। अतः यह मानना सरासर गलती होगी कि चूंकि अबतक हम विवाहित जीवनमें विषयभोग करते रहे हैं इसलिए ऐसा करना ठीक ही है या स्वास्थ्यके लिए उसकी आवश्यकता है। बहुत-सी पुरानी प्रथाओंको हम छोड़ चुके हैं और उसके परिणाम अच्छे ही हुए हैं। तब इस खास प्रथाको ही उन स्त्री-पुरुषोंके अनुभवकी कसौटी पर क्यों न कसा जाय, जो विवाहित होते हुए भी एक दूसरेकी सहमतिसे संयमका जीवन व्यतीत कर रहे हैं और उससे नैतिक तथा शारीरिक दोनों तरहका लाभ उठा रहे हैं?

लेकिन मैं तो, इसके अलावा, विशेष आधारपर भी भारतमें सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोंका विरोधी हूं। भारतमें नवयुवक यह नहीं जानते कि विषय-दमन क्या है? इसमें उनका कोई दोष नहीं है। छोटी उम्रमें ही उनका विवाह हो जाता है, यह यहांकी प्रथा है, और विवाहित जीवनमें संयम रखनेको उनसे कोई नहीं कहता। माता-पिता तो अपने नाती-पोते देखनेको उत्सुक रहते हैं। बेचारी बाल-पत्नियोंसे उसके आस-पास वाले यही आशा करते हैं कि जितनी जल्दी हो वे पुत्रवती हो जायं। ऐसे वातावरणमें सन्तति-विरोधक कृत्रिम साधनोंसे तो कठिनाइयां और बढ़ेंगी ही। जिन बेचारी लड़कियोंसे यह आशा की जाती है कि वे बच्चे पैदा तो न करें, पर विषय-भोग किये जायं, इसीमें उनका भला है। और इस दुहरे उद्देश्यकी सिद्धिके लिए उन्हें सन्तति-निरोधके कृत्रिम साधनोंका सहारा

लेना होगा ! ! !

मैं तो विवाहित बहनोंके लिए इस विद्याको बहुत घातक समझता हूं। मैं यह नहीं मानता कि पुरुषकी तरह स्त्रीकी काम-वासना भी अदम्य होती है। मेरी समझमें, पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीके लिए आत्म-संयम करना ज्यादा आसान है। हमारे देशमें जरूरत बस इसी बातकी है कि स्त्री अपने पति तकसे 'न' कह सके, ऐसी सुशिक्षा स्त्रियोंको मिलनी चाहिए। स्त्रियोंको हमें यह सिखा देना चाहिए कि वे अपने पतियोंके हाथकी कठपुतली या औज़ार-मात्र बन जायं, यह उनके कर्तव्यका अंग नहीं है। और कर्तव्यकी ही तरह उनके अधिकार भी हैं। जो लोग सीताको रामकी आज्ञानुवर्त्तिनी दासीके रूपमें ही देखते हैं वे इस बातको महसूस नहीं करते कि उनमें स्वाधीनताकी भावना कितनी थी और राम हरेक बातमें उनका कितना खयाल रखते थे। भारतकी स्त्रियोंमें सन्तति-निरोधके कृत्रिम साधन अख्तियार करनेके लिए कहना तो बिलकुल उलटी बात है। सबसे पहले तो उन्हें मानसिक दासतासे मुक्त करना चाहिए, उन्हें अपने शरीरकी पवित्रताकी शिक्षा देकर राष्ट्र और मानवताकी सेवामें कितना गौरव है, इस बातकी शिक्षा देनी चाहिए। यह सोच लेना ठीक नहीं है कि भारतकी स्त्रियोंका उद्धार ही नहीं हो सकता, और इसलिए सन्तानोत्पत्तिमें रुकावट डालकर अपने रहे-सहे स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए उन्हें सिर्फ सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधन ही सिखा देने चाहिएं।

जो बहनें सचमुच उन स्त्रियोंके दुःखसे दुखी हैं, जिन्हें इच्छा हो या न हो फिर भी बच्चोंके झमेलेमें पड़ना पड़ता है, उन्हें अधीर नहीं होना चाहिए। वे जो-कुछ चाहती हैं, वह एकदम तो कृत्रिम सन्तति-निरोधके साधनोंके पक्षमें आन्दोलनसे भी नहीं होनेवाला है। हरेक उपायके लिए सवाल तो शिक्षाका ही है। इसलिए मेरा कहना यही है कि वह हो अच्छे ढंगकी।

हरिजन सेवक,

२ मई, १६३६

: १५ :

फिर वही संयमका विषय

एक सज्जन लिखते हैं :

"इन दिनों आपने ब्रह्मचर्यपर जो लेख लिखे हैं, उनसे लोगोंमें खलबली-सी मच गई है। जिनकी आपके विचारोंके साथ सहानुभूति है उन्हें भी लम्बे अर्सेतक संयम रख सकना मुश्किल पड़ रहा है। उनकी यह दलील है कि आप अपना ही अनुभव और अभ्यास सारी मानव-जातिपर लागू कर रहे हैं; परन्तु आपने खुद भी तो कबूल किया है कि आप पूरे ब्रह्मचारीकी शर्तें पूरी नहीं कर सकते; क्योंकि आप स्वयं विकारसे खाली नहीं हैं और चूंकि आप यह भी मानते हैं कि दम्पतिको संतानकी संख्या सीमित रखनेकी जरूरत है, इसलिए अधिकांश मनुष्योंके लिए तो एक यही व्यावहारिक उपाय है कि वे संतति-निरोधके कृत्रिम साधन काममें लावें।"

मैं अपनी मर्यादाएं स्वीकार कर चुका हूं। इस विवादमें तो ये ही मेरे गुण हैं। कारण, मेरी मर्यादाओंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मैं भी अधिकांश मनुष्योंकी भांति दुनियावीकी आदमी हूं और असाधारण गुणवान् होनेका मेरा दावा भी नहीं है। मेरे संयमका हेतु भी बिलकुल मामूली था। मैं तो देश या मनुष्य-समाजकी सेवाके खयालसे सन्तान-वृद्धि रोकना चाहता था। देश या समाजकी सेवाकी बात दूरकी है। इसकी अपेक्षा बड़े कुटुम्बका पालन न कर सकना संतति-नियमनके लिए अधिक प्रबल कारण होना चाहिए। वर्तमान दृष्टिकोणसे इस पैंतीस वर्षके संयममें मुझे सफलता मिली है। फिर भी मेरा विकार नष्ट नहीं हुआ है और उसके विषयमें मुझे आज भी जागरूक रहनेकी जरूरत है। इससे भलीभांति सिद्ध है कि मैं बहुत-कुछ साधारण मनुष्य हूं। इसलिए मेरा कहना

है कि जो बात मेरे लिए सम्भव हुई है वही दूसरे किसी भी प्रयत्नशील मनुष्यके लिए संभव हो सकती है।

कृत्रिम उपायोंके समर्थकोंके साथ मेरा झगड़ा इस बातपर है कि वे यह मान बैठे हैं कि मामूली मनुष्य संयम रख ही नहीं सकता। कुछ लोग तो यहांतक कहते हैं कि यदि वह समर्थ हो भी तो उसे संयम नहीं रखना चाहिए। ये लोग अपने क्षेत्रमें कितनेभी बड़े आदमी हों, मैं अत्यन्त विनम्रता किन्तु विश्वासके साथ कहूंगा कि उन्हें इस बात-का अनुभव नहीं है कि संयमसे क्या-क्या हो सकता है! उन्हें मानवीय आत्माके मर्यादित करनेका कोई हक नहीं है। ऐसे मामलोंमें मेरे जैसे एक आदमीकी निश्चित गवाही भी, यदि वह विश्वस्त हो, तो न केवल अधिक मूल्यवान है; बल्कि निर्णायक भी है। सिर्फ इसी वजहसे कि मुझे लोग 'महात्मा' समझते हैं, मेरी गवाहीको निकम्मी करार दे देना गम्भीर खोजकी दृष्टिसे उचित नहीं है।

परन्तु एक बहनकी दलील और भी जोरदार है। उनके कहनेका मतलब यह है—"हम कृत्रिम उपायोंके समर्थक लोग तो हाल हीमें सामने आये हैं। मैदान आप संयमके समर्थकोंके हाथमें पीढ़ियोंसे, शायद हजारों वर्षोंसे, रहा है, तो आप लोगोंने क्या कर दिखाया? क्या दुनियाने संयम-का सबक सीख लिया है? बच्चोंके भारसे लदे हुए परिवारोंकी दुर्दशा रोकनेके लिए आप लोगोंने क्या किया है? आहत माताओंकी पुकार-को आप लोगोंने सुना है? आइए, अब भी मैदान आप लोगोंके लिए खाली है। आप संयमका समर्थन करते रहिए, हमें इसकी चिन्ता नहीं है, और अगर आप पतियोंकी जबर्दस्तीसे स्त्रियोंको बचा सकें तो हम आपकी सफलता भी चाहेंगे, मगर आप हमारे तरीकोंकी निन्दा क्यों करते हैं? हम तो मनुष्यकी साधारण कमजोरियों और आदतोंके लिए गुंजाइश रखकर चलते हैं और हम जो उपाय करते हैं अगर उनका ठीक-ठीक प्रयोग किया जाय, तो वे करीब-करीब अचूक साबित होते हैं।"

इस व्यंगमें स्त्री-हृदयकी पीड़ा भरी हुई है। जो कुटुम्ब बच्चोंकी बढ़ती हुई संख्याके मारे सदा दरिद्र रहते हैं, उनके लिए इस बहनका

हृदय दयासे भर गया है। यह सभी जानते हैं कि मानवीय दु:खकी पुकार पत्थरके दिलोंको भी पिघला देती है। भला यह पुकार उच्चात्मा बहनोंको प्रभावित किये बिना कैसे रह सकती है ? पर अगर हम भावावेशमें वह जायं और डूबतेकी तरह किसी भी तिनकेका सहारा ढूंढने लगें तो ऐसी पुकार हमें आसानीसे गुमराह भी कर सकती है।

हम ऐसे जमानेमें रह रहे हैं, जिसमें विचार और उनके महत्त्व बहुत जल्दी-जल्दी बदल रहे हैं। धीरे-धीरे होनेवाले परिणामोंसे हमको संतोष नहीं होता। हमें अपने इन सजातीय, बल्कि केवल अपने ही देशकी भलाईसे तसल्ली नहीं होती। हमें सारे मानव-समाजका खयाल होता है, मानवताकी उद्देश्य-सिद्धिमें यह कम सफलता नहीं है।

परन्तु मानवीय दु:खोंका इलाज धीरज छोड़नेसे नहीं होगा और न सब पुरानी बातोंको सिर्फ पुरानी होनेकी वजहसे छोड़ देनेसे होगा। हमने पूर्व जन्ममें भी वे ही स्वप्न देखे थे जो आज हमें उत्साहसे अनुप्राणित कर रहे हैं। शायद उन स्वप्नोंमें इतनी स्पष्टता न रही हो। यह भी संभव है कि एक ही प्रकारके दु:खोंका जो उपाय उन्होंने बताया वह हमारे मानसके आशातीत रूपमें विशाल हो जानेपर लागू हो। और मेरा दावा तो निश्चित अनुभवके आधार पर यह है कि जिस तरह सत्य और अहिंसा मुट्ठी-भर लोगोंके लिए ही नहीं हैं; बल्कि सारे मनुष्य-समाज के लिए रोजमर्राके कामकी चीजें हैं, ठीक उसी तरह संयम थोड़े-से महात्माओंके लिए नहीं; बल्कि सब मनुष्योंके लिए है। और जिस तरह बहुतसे आदमियोंके झूठे और हिंसक होनेपर भी मनुष्य समाजको अपना आदर्श नीचा नहीं करना चाहिए, उसी प्रकार बहुतसे या अधिकांश लोग भी संयमका संदेश स्वीकार न कर सकें तो इस विषयमें भी हमें अपना आदर्श नीचा नहीं करना चाहिए।

बुद्धिमान् न्यायाधीश वह है जो विकट मामला सामने होनेपर भी ग़लत फ़ैसला नहीं करता। लोगोंकी नजरोंमें वह अपनेको कठोर हृदय बन जाने देगा; क्योंकि वह जानता है कि कानूनको बिगाड़ देनेमें सच्ची दया नहीं है। हमें नाशवान शरीर या इन्द्रियोंकी दुर्बलताको भीतर

विराजमान अविनाशी आत्माकी दुर्बलता नहीं समझ लेना चाहिए। हमें तो आत्माके नियमानुसार शरीरको साधना चाहिए। मेरी विनम्र सम्मतिमें ये नियम थोड़े-से और अटल हैं और इन्हें सभी मनुष्य समझ और पाल सकते हैं। इन नियमोंको पालनेमें कम-ज्यादा सफलता मिल सकती है, पर ये लागू तो सभीपर होते हैं। अगर हममें श्रद्धा है तो उसे सिर्फ इसीलिए नहीं छोड़ देना चाहिए कि मनुष्य-समाजको अपने ध्येयकी प्राप्तिमें या उसके निकट पहुंचनेमें लाखों बरस लगेंगे। 'जवाहरलाल' की भाषामें, हमारी विचार-सरणी ठीक होनी चाहिए।

परन्तु उस बहनकी चुनौतीका जवाब देना तो बाक़ी ही रह गया। संयमवादी हाथ-पर-हाथ धरे नहीं बैठे हैं। उनका प्रचार-कार्य जारी है। जैसे कृत्रिम साधनोंसे उनके साधन भिन्न हैं, वैसे ही उनका प्रचारका तरीका अलग है, और होना चाहिए। संयमवादियोंको चिकित्सालयोंकी जरूरत नहीं है, वे अपने उपायोंका विज्ञापन भी नहीं कर सकते; क्योंकि यह कोई बेचने या दे देनेकी चीजें तो हैं नहीं। कृत्रिम साधनोंकी टीका करना और उनके उपयोगसे लोगोंको सचेत करते रहना इस प्रचार-कार्यका ही अंग है। उनके कार्यका रचनात्मक पक्ष तो सदा रहा ही है; किन्तु वह तो स्वभावतः ही अदृश्य होता है। संयमका समर्थन कभी बन्द नहीं किया गया है और इसका सबसे कारगर तरीका आचरणीय है। संयमका सफल अभ्यास करनेवाले सच्चे लोग जितने ज्यादा होंगे उतना ही यह प्रचार-कार्य अधिक कारगर होगा।

हरिजन सेवक,
३० मई, १९३६

: १६ :

संयम द्वारा सन्तति-निग्रह

निम्नलिखित पत्र मेरे पास बहुत दिनों पड़ा रहा :

"आजकल सारी दुनियामें सन्तति-निग्रहका समर्थन हो रहा है। हिन्दुस्तान भी उससे बाहर नहीं। आपके संयम-सम्बन्धी लेखोंको मैंने पढ़ा है। संयममें मेरा विश्वास है।

अहमदाबादमें थोड़े दिन पहले एक सन्तति-निग्रह-समिति स्थापित हुई है। ये लोग दवा, टिकिया, ट्यूब वगैरहका समर्थन करके स्त्रियोंको हमेशाके लिए संभोगवती करना चाहते हैं।

मुझे आश्चर्य होता है कि जीवनके आखिरी किनारे पर बैठे हुए लोग किसलिए प्रजाको निचोड़ डालनेकी हिमायत करते हैं!

इसके बजाय सन्तति-नियमन-समिति स्थापित की होती तो? आप गुजरात पधार रहे हैं, इसलिए मेरी ऊपरकी प्रार्थना ध्यानमें रखकर गुजरातके नारी-तेजको प्रकाश दीजियेगा।

आजके डाक्टर और वैद्य मानते हैं कि रोगियोंको संयमका पाठ सिखानेसे उनकी कमाई मारी जायगी और उन्हें भूखों मरना पड़ेगा।

इस प्रकार सन्तति-निग्रहने समाज बहुत गहरे और अंधेरे खड्डुमें चला जायगा। उसे अगर ऊपर और प्रकाशमें रहना है तो संयम को अपनाये बिना छुटकारा नहीं। बगैर संयमके मनुष्य कभी ऊंचा नहीं चढ़ सकेगा। इससे तो जितना व्यभिचार आज है, उससे भी अधिक बढ़ेगा। और फिर रोगका तो पूछना ही क्या?"

इस बीचमें मैं अहमदाबाद हो आया हूं, उपर्युक्त विषय पर तो मुझे वहां अपने विचार प्रकट करनेका अवसर मिला नहीं; पर लेखकके इस कथनको मैं अवश्य मानता हूं कि सन्तति-निग्रहका नियमन केवल

संयमसे ही सिद्ध किया जाय । दूसरी रीतिसे नियमन करनेमें अनेक दोष उत्पन्न होनेकी सम्भावना है । जहां इस नियमने घर कर लिया है, वहां दोष साफ दिखाई दे रहे हैं । इसमें कोई आश्चर्य नहीं, जो संयम-रहित नियमनके समर्थक इन दोषोंको नहीं देख सकते; क्योंकि संयम-रहित नियमनने नीतिके नामसे प्रवेश किया है ।

अहमदाबादमें जो समिति बनाई गई है उसके हेतुके विषयमें यह कहना ज्यादती है कि लेखकने जैसा लिखा है वह वैसा ही है; पर उसका हेतु चाहे जैसा हो, तो भी उसकी प्रवृत्तिका परिणाम तो अवश्य विषय-भोग बढ़ानेमें ही आना है । पानीको उंडेलें तो वह नीचे ही जायगा, इसी तरह विषय-भोग बढ़ानेवाली युक्तियां रची जायंगी तो उनसे वह भोग बढ़ेगा ही ।

इसी प्रकार डॉक्टर और वैद्य संयमका पाठ सिखायें तो उनकी कमाई मारी जायगी, इससे वे संयम नहीं सिखाते, ऐसा मानना भी ज्यादती है। संयमका पाठ सिखाना डॉक्टर-वैद्योंने अपना क्षेत्र आजतक माना नहीं; मगर डॉक्टर और वैद्य इस तरफ ढलते जा रहे हैं, इस बातके चिह्न जरूर नजर आते हैं । उनका क्षेत्र व्याधियोंके कारण शोधने और रोग मिटानेका है । अगर वे व्याधियोंके कारणोंमें असयम-स्वच्छंदताको अग्रस्थान न देंगे तो यह कहना चाहिए कि उनका दिवाला निकालनेका समय आ गया है । ज्यों-ज्यों जन-समाजकी समझ-शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसे, अगर रोग जड़-मूलसे नष्ट न हुआ तो सन्तोष होनेका नहीं और जबतक जन-समाज संयमकी ओर नहीं ढलेगा, व्याधियोंको रोकनेके नियमोंका पालन नहीं करेगा, तबतक आरोग्यकी रक्षा करना अशक्य है । यह इतना स्पष्ट है कि अन्तमें इसपर सभी कोई ध्यान देंगे, और प्रामाणिक डॉक्टर संयमके मार्ग पर अधिक-से अधिक जोर देंगे । संयम-रहित निग्रह भोग बढ़ानेमें अधिक-से-अधिक हाथ बंटायगा, इस विषयमें मुझे तो शंका नहीं। इसलिए अहमदाबादकी समिति अधिक गहरे उतरकर असंयमके भयंकर परिणामोंपर विचार करके स्त्रियोंको संयमकी सरलता और आवश्यकताका ज्ञान करानेमें अपने समयका उपयोग करे, तो आवश्यक परिणाम प्राप्त हो सकेगा, ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है । (हरिजन सेवक १२. ९. ३६.)

: १७ :

भ्रष्टताकी ओर

एक युवकने लिखा है :

"संसारका काया-कल्प करनेके लिए आप चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य सदाचारी हो जाय; पर मेरी समझमें ठीक-ठीक नहीं आ रहा है। आखिर इस सच्चरित्रतासे आपका क्या अभिप्राय है ? यह केवल स्त्री-पुरुषतक ही सीमित है या आपका मतलब मनुष्यके समस्त व्यवहारोंसे है ? मुझे तो शक है कि आपका मतलब केवल स्त्री-पुरुषके सम्बन्ध तक ही सीमित है, क्योंकि आप अपने पूंजीपति और जमींदार दोस्तोंको तो कभी-कभी यह बतानेका कष्ट नहीं करते कि वे कैसे अन्याय-पूर्वक मजदूरों और किसानों-का पेट काट-काटकर अपनी जेब भरते रहते हैं। वहां बेचारे युवक और युवतियोंकी चारित्रिक गलतियों पर उनकी निन्दा और ताड़ना करते हुए आप कभी थकते ही नहीं; और सदा उनके सामने ब्रह्मचर्य-व्रतका आदर्श उपस्थित करते रहते हैं। आपका यह दावा है कि आप भारतीय युवकोंके हृदयको जानते हैं। मैं किसीका प्रतिनिधि होनेका दावा नहीं करता; पर एक युवककी हैसियतसे ही मैं कहता हूं कि आपका यह दावा ग़लत है। मालूम होता है; आपको पता ही नहीं कि आजकलके मध्यम-वर्गके युवक-को किन परिस्थितियोंमेंसे गुजरना पड़ता है। बेकारीकी यह भयंकर चिंता, आदमीको पीस डालनेवाली ये सामाजिक रूढ़ियां और परम्पराएं, और सहशिक्षाका यह प्रलोभनकारी विघातक वातावरण, इनके बीच वह बेचारा आन्दोलित होता रहता है। नवीनता और प्राचीनताका यह संघर्ष उसकी सारी शक्तियोंको चूर-चूर कर रहा है और वह हारकर लाचार हो रहा है। मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि इन बेचारोंको थोड़ी रहमकी नजरसे देखिए, दया कीजिए। उन्हें कृपया अपने संन्यासाश्रमके नीति-

शास्त्रकी कसौटी पर न कसिये। मेरा तो खयाल है कि अगर दोनोंकी मर्जी हो और परस्पर प्रेम हो तो स्त्री-पुरुष, चाहे वे पति-पत्नी न भी हों तो भी आखिर जो चाहें कर सकते हैं। मेरी रायमें तो वह सदाचार ही होगा। और जबसे सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंका आविष्कार हुआ है, संयोग-व्यवस्थाकी दृष्टिसे विवाह-प्रथाका नैतिक आधार तो छिन्न-भिन्न हो गया है। अब तो केवल बच्चोंके पालन-पोषरण और रक्षा-भरके लिए उसका उपयोग रह गया है। ये बातें सुनकर शायद आपके दिलको चोट पहुंचेगी; पर मैं प्रार्थना करता हूं कि आजकलके युवकोंको भला-बुरा कहनेसे पहले कृपया अपनी तरुणाईको न भूलियेगा। आप खुद क्या कम कामी थे। कितना विषय-भोग करते थे? मैथुनके प्रति आपकी घृणा शायद आपकी इस अतिका ही परिणाम है। इसलिए अब आप ऐसे संन्यासी बन रहे हैं और इसमें आपको पाप-ही-पाप नजर आता है। अगर तुलना ही करने लगें तो मेरा तो ख्याल है कि आजकलके कई युवक इस विषयमें जरूर आपसे बेहतर साबित होंगे।"

इस तरहके अनेक पत्र मेरे पास आते हैं। इस युवकसे मेरा परिचय हुए लगभग तीन महीने हुए होंगे; पर इतने थोड़े समयमें ही जहांतक मुझे पता है, इसके अन्दर कई परिवर्तन हो चुके हैं। अब भी वह एक गम्भीर परिस्थितिमेंसे ही गुजर रहा है। ऊपरका उद्धरण तो उसके एक लम्बे पत्रका अंश है। उसके और भी पत्र मेरे पास हैं, जिन्हें अगर मैं चाहूं तो प्रकाशित कर सकता हूं, और उसे प्रसन्नता ही होगी; पर मैंने ऊपर जो अंश दिया है वह कितने ही युवकोंके विचारों और प्रवृत्तियों-को प्रगट करता है।

बेशक युवक और युवतियोंसे मुझे अवश्य सहानुभूति है। अपनी जवानीके दिनोंकी भी मुझे अच्छी तरह याद है। मुझे तो देशके युवकोंपर श्रद्धा है, इसीलिए तो उनकी समस्याओंपर विचार करते हुए मैं कभी थकता नहीं।

मेरे लिए तो नीति, सदाचार और धर्म एक ही बात है। आदमी अगर पूरी तरहसे सदाचारी हो; पर धार्मिक न हो, तो उसका जीवन बालू-

पर खड़े किये गए मकानकी तरह समझिए। इसी तरह भ्रष्ट चरित्रका धर्माचरण भी दूसरोंको दिखाने-भरके लिए और साम्प्रदायिक उपद्रवोंका कारण होता है। नीतिमें सत्य, अहिंसा ब्रह्मचर्य भी आ जाता है। मनुष्य-जातिने आजतक सदाचारके जितने नियमोंका पालन किया है वे सब इन तीन सर्व-प्रधान गुणोंसे सम्बन्धित या प्राप्त हो सकते हैं। और अहिंसा तथा ब्रह्मचर्य सत्यसे प्राप्त हो सकते हैं, जो मेरे लिए प्रत्यक्ष ईश्वर ही है।

संयम-हीन स्त्री या पुरुष तो गया-बीता समझिए। इन्द्रियोंको निरंकुश छोड़ देनेवालेका जीवन कर्णधार-हीन नावके समान है, जो निश्चय ही पहली चट्टानसे ही टकराकर चूर-चूर हो जायगी। इसलिए मैं सदैवसे संयम और ब्रह्मचर्यपर इतना जोर दे रहा हूं। पत्र-प्रेषकके इस कथनमें यहांतक तो जरूर सत्य है कि इन सन्तति-निरोधक साधनोंने स्त्री-पुरुषोंकी सम्बन्ध-विषयक समाजकी कल्पनाओंको काफी बदल दिया है; पर अगर संयोगको नीति-युक्त बनानेके लिए स्त्री-पुरुषकी—चाहे वे पति-पत्नी हों या न भी हों—केवल पारस्परिक अनुमति ही का होना काफ़ी हो, तब तो इसी युक्तिके अनुसार समान लिंग वाले दो व्यक्तियोंके बीचका सम्बन्ध भी नीतियुक्त बन जायगा और संयोग-व्यवस्था-सम्बन्धी सारी मर्यादा ही नष्ट हो जायगी। और तब तो निस्संदेह देशके युवकोंके भाग्यमें सिवा पराभव और दुर्दशाके और कुछ है ही नहीं। हिन्दुस्तान में ऐसे कई पुरुष और स्त्रियां हैं, जो विषय-वासनामें बुरी तरह फंसे हुए हैं; पर अगर उससे मुक्त हो सकें तो वे बहुत खुश हों। विषय-वासना संसारके किसी भी नशेसे अधिक मादक है। यह आशा करना बेकार है कि सन्तति-निरोधक साधनोंका व्यवहार सन्तति-नियमन तक ही सीमित रहेगा। हमारे जीवनके शुद्ध, सभ्य रहनेकी तभीतक आशा की जा सकती है, जबतक कि संयोगसे प्रजननका निश्चित सम्बन्ध है। यह मान लेनेपर अप्राकृतिक मैथुन तो बिलकुल उड़ जाता है, और कुछ हदतक पर-स्त्री-गमनपर भी नियन्त्रण हो जाता है। संयोगको उसके स्वाभाविक परिणामसे अलग करनेका अवश्यम्भावी परिणाम यही होगा कि समाजसे स्त्री-पुरुषकी

संयोग-सम्बन्धी सारी मर्यादा उठ जायगी और अगर सद्भाग्यसे अप्राकृतिक व्यभिचारको प्रत्यक्ष प्रोत्साहन न भी मिला तो भी समाजमें निर्गुण व्यभिचार ... बना नहीं रहेगा।

संयोग-समस्या पर विचार करते समय अपना व्यक्तिगत अनुभव कहना भी अनुचित न होगा। जिन पाठकोंने मेरी 'आत्म-कथा' नहीं पढ़ी है, वे मेरी विषय-लोलुपताके विषयमें कहीं इस पत्र-प्रेषककी तरह अपने विचार न बना लें। सबसे पहली बात तो यह है कि मैं चाहे कितना ही विषयी रहा होऊँ, मेरी विषय-वृत्ति अपनी पत्नीतक ही सीमित थी। फिर मैं एक बहुत बड़े परिवारमें रहता था, जिससे रातके कुछ घंटोंको छोड़कर हमें एकांत कभी मिलता ही न था। दूसरे तेईस वर्षकी अवस्थामें ही मैं इतना समझने लायक हो गया था कि महज भोगके लिए संयोग करना निरी बेवकूफी है और सन् १८८९ में, यानी जब मैं तीस सालका था, पूर्ण ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा लेनेका मैं निश्चय कर चुका था। मुझे संन्यासी कहना गलत होगा। मेरे जीवनके नियमात्मक आदर्श तो सारी मानवताके लिए ग्रहण करने योग्य हैं। मैंने उन्हें धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों मेरा जीवन-विकास होता गया, प्राप्त किया है। हरेक कदम मैंने पूरी तरह सोच-समझकर गहरे मननके बाद रखा है। ब्रह्मचर्य और अहिंसा दोनों मेरे व्यक्तिगत अनुभवसे मुझे प्राप्त हुए हैं, और अपने सार्वजनिक कर्तव्योंको पूरा करनेके लिए उनका पालन नितान्त आवश्यक था। दक्षिण अफ्रीकामें एक गृहस्थ, एक बैरिस्टर, एक समाज-सुधारक अथवा एक राजनीतिज्ञकी हैसियतसे मुझे जन-समूहसे पृथक् जीवन व्यतीत करना पड़ा है। उस जीवनमें अपने उपर्युक्त कर्त्तव्योंके पालनार्थ मेरे लिए यह जरूरी हो गया है कि मैं कठोर संयमका पालन करूं तथा अपने देश-भाइयों और यूरोप निवासियोंके साथ मनुष्यकी हैसियतसे व्यवहार करते हुए सत्य और अहिंसाका उतनी ही कड़ाईसे पालन करूं।

मैं एक मामूली आदमी हूं। मुझमें जरा भी विवेक नहीं, और योग्यता तो मामूलीसे कम है। मेरे इस अहिंसा और ब्रह्मचर्य व्रतके पालनमें भी कोई बधाई देने लायक बात नहीं; क्योंकि ये तो वर्षोंके निरन्तर प्रयाससे

मेरे लिए साध्य हुआ है। हर पुरुष और स्त्री साध्य कर सकते हैं, बशर्ते कि वे भी उसी प्रयास, आशा और श्रद्धासे चलें। श्रद्धाहीन कार्य अतल खाईकी थाह लेनेका प्रयत्न करनेकी तरह है।

हरिजन सेवक,
३ अक्तूबर, १९३६

: १८ :

कैसी नाशकारी चीज़ है !

डॉ० सोखे और डॉ० मंगलदासके बीच हाल हीमें जो उस बारह-मासी विषय अर्थात् सन्तति-निरोधपर वाद-विवाद हुआ था, उससे मुझे परमादरणीय डॉ० अन्सारीके मतको प्रकट करनेकी हिम्मत हो रही है, जो डॉ० मंगलदासके समर्थनमें हैं। करीबन एक सालकी बात है। मैंने स्वर्गीय डॉ० साहबको लिखा था कि वैद्यककी दृष्टिसे आप इस विवाद-ग्रस्त विषयमें मेरे मतका समर्थन कर सकते हैं या नहीं ? मुझे यह जान-कर आश्चर्य और खुशी हुई कि उन्होंने मेरा समर्थन किया। पिछली बार जब मैं दिल्ली गया था, तब इस विषयमें उनसे मेरी रू-बरू बातचीत हुई थी और मेरे अनुरोध करनेपर उन्होंने अपने निजी तथा अपने अन्य व्यवसाय-बन्धुओंके अनुभवके आधारपर सप्रमाण अंकों सहित यह सिद्ध करनेके लिए कि इन कृत्रिम साधनोंका उपयोग करनेवालोंको कितनी जबर्दस्त हानि पहुंच रही है, एक लेख-माला लिखनेका वचन दिया था। उन्होंने तो उन मनुष्योंकी दयनीय अवस्थाका हू-बहू वर्णन सुनाया था जो यह जानते हुए कि उनकी पत्नियां और अन्य स्त्रियां सन्तति-निरोधके कृत्रिम साधनोंको काममें ला रही हैं, उनसे कुछ दिन सम्भोगके स्वाभाविक परिणामके भयसे मुक्त होनेपर वे अमर्यादित भोग-विलासपर टूट पड़े। नित्य नई-नई औरतोंसे मिलनेकी उन्हें अदम्य लालसा होने लगी और आखिर पागल हो गये। आह ! डॉक्टर साहब अपनी उस लेखमालाको शुरू करने ही वाले थे कि चल बसे !

कहा जाता है कि बर्नार्डशाने भी यही कहा है कि सन्तति-निरोधक साधनोंका उपयोग करनेवाले स्त्री-पुरुषोंका सम्भोग तो प्रकृति-विरुद्ध

वीर्य-नाशसे किसी प्रकार कम नहीं है। एक क्षण-भर सोचनेसे पता चल जायगा कि उनका कथन कितना यथार्थ है।

इस बुरी टेवके शिकार बनकर धीरे-धीरे अपने पौरुषसे हाथ धो लेनेवाले विद्यार्थियोंके करुणा-जनक पत्र तो मुझे करीब-करीब रोज मिलते हैं। कभी-कभी शिक्षकोंके भी खत मिलते हैं। 'हरिजन-सेवक' में लाहौरके सनातनधर्म कालेजके आचार्यका जो पत्रव्यवहार प्रकाशित हुआ था, वह भी पाठकोंको पता होगा, जिसमें उन्होंने उन शिक्षकोंके विरुद्ध बड़ी बुरी तरह शिकायत की थी, जो अपने विद्यार्थियोंके साथ अप्राकृतिक व्यभिचार करते थे। इससे उनके शरीर और चरित्र की जो दुर्गति हुई थी उसका भी जिक्र आचार्यजीने अपने पत्रमें किया था। इन उदाहरणोंसे तो मैं यही नतीजा निकालता हूं कि अगर पति-पत्नीके बीचमें भी मैथुनके स्वाभाविक परिणामके भयसे मुक्त होनेकी संभावनाको लेकर संभोग होगा, तो उसका भी वही घातक परिणाम होगा, जो प्रकृति-विरुद्ध मैथुनसे निश्चित रूपसे होता है।

निस्सन्देह कृत्रिम साधनोंके बहुत-से हिमायती परोपकारकी भावनासे ही प्रेरित होकर इन चीज़ोंका अन्धाधुन्ध प्रचार कर रहे हैं; पर यह परोपकार अस्थायी है। मैं इन भले आदमियोंसे अनुरोध करता हूं कि इसके परिणामोंका तो ख़याल करें। वे गरीब लोग कभी पर्याप्त मात्रामें इनका उपयोग नहीं कर सकेंगे, जिनतक यह उपकारी पुरुष पहुंचाना चाहते हैं। और जिन्हें इनका उपयोग नहीं करना चाहिए वे ज़रूर इनका उपयोग करेंगे, और अपने साथियोंका नाश करेंगे; पर अगर यह पूरी तरहसे सिद्ध हो जाता है कि शारीरिक या नैतिक आरोग्यकी दृष्टिसे यह चीज़ लाभदायक है, तो यह भी सह लिया जाता। इनके और भावी सुधारकोंके लिए डॉ० अन्सारीकी राय—अगर उसके विषयमें मेरे शब्दोंको कोई प्रामाण्य माने—एक गम्भीर चेतावनी है।

हरिजन सेवक,

१२ अक्तूबर, १९३६

: १६ :

अश्लील विज्ञापन

एक मासिक पत्रमें प्रकाशित एक अत्यन्त बीभत्स पुस्तकके विज्ञापनकी कतरन एक बहनने मुझे भेजी है और लिखा है :

"......के पृष्ठों पर नजर डालते हुए यह विज्ञापन मेरे देखनेमें आया। मैं नहीं जानती कि यह मासिक पत्र आपके पास जाता है या नहीं। आपके पास यह जाता भी हो तो भी मेरे खयालमें इसकी तरफ़ नजर डालनेका आपको कभी समय नहीं मिलता होगा। पहले भी एक बार मैंने आपसे 'अश्लील विज्ञापनों' के बारेमें बात की थी। मेरी यह बड़ी ही इच्छा है कि इस विषयमें आप किसी समय कुछ लिखें। जिस पुस्तकका यह विज्ञापन है उस किस्मकी पुस्तकोंकी आज बाजारमें बाढ़-सी आ रही है, यह बिलकुल सच्ची बात है; पर...जैसे जवाबदार पत्रोंके लिए क्या यह उचित है कि वे ऐसी गन्दी पुस्तकोंकी बिक्रीको प्रोत्साहन दें? इन चीजोंसे मेरा स्त्री-हृदय इतना अधिक दुखता है कि मैं सिवा आपके और किसीको लिख नहीं सकती। ईश्वरने स्त्रीको एक विशेष उद्देश्यके लिए जो वस्तु दी है उसका विज्ञापन लम्पटताको उत्तेजन देनेके लिए किया जाय, यह चीज इतनी हीन है इसके प्रति घृणा शब्दोंसे प्रकट नहीं की जा सकती...। मैं चाहती हूं कि इस सम्बन्धमें भारतके प्रमुख अखबारों और मासिकपत्रोंकी क्या जवाबदारी है, इसके बारेमें आप लिखें। आपके पास आलोचनाके लिए भेज सकूं, ऐसी यह कोई पहली ही कतरन नहीं है।"

इस विज्ञापनमें से कुछ भी अंश मैं यहां उद्धृत करना नहीं चाहता। पाठकों से सिर्फ इतना ही कहता हूं कि जिस पुस्तकका यह विज्ञापन है उसमेंके व्यंजित लेखोंका वर्णन करनेमें जितनी अश्लील भाषाका उपयोग किया जा सकता है उतना किया गया है। इस पुस्तकका नाम 'स्त्रीके शरीरका

सौन्दर्य' है; और विज्ञापन देनेवाली फर्म पाठकोंसे कहती है कि जो यह पुस्तक खरीदेगा उसे 'नववधूके लिए नया ज्ञान' और 'सम्भोग अथवा संभोगीको कैसे रिझाया जाय ?' नामक यह दो पुस्तकें और मुफ्त दी जायंगी।

इस किस्मकी पुस्तकोंका विज्ञापन करने वालोंको मैं किसी तरह रोक सकता हूं या पत्र-सम्पादकों और प्रकाशकोंसे उनके अखबारों द्वारा मुनाफा उठानेका इरादा मैं छुड़वा सकता हूं, ऐसी आशा अगर यह बहन रखती हैं तो वह व्यर्थ है। ऐसी अश्लील पुस्तकों या विज्ञापनोंके प्रकाशकोंसे मैं चाहे जितनी अपील करूं उससे कोई मतलब निकलनेका नहीं; किन्तु मैं इस पत्र लिखनेवाली बहनसे और ऐसी ही दूसरी विदुषी बहनोंसे इतना कहना चाहता हूं कि वे बाहर मैदानमें आयं और जो काम खास करके उनका है, और जिसके लिए उनमें खास योग्यता है, उस कामको वे शुरू कर दें। अक्सर देखनेमें आया कि किसी मनुष्यको खराब नाम दे दिया जाता है और कुछ समय बाद वह स्त्री या पुरुष ऐसा मानने लगता है कि वह खुद खराब है। स्त्रीको 'अबला' कहना उसे बदनाम करना है। मैं नहीं जानता कि स्त्री किस प्रकार अबला है। ऐसा कहनेका अर्थ अगर यह हो कि स्त्रीमें पुरुषकी जैसी पाशवक वृत्ति नहीं है या उतनी मात्रा में नहीं है जितनी कि पुरुषमें होती है, तो यह आरोप माना जा सकता है; पर यह चीज तो स्त्राको पुरुषकी अपेक्षा पुनीत बनाने वाली है; और स्त्री पुरुषकी अपेक्षा पुनीत तो है ही। वह अगर आघात करनेमें निर्बल है तो कष्ट सहन करनेमें बलवान है। मैंने स्त्रीको त्याग और अहिंसाकी मूर्ति कहा है। अपने शील या सतीत्वकी रक्षाके लिए पुरुषपर निर्भर न रहना उसे सीखना है। पुरुषने स्त्रीके सतीत्वकी रक्षा की हो ऐसा एक भी उदाहरण मुझे मालूम नहीं। वह ऐसा करना चाहे तो भी नहीं कर सकता। निश्चय ही रामने साताके या पांचों पाण्डवोंने द्रौपदीके शीलकी रक्षा नहीं की। इन दोनों सतियोंने अपने सतीत्वके बलसे ही अपने शीलकी रक्षा की। कोई भी मनुष्य बगैर अपनी सम्मतिके अपनी इज्जत-आबरू नहीं खोता। कोई नर-पशु किसी स्त्रीको बेहोश करके उसकी लाज लूट ले तो इससे

उस स्त्रीके शील या सतीत्वका लोप नहीं होगा, इसी तरह कोई दुष्ट स्त्री किसी पुरुषको जड़ बना देनेवाली दवा खिला दे और उससे अपना मन चाहा कराये तो इससे उस पुरुषके शील या चारित्र्यका नाश नहीं होता।

आश्चर्य तो यह है कि पुरुषोंके सौन्दर्यकी प्रशंसामें पुस्तकें बिलकुल नहीं लिखी गईं। तो फिर पुरुषकी विषय-वासना उत्तेजित करनेके लिए ही साहित्य हमेशा क्यों तैयार होता रहे? यह बात तो नहीं कि पुरुषने स्त्रीको जिन विशेषणोंसे भूषित किया है उन विशेषणोंको सार्थक करना उसे पसन्द है? स्त्रीको क्या यह अच्छा लगता होगा कि उसके शरीरके सौन्दर्यका पुरुष अपनी भोग-लालसाके लिए दुरुपयोग करे? पुरुषके आगे अपनी देहकी सुन्दरता दिखाना क्या उसे पसन्द होगा? यदि हां, तो किस-लिए? मैं चाहता हूं कि ये प्रश्न सुशिक्षित बहनें खुद अपने दिलसे पूछें। ऐसे विज्ञापनों और साहित्यसे उनका दिल दुखता हो तो उन्हें इन चीजोंके लिए अविराम युद्ध चलाना चाहिए, और एक क्षणमें वे इन चीजोंको बन्द करा देंगी। स्त्रीमें जिस प्रकार बुरा करनेकी, लोकका नाश करनेकी शक्ति है, उसी प्रकार भला करनेकी, लोक-हित साधन करनेकी शक्ति भी उसमें सोई हुई पड़ी है। यह भान अगर स्त्रीको हो जाय तो कितना अच्छा हो। अगर वह यह विचार छोड़ दे कि वह खुद अपना तथा पुरुषका—फिर चाहे वह उसका पिता हो, पुत्र हो या पति हो—जन्म सुधार सकती है, और दोनोंके ही लिए इस संसारको अधिक सुखमय बना सकती है। राष्ट्र-राष्ट्रके बीचके पागलपन भरे युद्धोंसे और इससे भी ज्यादा पागलपन-भरे समाज-नीतिकी नींवके विरुद्ध लड़े जाने वाले युद्धोंसे अगर समाजको अपना संहार नहीं होने देना है, तो स्त्रीको पुरुषकी तरह नहीं, जैसे कि कुछ स्त्रियां करती हैं; बल्कि स्त्रीकी तरह अपना योग देना ही होगा। अधिकांशतः बिना किसी कारणके ही मानव-प्राणियोंके संहार करनेकी जो शक्ति पुरुषमें है उस शक्तिमें उसकी हमसरी करनेसे स्त्री मानव-जातिको सुधार नहीं सकती। पुरुषकी जिस भूलसे पुरुषके साथ-साथ स्त्रीका भी विनाश होनेवाला है उस भूलमेंसे पुरुषको बचाना उसका परम कर्तव्य है, यह स्त्रीको समझ लेना चाहिए। यह वाहियात विज्ञापन

तो. सिर्फ यही बताता है कि हवाका रुख किस तरफ है। इसमें बेशर्मीके साथ स्त्रीका अनुचित लाभ उठाया गया है। 'दुनियाकी जंगली जातियोंकी स्त्रियोंके शरीर-सौन्दर्य' को भी इसने नहीं छोड़ा।

हरिजन सेवक,
२१ नवम्बर, १९३६

: २० :

काम-शास्त्र

गुजरात विद्यापीठसे हालकी पारंगत-पदवी प्राप्त श्री मगनभाई देसाईके ७ अक्तूबरके पत्रसे नीचे लिखा अंश यहां देता हूं—

"इस बारके 'हरिजन' में आपका लेख पढ़कर मेरे मनमें विचार आया कि मैं भी एक प्रश्न चर्चाके लिए आपके सामने पेश करूं। इस विषयमें आपने अबतक शायद ही कुछ कहा है। वह है बालकोंको और खास करके विद्यार्थियोंको काम-विज्ञान सिखाना। आप तो जानते ही हैं कि श्री... गुजरातमें इस विषयके बड़े हामी हैं। खुद मुझे तो इस बातमें हमेशा अन्देशा ही रहा है; बल्कि मेरा तो मत है कि वे इस विषयके अधिकारी भी नहीं हैं। परिणामने तो इस विषयकी अनिष्टता ही प्रकट होती जाती है। वे तो शायद ऐसा ही मानते दिखाई देते हैं कि काम-विज्ञानके न जानने-से ही शिक्षा और समाजमें यह बिगाड़ हुआ है। नवीन मानव-शास्त्र भी बताता है कि यही सुप्त काम-भाव मानव-प्रवृत्तिका उद्भव-स्थान है। 'काम एषः क्रोध एषः'—इसके आगे ये लोग जाते ही नहीं। हमारा... एक दिन मुझसे कहता था—'तो आपको यह कहां मालूम है कि हरेकके अन्दर काम नामक राक्षस रहता है? और इसके फलस्वरूप उसकी नीति भावना जाग्रत होनेके बदले उलटी जड़ होती हुई दिखाई दी। इस तरह गुजरातमें आजकल काम-विज्ञानके शिक्षणके नामपर बहुत-कुछ हो रहा है। इस विषयपर पुस्तकें भी लिखी गई हैं। संस्करण-पर-संस्करण छपते हैं और हजारोंकी संख्यामें ये बिकती हैं। कितने ही साप्ताहिक इस विषयके निकलते हैं और उनकी बिक्री भी खूब होती है। खैर यह तो जैसा समाज होता है वैसा उसे परोसने वाले मिल ही जाते हैं; किन्तु इससे सुधारककी दशा और भी अटपटी हो जाती है।

"इसलिए मैं चाहता हूं कि आप इसकी शिक्षाके विषयमें सार्वजनिक रूपसे चर्चा करें। शिक्षाके लिए काम-शास्त्रके शिक्षणकी आवश्यकता है ! कौन उसकी शिक्षा देनेका और कौन उसे पाने का अधिकारी है। मामूली भूगोल-गणितकी तरह क्या सबको उसकी शिक्षा दी जानी चाहिए। उसकी क्या मर्यादा है और हमारे रगोरेशेमें पैठे हुए इस शत्रुकी मर्यादा इससे उलटी दिशामें बांधना उचित है या इस तरह उसे शुभ नामका गौरव देनेकी तरफ ! ऐसे अनेक तरहके सवाल मनमें उठते हैं। आशा है कि आप इस विषयपर अवश्य रोशनी डालेंगे।"

इस पत्रको इतने दिनतक मैंने इसी आशासे रख छोड़ा था कि किसी दिन मैं इसमें उठाये गए प्रश्नोंपर कुछ लिखूंगा। इस बीच मैं बारहवीं गुजराती-साहित्य-परिषद्का प्रमुख बनकर वापस सेगांव आ पहुंचा। विद्यापीठमें चार दिन जो रहा तो गुजराती भाई-बहनोंके सम्पर्कमें आने-से पुरानी स्मृतियां ताजी हो आईं। उक्त पत्रके लेखक भी मिले। उन्होंने मुझसे पूछा भी, "मेरे उस पत्रका क्या हुआ ?" "मेरे साथ-साथ वह सफ़र कर रहा है। मैं उसके बारेमें ज़रूर लिखूंगा।" यह जवाब देकर मैंने मगन भाईको कुछ तसल्ली दी थी।

अब उनके असली विषयपर आता हूं। क्या गुजरातमें और क्या दूसरे प्रान्तोंमें, सब जगह कामदेव मामूलके माफ़िक़ विजय प्राप्त कर रहे हैं। आजकलकी उनकी विजयमें एक विशेषता यह है कि उनके शरणागत नर-नारीगण उनको धर्म मानते दिखाई देते हैं। जब कोई गुलाम अपनी बेड़ीको शृंगार समझकर पुलकित होता है, तब कहना चाहिए कि उसके सरदारकी पूरी विजय हो गई ! इस तरह कामदेवकी विजय देखते हुए भी मुझे इतना विश्वास है कि यह विजय क्षणिक है, तुच्छ है और अन्तमें डंक-कटे बिच्छूकी तरह निस्तेज हो जानेवाली है। ऐसा होनेके पहले पुरुषार्थकी तो आवश्यकता ही है। यहां मेरा यह आशय नहीं है कि अन्त-में तो कामदेवकी हार होने ही वाली है, इसलिए हम सुस्त या ग़ाफ़िल बनकर बैठे रहें। कामपर विजय प्राप्त करना स्त्री-पुरुषोंका परम कर्त्तव्य है। उस-पर विजय प्राप्त किये बिना स्वराज्य असम्भव है, स्वराज्य बिना स्वराज

अथवा राम-राज होगा ही कहांसे ? स्वराज-विहीन स्वराज खिलौनेके आमकी तरह समझना चाहिए। देखनेमें बड़ा सुंदर; पर जब उसे खोला तो अन्दर पोल-ही-पोल। कामपर विजय प्राप्त किये बिना कोई सेवक हरिजनकी, क़ौमी ऐक्यकी, खादीकी, गौ-माताकी, ग्रामवासीकी सेवा कभी नहीं कर सकता। इस सेवाके लिए बौद्धिक सामग्री बस होनेकी नहीं। आत्म-बलके बिना ऐसी महान् सेवा असम्भव है। और आत्म-बल प्रभुके प्रसादके बिना अशक्य है। कामीको प्रभुका प्रसाद मिला हो—ऐसा अबतक देखा नहीं गया।

तो मगन भाईने यह सवाल पूछा है कि हमारे शिक्षा-क्रममें कामशास्त्रके लिए स्थान है या नहीं, यदि है तो कितना ? कामशास्त्र दो प्रकारका होता है—एक तो है कामपर विजय प्राप्त करानेवाला; उसके लिए तो शिक्षण-क्रममें स्थान होना ही चाहिए। दूसरा है, कामको उत्तेजन देनेवाला शास्त्र। यह सर्वथा त्याज्य है। सब धर्मोंने कामको शत्रु माना है। क्रोधका नम्बर दूसरा है। गीता तो कहती है—कामसे ही क्रोधकी उत्पत्ति होती है। यहां कामका व्यापक अर्थ लिया गया है। हमारे विषयसे सम्बन्ध रखनेवाला 'काम' शब्द प्रचलित अर्थमें इस्तैमाल किया गया है।

ऐसा होते हुए भी यह प्रश्न बाक़ी रहता है कि बालक-बालिकाओंको गुह्येन्द्रियोंका और उनके व्यापारका ज्ञान दिया जाय या नहीं ? मैं समझता हूं कि यह ज्ञान एक हदतक आवश्यक है। आज कितने ही बालक-बालिकाएं शुद्ध ज्ञानके अभावमें अशुद्ध ज्ञान प्राप्त करते हैं और वे इन्द्रियोंका बहुत दुरुपयोग करते हुए पाये जाते हैं। आंख होते हुए भी हम नहीं देखते। इस तरह हम कामपर विजय नहीं पा सकते। बालक-बालिकाओंको उन इन्द्रियोंके उपयोगका ज्ञान देनेकी आवश्यकता मैं मानता हूं। मेरे हाथ-नीचे जो बालक-बालिकाएं रही हैं उन्हें मैंने ऐसा ज्ञान देनेका प्रयत्न भी किया है; परन्तु यह शिक्षण और ही दृष्टिसे दिया जाता है। इन इन्द्रियोंका ज्ञान देते हुए संयमकी शिक्षा दी जाती है। कामपर कैसे विजय प्राप्त होती है यह सिखाया जाता है। यह शिक्षण देते हुए भी मनुष्य

और पशुके बीचका भेद बताना आवश्यक हो जाता है। मनुष्य वह है जिसे हृदय और बुद्धि है। यह उसका धात्त्वर्थ है। हृदय जाग्रत करनेका अर्थ है--सारासार-विवेक सिखाना। यह सिखाते हुए कामपर विजय प्राप्त करना बताया जाता है।

तो अब इस शास्त्रकी शिक्षा कौन दे ? जिस प्रकार खगोल-शास्त्रकी शिक्षा वही दे सकता है जो उसमें पारंगत हो; उसी तरह कामके जीतनेका शास्त्र भी वही सिखा सकता है, जिसने कामपर विजय प्राप्त कर ली हो। उसकी भाषामें संस्कारिता होगी, बल होगा, जीवन होगा, जिस उच्चारणके पीछे अनुभव-ज्ञान नहीं है, वह जड़वत् है, वह किसीको स्पर्श नहीं कर सकता। जिसको अनुभव-ज्ञान है, उसका कथन उगे बिना रह सकता।

आजकल हमारा बाह्याचार, हमारा वाचन, हमारा विचार-क्षेत्र सब कामकी विजय सूचित कर रहे हैं। हमें उसके पाशसे मुक्त होनेका प्रयत्न करना है। यह काम अवश्य ही विकट है; मगर परवाह नहीं। अगर इने-गिने ही गुजराती हों, जिन्होंने शिक्षण-शास्त्रका अनुभव प्राप्त किया हो और जो कामपर विजय प्राप्त करनेके धर्मको मानते हों, उनकी श्रद्धा यदि अचल रहेगी, वे जाग्रत रहेंगे और सतत प्रयत्न करते रहेंगे तो गुजरातके बालक-बालिकाएं शुद्ध ज्ञान प्राप्त करेंगे और कामके जालसे मुक्ति प्राप्त करेंगे और जो उसमें न फंसे होंगे वे बच जायंगे।

हरिजन सेवक,

२८ नवम्बर १९३६

: २१ :

अश्लील विज्ञापनोंको कैसे रोका जाय ?

अश्लील विज्ञापन-सम्बन्धी मेरा लेख देखकर एक सज्जन लिखते हैं—

"जो अख़बार, आपने लिखा, वैसी अश्लील चीज़ोंके इश्तहार देते हैं उनके नाम ज़ाहिर करके आप अश्लील विज्ञापनका प्रकाशन रोकनेके लिए बहुत-कुछ कर सकते हैं।"

इन सज्जनने जिस सेंसरशिपकी मुझे सलाह दी है उसका भार मैं नहीं ले सकता; लेकिन इससे अच्छा एक उपाय मैं सुझा सकता हूं। जनताको अगर यह अश्लीलता अखरती हो, तो जिन अखबारों या मासिक-पत्रोंमें आपत्तिजनक विज्ञापन निकलें उनके ग्राहक यह कर सकते हैं कि उन अखबारोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करें और अगर फिर भी वे ऐसा करनेसे बाज़ न आयें तो उन्हें खरीदना बन्द कर दें। पाठकोंको यह जानकर खुशी होगी कि जिस बहनने मुझे अश्लील विज्ञापनोंकी शिकायत भेजी थी, उसने इस दोषके भागी मासिक-पत्रके सम्पादकको भी इस बारेमें लिखा था, जिसपर उन्होंने इस भूलके लिए खेद-प्रकाश करते हुए उसे आगेसे न छापनेका वादा किया है।

यह कहते हुए भी मुझे खुशी होती है कि मैंने इस बारेमें जो-कुछ लिखा उसका कुछ अन्य पत्रोंने भी समर्थन किया है। 'निस्पृह' (नागपुर) के सम्पादक लिखते हैं :

"अश्लील विज्ञापनोंके बारेमें 'हरिजन' में आपने जो लेख लिखा है उसे मैंने बहुत सावधानीके साथ पढ़ा। यह नहीं, बल्कि मैंने उसका अविकल अनुवाद भी 'निस्पृह' में दिया है और एक छोटी-सी सम्पादकीय टिप्पणी भी उसपर मैंने लिखी है।

"मैं बतौर नमूनेके एक विज्ञापन इस पत्रके साथ भेज रहा हूं जो अश्लील न होते हुए भी एक तरहसे अनैतिक तो है ही। इस विज्ञापनमें साफ झूठ है। आमतौरपर गांव वाले ही ऐसे विज्ञापनोंके चक्करमें फंसते हैं। मैं ऐसे विज्ञापन लेनेसे इन्कार करता रहा हूं और इस विज्ञापनदाताको भी यही लिख रहा हूं। जैसे अखबारमें निकलने वाली समस्त पाठ्य-सामग्री पर सम्पादककी निगाह रहना ज़रूरी है, उसी तरह विज्ञापनोंपर नज़र रखना भी उसका कर्तव्य है। और कोई सम्पादक अपने अख़बारका ऐसे लोगों द्वारा उपयोग नहीं होने दे सकता, जो भोले-भाले देहातियोंकी आंखोंमें धूल झोंककर उन्हें ठगना चाहते हैं।"

हरिजन सेवक,

१९ दिसम्बर, १९३६

: २२ :

ब्रह्मचर्यका अर्थ

एक सज्जन लिखते हैं :

"आपके विचारोंको पढ़कर मैं बहुत समयसे यह मानता आया हूं कि सन्तति-निरोधके लिए ब्रह्मचर्य ही एक-मात्र सर्वश्रेष्ठ उपाय है; संभोग केवल सन्तानेच्छासे प्रेरित होकर होना चाहिए; बिना सन्तानेच्छाका भोग पाप है, इन बातोंको सोचते हैं तो कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। संभोग सन्तानके लिए किया जाय यह ठीक है; पर एक-दो बारके भोगसे सन्तान न हो, तो ? ऐसे समयको मर्यादापूर्वक किस सीमाके अन्दर रहना चाहिए ? एक-दो बारके संभोगसे सन्तान चाहे न हो, पर आशा कहां पिण्ड छोड़ती है ? इस प्रकार वीर्यका बहुत कुछ अपव्यय अनचाहे भी हो सकता है। ऐसे व्यक्तिको क्या यह कहा जाय कि ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध होनेके कारण उसे भोगका त्याग कर देना चाहिए। ऐसे भोगके लिए तो बहुत आध्यात्मिकताकी आवश्यकता है। प्रायः ऐसा भी देखनेमें आया है कि सन्तान सारी उम्र न होकर उत्तरावस्थामें हुई है, इसलिए आशाका त्याग करना कठिन है ! यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है, जब दोनों स्त्री-पुरुष रोगसे मुक्त हों।"

यह कठिनाई अवश्य है; लेकिन ऐसी बातें मुश्किल तो हुआ ही करती हैं। मनुष्य अपनी उन्नति बगैर कठिनाईके कैसे कर सकता है ? हिमालयपर चढ़नेके लिए जैसे-जैसे मनुष्य आगे बढ़ता है, कठिनाई बढ़ती ही जाती है, यहांतक कि हिमालयके सबसे ऊंचे शिखरपर आजतक कोई पहुंच नहीं सका है। इस प्रयत्नमें कई मनुष्योंने मृत्युकी भेंट की है। हर साल चढ़ाई करनेवाले नये-नये पुरुषार्थी तैयार होते हैं और निष्फल भी होते हैं, फिर भी इस प्रयासको वे छोड़ते नहीं। विषयेन्द्रियका दमन हिमालय पहाड़पर चढ़नेसे तो कठिन है ही; लेकिन उसका परिणाम भी कितना ऊंचा है। हिमालयपर

चढ़नेवाला कुछ कीर्ति पायगा, क्षणिक सुख पायगा, इन्द्रिय-जीत मनुष्य आत्मानन्द पायगा और उसका आनन्द दिन-प्रति-दिन बढ़ता जायगा। ब्रह्मचर्य-शास्त्रमें तो ऐसा नियम माना गया है कि पुरुष-वीर्य कभी निष्फल होता ही नहीं और होना ही नहीं चाहिए। और जैसा पुरुषके लिए, ऐसा ही स्त्रीके लिए भी, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। जब मनुष्य अथवा स्त्री निर्विकार होते हैं, तब वीर्यहानि असम्भावित हो जाती है और भोगेच्छाका सर्वथा नाश हो जाता है। जब पति-पत्नी सन्तानकी इच्छा करते हैं तो, तभी एक-दूसरेका मिलन होता है। यही अर्थ गृहस्थाश्रमीके ब्रह्मचर्यका है अर्थात्—स्त्री-पुरुषका मिलन सिर्फ सन्तानोत्पत्तिके लिएही उचित है, भोग-तृप्तिके लिए कभी नहीं। यह हुई कानूनी बात अथवा आदर्शकी बात। यदि हम इस आदर्शको स्वीकार करें तो हम समझ सकते हैं कि भोगेच्छाकी तृप्ति अनुचित है और हमें उसका यथोचित त्याग करना चाहिए। यह ठीक है कि आज कोई इस नियमका पालन नहीं करते। आदर्शकी बात करते हुए हम शक्तिका खयाल नहीं कर सकते; लेकिन आजकल भोग-तृप्तिको आदर्श बताया जाता है। ऐसा आदर्श कभी हो नहीं सकता, यह स्वयंसिद्ध है। यदि भोग आदर्श है तो उसे मर्यादित नहीं होना चाहिए। अमर्यादित भोगसे नाश नहीं होता, यह सभी स्वीकार करते हैं। त्याग ही आदर्श हो सकता है और प्राचीनकालसे रहा है। मेरा कुछ ऐसा विश्वास बन गया है कि ब्रह्मचर्यके नियमोंको हम जानते नहीं हैं, इसलिए बड़ी आपत्ति पैदा हुई है; और ब्रह्मचर्य-पालनमें अनावश्यक कठिनाई महसूस करते हैं। अब जो आपत्ति मुझे पत्र-लेखकने बतलाई है, वह आपत्ति ही नहीं रहती है; क्योंकि सन्ततिके ही कारण तो एक ही बार मिलन हो सकता है; अगर वह निष्फल गया तो दोबारा उन स्त्री-पुरुषोंका मिलन होना ही नहीं चाहिए। इस नियमको जाननेके बाद इतना ही कहा जा सकता है कि जबतक स्त्रीने गर्भ-धारण नहीं किया तबतक, प्रत्येक ऋतुकालके बाद, प्रतिमास एक बार स्त्री-पुरुषका मिलन क्षंतव्य हो सकता है, और यह मिलन भोग-तृप्तिके लिए न माना जाय। मेरा यह अनुभव है कि जो मनुष्य वचनसे और कार्यसे विकार-रहित होता है, उसे

मानसिक अथवा शारीरिक व्याधिका किसी प्रकार डर नहीं है। इतना ही नहीं; बल्कि ऐसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियोंसे भी मुक्त होते हैं और इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जिस वीर्यसे मनुष्य-जैसा प्राणी पैदा हो सकता है, उसके अविच्छिन्न संग्रहसे अमोघ शक्ति पैदा होनी ही चाहिए। यह बात शास्त्रोंमें तो कही गई है; लेकिन हरेक मनुष्य इसे अपने लिए यत्नसे सिद्ध कर सकता है। और जो नियम पुरुषोंके लिए है वह स्त्रियोंके लिए भी है। आपत्ति सिर्फ यह है कि मनुष्य मनसे विकारमय रहते हुए शरीरसे विकार-रहित होनेकी व्यर्थ आशा करता है और अन्तमें मन और शरीर दोनोंको क्षीण करता हुआ गीताकी भाषामें मूढ़ात्मा और मिथ्याचारी बनता है।

हरिजन सेवक,
१३ मार्च, १९३७

: २३ :

अरण्य-रोदन

"अभी हाल हीमें सन्तति-नियमनकी प्रचारिका मिसेज सेंगरके साथ आपकी मुलाकात पर एक समालोचना मैंने पढ़ी है। इसका मुझपर इतना गहरा असर हुआ कि आपके दृष्टि-बिन्दुपर सन्तोष और पसन्दगी जाहिर करनेके लिए मैं आपको यह पत्र लिखने बैठा हूं। आपकी हिम्मतके लिए ईश्वर सदा आपका कल्याण करे।

"पिछले तीस सालसे मैं लड़कोंको पढ़ानेका काम करता हूं। मैंने हमेशा उन्हें देह-दमन और निस्वार्थ जीवन बितानेके लिए तालीम दी है। जब मिसेज सेंगर हमारे आस-पास प्रचार-कार्य कर रही थीं, तब हाईस्कूलके लड़के-लड़कियां उनकी दी हुई सूचनाओंका उपयोग करने लग गये थे और परिणाम का डर दूर हो जानेसे उनमें खूब व्यभिचार चल पड़ा था। अगर मिसेज सेंगरकी शिक्षा कहीं व्यापक हो गई तो सारा समाज विषय-सेवनके पीछे पड़ जायगा, और शुद्ध प्रेमका दुनियासे नामो-निशानतक मिट जायगा। मैं मानता हूं कि जनताको उच्च आदर्शोंकी शिक्षा देनेमें सदियां लग जायंगी; पर यह काम शुरू करनेके लिए अनुकूल-से-अनुकूल समय अभी है। मुझे डर है कि मिसेज सेंगर विषयको ही प्रेम समझ बैठी हैं; पर यह भूल है; क्योंकि प्रेम एक आध्यात्मिक वस्तु है, विषय-सेवन-से इसकी उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती।

"डॉ० ऐलेक्सिस केरल भी आपके साथ इस बातमें सहमत हैं कि संयम कभी हानिकारक सिद्ध नहीं होता, सिवाय उन लोगोंके जो दूसरी तरह अपने विषयोंको उत्तेजित करते हों और पहलेसे ही अपने मनपर काबू खो चुके हों। मिसेज सेंगरका यह बयान कि अधिकांश डॉक्टर यह मानते हैं कि ब्रह्मचर्य-पालनसे हानि होती है; बिलकुल गलत है। मैं तो देखता

हूं कि यहां कई बड़े-बड़े डॉक्टर अमेरिकन सोश्यल हाइजीन (सामाजिक आरोग्य-शास्त्र) के विज्ञान-शास्त्री ब्रह्मचर्य-पालनको लाभदायक मानते हैं।

"आप एक बड़ा नेक काम कर रहे हैं। मैं आपके जीवन-संग्रामके तमाम चढ़ाव-उतारोंका बहुत रसपूर्वक अध्ययन करता रहा हूं। आप जगत्में उन इने-गिने व्यक्तियोंमेंसे हैं, जिन्होंने स्त्री-पुरुष-सम्बन्धके प्रश्न-पर इस तरह उच्च आध्यात्मिक दृष्टि-बिन्दुसे विचार किया है। मैं आप-को यह जताना चाहता हूं कि महासमरके इस पार भी आपके आदर्शोंके साथ सहानुभूति रखनेवाला आपका एक साथी यहांपर है।

"इस नेक कामको जारी रखें, ताकि नवयुवक-वर्ग सच्ची बातको जान ले; क्योंकि भविष्य इसी वर्गके हाथमें है।

"अपने विद्यार्थियोंके साथ अपने संवादमेंसे मैं छोटा-सा उद्धरण यहाँ देना चाहता हूं—'निर्माण करो, हमेशा निर्माण करो। निर्माण प्रवृत्ति मेंसे तुम्हें श्रेय मिलेगा, उन्नति मिलेगी; उत्साह मिलेगा, उल्लास मिलेगा पर अगर तुम अपनी निर्माणशक्तिको आज विषय-तृप्तिका साधन बना लोगे, तो तुम अपनी रचना-शक्तिपर अत्याचार करोगे और तुम्हारे आध्यात्मिक बलका नाश हो जायगा। रचना-प्रवृत्ति —शारीरिक, मान-सिक और आध्यात्मिक—का नाम जीवन है, यही आनन्द है। अगर तुम प्रजोत्पत्तिके हेतुके विना या सन्ततिका निरोध करके विषय-सेवन द्वारा सिर्फ इन्द्रिय-सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करोगे तो तुम प्रकृतिके नियम का भंग और अपनी आध्यात्मिक शक्तियोंका हनन करोगे। इसका परिणाम क्या होगा? अनिवार विषयाग्नि धधक उठेगी और आखिर निराश तथा असफलतामें अन्त होगा। इससे तो हम कभी उन उच्च गुणोंका विकास नहीं कर पायंगे, जिनके बलपर हम उस नवीन मानव-समाजकी रचना कर सकें जिसमें कि दिव्यात्मा स्त्री-पुरुष हों।"

"मैं जानता हूं कि यह सब पूर्वकालके नबियोंके अरण्य-रोदन-जैसी बात है; पर मेरा पक्का विश्वास है कि वही सच्चा रास्ता है और मुझसे अधिक कुछ चाहे न भी बन पड़े, मैं कम-से-कम उंगली दिखाकर तो अपना समाधान कर लूं।"

संतति-नियमनके कृत्रिम साधनोंका निषेध करनेवाले जो पत्र मुझे कभी-कभी अमेरिकासे मिलते रहते हैं, उन्हींमेंसे यह भी एक है। पर सुदूर पश्चिमसे हर हफ्ते हिन्दुस्तानमें जो सामाजिक साहित्य आता रहता है, उसके तो पढ़नेसे दिलपर बिलकुल जुदा ही असर पड़ता है। यही मालूम होता है, मानो अमेरिकामें तो सिवा बेवकूफोंके कोई भी इन आधुनिक साधनोंका विरोध नहीं करते हैं, जो मनुष्योंको उस अन्ध विश्वाससे मुक्ति प्रदान करते हैं, जो अबतक शरीरको गुलाम बनाकर संसारके सर्वश्रेष्ठ ऐहिक सुखसे मनुष्यको वंचित करके उसके शरीरको निष्प्राण बना देनेकी शिक्षा देता चला आ रहा है। यह साहित्य भी उतना ही क्षणिक नशा पैदा करता है, जितना कि वह कर्म, जिसकी वह शिक्षा देता है और जिसे उसके साधारण परिणामके खतरेसे बचकर करनेको प्रोत्साहन देता है। पश्चिमसे आनेवाले केवल उन पत्रोंको मैं 'हरिजन' के पाठकोंके सामने नहीं पेश करता, जिसमें व्यक्तिगत रूपसे इन साधनोंका निषेध होता है। वे तो साधककी दृष्टिसे मेरे लिए उपयोगी हैं। साधारण पाठकोंके लिए उनका मूल्य कम है; पर यह पत्र खासतौर एक महत्त्व रखता है; यह एक ऐसे शिक्षकका है; जिसे तीस वर्षका अनुभव है। यह हिन्दुस्तानके उन शिक्षकों और जनता (स्त्री-पुरुष) के लिए खासतौरपर मार्गदर्शक है, जो उस ज्वरके प्रबल प्रवाहमें बहे जा रहे हैं। संतति-नियामक साधनोंके प्रयोगमें शराबसे अनन्त-गुना प्रबल प्रलोभन होता है; पर इस मारक प्रलोभनके कारण वह उस चमकीली शराबकी अपेक्षा अधिक जायज नहीं है। और चूंकि इन दोनोंका प्रचार बढ़ता ही जा रहा है, इस कारण निराश होकर इनका विरोध करना भी नहीं छोड़ा जा सकता। अगर इनके विरोधियोंको अपने कार्यकी पवित्रतामें श्रद्धा है, तो उन्हें उसे बराबर जारी रखना चाहिए। ऐसे अरण्य-रोदनोंमें भी वह बल होता है कि जो मूढ़ जनसमुदायके सुर-में-सुर मिलानेवालेकी आवाजमें नहीं हो सकता; क्योंकि जहां अरण्यमें रोनेवालेकी आवाजमें चिन्तन और मननके अलावा अटूट श्रद्धा होती है, वहां सर्व-साधारणके इस शोरकी जड़में विषय-भोग की व्यक्तिगत लालसा और अनचाही सन्तति तथा दुखिया माताओंके

प्रति झूठी और निरी भावुक सहानुभूतिके अलावा और कुछ नहीं होता। और इस मामलेमें व्यक्तिगत अनुभववाली दलीलमें तो उतनी ही बुद्धि है, जितनी कि एक शराबीके किसी कार्यमें होती है और सहानुभूतिवाली दलील एक धोखेकी टट्टी है, जिसके अन्दर पैर भी रखना खतरनाक है। अनचाहे बच्चोंके तथा मातृत्वके कष्ट तो कल्याणकारी प्रकृति द्वारा नियोजित सजाएं और हिदायतें हैं। संयम और इन्द्रिय-नियमके कानूनकी जो परवा नहीं करेगा, वह तो एक तरहसे अपनी खुद-कुशी ही कर लेगा। यह जीवन तो एक परीक्षा है। अगर हम इन्द्रियोंका नियमन नहीं कर सकते, तो हम असफलताको न्यौता देते हैं। कायरोंकी तरह हम युद्धसे मुंह मोड़कर जीवनके एकमात्र आनन्दसे अपने-आपको वंचित करते हैं।

हरिजन सेवक,
२७ मार्च, १९३७

: २४ :

ब्रह्मचर्यपर नया प्रकाश

अब एक नई बात आप लोगोंसे कहना चाहता हूं। सोचा था कि विनोबा सुनायें; पर अब समय है तो स्वयं मैं कहता हूं। मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि अच्छी बात सबके साथ बांट लेता हूं। बातका आरम्भ तो बहुत वर्षों पुराना है। मैं जुलू-युद्धमें गया था। देखो, ईश्वरका खेल इसी तरह चलता है। मेरा निश्चय हो गया कि जिसको जगत्की सेवा करनी है, उसके लिए ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक है। विवाहित दम्पति-को भी ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। इससे मेरा मतलब यह था कि उन्हें प्रजोत्पादन-क्रियामें नहीं पड़ना चाहिए। मैं यह समझता था कि जो प्रजोत्पादन करते हैं, वे ब्रह्मचारी नहीं हो सकते। इसलिए मैंने ब्रह्मचर्यका आदर्श छगनलाल आदिके सामने रखा। उस वक्त तो मैं बिलकुल जवान था। और जवान तो सब कुछ कर सकता है। मैं आपसे कह दूं कि आप सब ब्रह्मचारी बनें तो क्या वह होनेवाली बात है? वह तो एक आदर्श है, इसलिए मैं तो विवाह भी करा देता हूं। एक आदर्श देते हुए भी यह तो जानता ही हूं कि ये लोग भोग भा करेंगे। प्रजोत्पादन और ब्रह्मचर्य एक-दूसरेके विरोधी हैं, ऐसा मेरा खयाल रहा है।

पर उस दिन विनोबा मेरे पास एक उलझन लेकर आये। एक शास्त्र-वचन है, जिसकी कीमत मैं पहले नहीं जानता था। उस वचनने मेरे दिलपर एक नया प्रभाव डाल दिया। उसका विचार करते-करते मैं बिलकुल थक गया, उसमें तन्मय हो गया। अब भी मैं उसीसे भरा हूं। ब्रह्मचर्यका जो अर्थ शास्त्रोंमें बताया है, वह अति शुद्ध है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह है, जिसने जन्मसे ही ब्रह्मचर्यका पालन किया हो। स्वप्नमें भो जिसका वीर्य-स्खलन न हुआ हो; लेकिन मैं नहीं जानता था

कि प्रजोत्पत्तिके हेतु जो सम्भोग करता है उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी क्यों माना गया है। कल यह बुलन्द बात मेरी समझ में आगई। जो दम्पति गृहस्थाश्रममें रहते हुए केवल प्रजोत्पत्तिके हेतुही परस्पर संयोग और एकान्त करते हैं, वे ठीक ब्रह्मचारी ही हैं। आज हम जिसे विवाह कहते हैं, वह विवाह नहीं, वह भ्रष्टाचार है। यद्यपि मैं कहता था कि प्रजोत्पत्तिके लिए विवाह है, फिर भी यह मानता था कि इसका मतलब सिर्फ यही है कि दोनोंको प्रजोत्पत्तिसे डर न मालूम हो, उसके परिणामको टालनेका प्रयत्न न हो और भोगमें दोनोंकी सहमति हो। मैं नहीं जानता कि उसका इससे भी अधिक कोई मतलब होगा; पर यह भी शुद्ध विवाह कब कहा जाय? दम्पति प्रजोत्पत्ति तभी करें जब जरूरत हो, और जब उसकी जरूरत हो तभी एकान्त भी करें। अर्थात् सम्भोग प्रजोत्पादनको कर्तव्य समझकर तथा उसके लिए ही हो। इसके अतिरिक्त कभी एकान्त न करें। यदि एक मनुष्य इस प्रकार हेतुपूर्वक सम्भोगको छोड़कर स्थिर वीर्य हो तो वह नैष्ठिक ब्रह्मचारीके बराबर है। सोचिए, ऐसा एकान्तवास जीवनमें कितनी बार हो सकता है? वीर्यवान नीरोग स्त्री-पुरुषोंके लिए तो जीवन में एक ही बार ऐसा अवसर हो सकता है। ऐसे व्यक्ति क्यों नैष्ठिक ब्रह्म-चारीके समान न माने जायं? जो बात मैं पहले थोड़ी-थोड़ी समझता था वह आज सूर्यकी तरह स्पष्ट हो गई है। जो विवाहित हैं, इसे ध्यानमें रखें। पहले भी मैंने यह बात बताई थी; पर उस समय मेरी इतनी श्रद्धा नहीं थी। उसे मैं अव्यावहारिक समझता था। आज व्यावहारिक समझता हूं। पशु-जीवनमें दूसरी बात हो सकती है; लेकिन मनुष्यके विवाहित जीवनका यह नियम होना चाहिए कि कोई भी पति-पत्नी बिना आवश्यक-ताके प्रजोत्पत्ति न करें और बिना प्रजोत्पादनके सम्भोग न करें।

हरिजन सेवक,

३ अप्रैल, १९३७

: २५ :

आश्चर्यजनक, अगर सच है !

खांसाहब अब्दुलगफ्फारखां और मैं सबेरे और शाम जब घूमने जाते हैं तो हमारी बात-चीत अक्सर ऐसे विषयों पर हुआ करती है, जो सभीके हितके होते हैं। खांसाहब सरहदी इलाकोंमें, यहांतक कि काबुल और उसके भी आगे काफी घूमे हैं, और सरहदी कबीलोंके बारेमें उनको बड़ी अच्छी जानकारी है। इसलिए वह अक्सर वहांके सीधे-सादे लोगोंकी आदतों और रस्म-रिवाजोंके बारेमें मुझे बतलाया करते हैं। वह मुझे बताते हैं कि इन लोगोंकी मुख्य खुराक, जो इस सभ्यताकी हवासे अबतक अछूते ही हैं, मक्का और जौ की रोटी और मसूर है। वक्तन-फवक्तन वे छाछ भी ले लिया करते हैं। वे गोश्त खाते हैं, पर बहुत कम। मैंने समझा कि उनकी मशहूर दिलेरीका एक-मात्र कारण उनका खुली हवामें रहना और वहांका अच्छा शक्तिवर्द्धक जलवायु ही है। 'नहीं' सिर्फ यही बात नहीं है', खांसाहबने उसी वक्त कहा, 'उनमें जो ताकत व दिलेरी है उसका भेद तो हमें उनके संयमी जीवनमें मिलता है। शादी वे, मर्द व औरतें दोनों ही, पूरी जवानीकी उम्रमें जाकर करते हैं। बेवफाई, व्यभिचार या अविवाहित प्रेमको तो वे जानते ही नहीं। शादीसे पहले सहवास करनेकी सजा वहां मौत है। इस तरहका गुनाह करनेवालेकी जान लेनेका उन्हें हक है।'

अगर यह संयम या इन्द्रिय-निग्रह वहां इतना व्यापक है, जैसा कि खांसाहब बतलाते हैं, तो इससे हमें हिन्दुस्तानमें एक ऐसा सबक मिलता है, जो हमें हृदयंगम कर लेना चाहिए। मैंने खांसाहबके आगे यह विचार रखा कि उन लोगोंके कदावर और दिलेर होनेका एक बहुत बड़ा सबब अगर उनका संयमी जीवन है, तो मन और शरीरके बीच पूरा सहयोग होना

ही चाहिए ; क्योंकि अगर मन विषय-तृप्तिके पीछे पड़ा रहा और शरीर ने निग्रह किया, तो इससे प्राण-शक्तिका इतना भयंकर नाश होगा कि शरीरमें कुछ भी नहीं बच रहेगा। खांसाहब मान गये कि यह अनुमान ठीक है। उन्होंने कहा कि जहांतक मैं इसकी जांच कर सका हूं, मुझे लगता है कि वे लोग संयमके इतने ज्यादा आदी हो गये हैं कि नौजवान मर्दों और औरतोंका शादीसे पहले विषय-तृप्ति करनेका कभी मन ही नहीं होता। खांसाहबने मुझसे यह भी कहा कि उन इलाकोंकी औरतें कभी पर्दा नहीं करतीं, वहां झूठी लज्जा नहीं है, औरतें निडर हैं, चाहे जहां आजादीसे घूमती हैं और अपनी सम्भाल खुद कर सकती हैं, अपनी इज्जत-आबरू बचा सकती हैं, किसी मर्दसे वे अपनी रक्षा नहीं कराना चाहतीं, उन्हें जरूरत भी नहीं। तो भी खांसाहब यह मानते हैं कि उनका यह संयम बुद्धि या जीती-जागती श्रद्धापर आधार नहीं रखता, इसलिए जब ये पहाड़ोंके रहनेवाले लोग सभ्य या नज़ाकतकी जिन्दगीके सम्पर्कमें आते हैं, तो उनका वह संयम टूट जाता है। सभ्यताके सम्पर्कमें आकर जब वे अपनी पुरानी बात छोड़ देते हैं, तो उन्हें इसके लिए कोई सजा नहीं मिलती और उनकी बेवफाई और व्यवहारको पब्लिक कम या ज्यादा उपेक्षाकी नजरसे देखती है। इससे ऐसे विचार सामने आ जाते हैं, जिनकी मुझे फिलहाल चर्चा नहीं करनी चाहिए। यह लिखनेका तो अभी मेरा यह मतलब है कि खांसाहबकी तरह जो लोग इन फिरकोंके आदमियोंके बारेमें जानकारी रखते हों, और उनके कथनका समर्थन करते हों, उनसे इसपर और भी रोशनी डलवाई जाय, और मैदानोंमें रहनेवाले नौजवानों और युवतियोंको बतलाया जाय कि संयमका पालन, अगर वह इन पहाड़ी फिरकोंके लिए सचमुच स्वाभाविक चीज है, जैसा कि खांसाहबका खयाल है, तो हम लोगोंके लिए भी उसे उतना ही स्वाभाविक होना चाहिए— अगर अच्छे-अच्छे विचारोंको हम अपने विचार जगतमें बसा लें, और यों ही घुस आनेवाले बाधक विचारों या विषय-विकारोंको जगह न दें। दर असल, अगर सद्विचार काफी बड़ी संख्यामें हमारे मनमें बस जायं, तो बाधक विचार वहां ठहर ही नहीं सकते। अवश्य इसमें साहसकी जरूरत

है । आत्म-संयम कायर आदमीको कभी हासिल नहीं होता । आत्म-संयम तो प्रार्थना और उपवास-रूपी जागरूकता और निरन्तर प्रयत्नका सुन्दर फल है । अर्थ-हीन स्तोत्रपाठ प्रार्थना नहीं है, न शरीरको भूखों मारना उपवास है, प्रार्थना तो उसी हृदयसे निकलती है जिसे कि ईश्वरका श्रद्धा-पूर्वक ज्ञान है; और उपवासका अर्थ है बुरे या हानिकारक विचार, कर्म या आहारसे परहेज रखना । मन विविध प्रकारके व्यंजनोंकी ओर दौड़ रहा है और शरीरको भूखों मारा जा रहा है, तो ऐसा उपवास तो निरर्थक व्रत-उपवाससे भी बुरा है ।

हरिजन सेवक,
१० अप्रैल १९३७

: २६ :

सन्तति-निरोध

प्रश्न—दरिद्र औरतोंकी सन्तान-वृद्धि रोकनेके लिए क्या उपाय करना चाहिए ?

उत्तर—हमारा तो कर्तव्य यही है कि उन्हें संयमका धर्म ही समझायें। कृत्रिम उपाय तो मर जाने जैसी बात है। और मैं नहीं समझता कि देहाती स्त्रियां उन्हें अपनायंगी। उनके बच्चोंके लिए दूध प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

प्रश्न—सन्तति-निरोधके लिए स्त्रियां तो संयम करना चाहें; पर पुरुष बलात्कार करें, तब क्या किया जाय ?

उत्तर—यह तो सच्चे स्त्री-धर्मका सवाल है। सतियोंको मैं पूजता हूं; पर उन्हें कुएं में नहीं गिराना चाहता। स्त्रीका सच्चा धर्म तो द्रौपदीने बताया है। पति अगर गिरता है तो स्त्री न गिरे। स्त्रीके संयममें बाधा डालना शुद्ध व्यभिचार है। यदि वह बलात्कार करने आवे तो उसे थप्पड़ मारकर भी सीधा करना उसका धर्म है। व्यभिचारी पतिके लिए वह दरवाजा बन्द कर दे। अधर्मी पतिकी पत्नी बननेसे उसे इन्कार करना चाहिए। हमें स्त्रियोंके अन्दर यह हिम्मत पैदा कर देनी चाहिए।

प्रश्न—मध्यम-वर्गकी स्त्रियोंका संतति-निरोधके विषयमें क्या कर्तव्य है ?

उत्तर—मध्यम-वर्गकी हो या बादशाही-वर्गकी हो, भोग भोगना हमारे हाथमें है; लेकिन परिणामके बादशाह हम नहीं बन सकते। सिद्धि होगी या नहीं, यह शंका करना हमारा काम नहीं है। हमारा काम तो सिर्फ़ यही होगा कि सत्य-धर्म सिखाएं। मध्यम-श्रेणीकी स्त्रियां नये-नये

उपाय काममें लाएं तो हमें मना करना चाहिए। संयम ही एक-मात्र उपाय हो सकता है।

प्रश्न—पतिको उपदंश जैसा कठिन रोग हो तब स्त्री क्या करे ?

उत्तर—उस हालतमें सन्तति-निरोधके उपायोंसे भी स्त्रीका बचाव नहीं हो सकता। ऐसे पतिको क्लीव ही समझकर उसे दूसरी शादी कर लेनी चाहिए; इसके लिए स्त्रियां इतनी विद्या सीख लें, जिससे वे स्वावलम्बी बन जायं।

गांधी-सेवा-संघ, द्वितीय अधिवेशन,
१० अप्रैल, १९३७

: २७ :

विवाहकी मर्यादा

श्री हरिभाऊ उपाध्याय लिखते हैं :

"'हरिजन सेवक' के इसी अंकमें 'धर्म-संकट' नामक आपका लेख पढ़ा। उसमें आपने लिखा है कि उक्त प्रकारके (अर्थात् मामा-भांजीके सम्बन्ध जैसे) सम्बन्धका प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है।...ऐसे प्रतिबन्ध रूढ़ियोंसे बने हैं। यह देखनेमें नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णयसे बने हैं।"

मेरा अनुमान यह है कि ये प्रतिबन्ध शायद सन्तानोत्पत्तिकी दृष्टिसे लगाये गए हैं। इस शास्त्रके ज्ञाता ऐसा मानते हैं कि विजातीय तत्त्वोंके मिश्रणसे सन्तति अच्छी होती है। इसलिए सगोत्र और सपिण्ड कन्याओंका पाणिग्रहण नहीं किया जाता।

यदि यह माना जाय कि यह केवल रूढ़ि है तो फिर सगी और चचेरी बहनोंके सम्बन्धपर भी कैसे आपत्ति उठाई जा सकती है? यदि विवाहका हेतु सन्तानोत्पत्ति ही है और सन्तानोत्पादनके ही लिए दम्पतिका संयोग करना योग्य है तो फिर वर-कन्याके चुनावके औचित्यकी कसौटी सु-प्रजननकी क्षमता ही होनी चाहिए। क्या और कसौटियां गौण समझी जायं? यदि हां, तो किस क्रमसे, यह प्रश्न सहज उठता है। मेरी रायमें वह इस प्रकार होना चाहिए—

(१) पारस्परिक आकर्षण और प्रेम।

(२) सुप्रजननकी क्षमता।

(३) कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा।

(४) समाज और देशकी सेवा।

(५) आध्यात्मिक उन्नति।
आपका इस सम्बन्धमें क्या मत है ?

हिन्दू-शास्त्रोंमें पुत्रोत्पत्तिपर जोर दिया गया है। सधवाओंको आशीर्वाद दिया जाता है, "अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव।" आप जो यह प्रतिपादन करते हैं कि दम्पति संतानके लिए संयोग करे तो इसका क्या यही अर्थ है कि सिर्फ एक ही संतान उत्पन्न करें, फिर वह लड़का हो या लड़की ? वंश-वर्धनकी इच्छाके साथ ही 'पुत्रसे नाम चलता है' यह इच्छा भी जुड़ी हुई मालूम होती है। केवल लड़कीसे इस इच्छाका कैसे समाधान हो सकता है ? बल्कि अभीतक समाजमें 'लड़कीके जन्म' का उतना स्वागत नहीं होता, जितना कि लड़केके जन्मका होता है। इसलिए यदि इन इच्छाओंको सामाजिक माना जाय तो फिर एक लड़का और एक लड़की—इस तरह दो संतति पैदा करनेकी छूट देना क्या अनुचित होगा ?

केवल संतानोत्पादनके लिए संयोग करनेवाले दम्पति ब्रह्मचारीवत् ही समझे जाने चाहिए—यह ठीक है—यह भी सही है कि संयत जीवनमें एक ही बार संयोगसे गर्भ रह जाता है। पहली बातकी पुष्टिमें एक कथा प्रचलित है—

वशिष्ठकी कुटियाके सामने एक नदी बहती थी। दूसरे किनारे विश्वामित्र तप करते थे। वशिष्ठ गृहस्थ थे। जब भोजन पक जाता, तो पहले अरुन्धती थाल परोसकर विश्वामित्रको खिलाने जाती, बादको वशिष्ठके घरपर सब लोग भोजन करते। यह नित्य-क्रम था। एक रोज बारिश हुई और नदीमें बाढ़ आ गई। अरुन्धती उस पार न जा सकी। उसने वशिष्ठसे इसका उपाय पूछा। उन्होंने कहा—'जाओ, नदीसे कहना, मैं सदा निराहारी विश्वामित्रको भोजन देने जा रही हूं, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धतीने इसी प्रकार नदीसे कहा—और उसने रास्ता दे दिया। तब अरुन्धतीके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि विश्वामित्र रोज तो खाना खाते हैं, फिर निराहारी कैसे हुए ? जब विश्वामित्र खाना खा चुके, तब अरुन्धतीने उनसे पूछा—'मैं वापस कैसे जाऊं, नदीमें तो बाढ़ है ?' विश्वामित्रने उलटकर

पूछा—'तो आई कैसे ?' उत्तरमें अरुन्धतीने वशिष्ठका पूर्वोक्त नुसखा बतलाया। तब विश्वामित्रने कहा—'अच्छा तुम नदीसे कहना, सदा ब्रह्मचारी वशिष्ठके यहां लौट रही हूं। नदी, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धती-ने ऐसा ही किया और उसे रास्ता मिल गया। अब तो उसके अचरजका ठिकाना न रहा। वशिष्ठके सौ पुत्रोंकी तो वह स्वयं ही माता थी। उसने वशिष्ठसे इसका रहस्य पूछा कि विश्वामित्रको सदा निराहारी और आपको सदा ब्रह्मचारी कैसे मानूं ? वशिष्ठने बताया—"जो केवल शरीर-रक्षणके लिए ही ईश्वरार्पण-बुद्धिसे भोजन करता है, वह नित्य भोजन करते हुए भी निराहारी ही है, और जो केवल स्व-धर्म पालनके लिए अनासक्ति-पूर्वक सन्तानोत्पादन करता है, वह संयोग करते हुए भी ब्रह्मचारी ही है।'

परन्तु इसमें और मेरी समझमें तो शायद हिन्दू-शास्त्रमें भी केवल एक सन्तति—फिर वह कन्या हो या पुत्र—का विधान नहीं है। अतएव यदि आपको एक पुत्र और एक पुत्रीका नियम मान्य हो, तो मैं समझता हूं, बहुतेरे दम्पतियोंका समाधान हो जाना चाहिए। अन्यथा मुझे तो ऐसा लगता है कि बिना विवाह किये एक बार ब्रह्मचारी रह जाना शक्य हो सकता है; परन्तु विवाह करनेपर केवल सन्तानोत्पादनके लिए, और फिर भी प्रथम संततिके ही लिए संयोग करके फिर आजन्म संयमसे रहना उससे कहीं कठिन है। मेरा तो ऐसा मत बनता जा रहा है कि 'काम' मनुष्यमें स्वाभाविक प्रेरणा है। उसमें संयम सु-संस्कारका सूचक है। 'संततिके लिए संयोग' का नियम बना देनेसे सु-संस्कार या धर्मकी तरफ मनुष्यकी गति होती है, इसलिए यह वांछनीय है। संतानोत्पत्तिके ही लिए संयोग करनेवाले संयमी-का आदर करूंगा, कामेच्छाकी तृप्ति करनेवालेको भोगी कहूंगा; पर उसे पतित नहीं मानना चाहता, न ऐसा वातावरण ही पैदा करना ठीक होगा कि पतित समझकर लोग उसका तिरस्कार करें। इस विचारमें मेरी कहीं ग़लती हो, तो बतावें।"

विवाहमें जो मर्यादा बांधी गई है, उसका शास्त्रीय कारण मैं नहीं जानता। रूढ़िको ही, जो मर्यादाकी वृद्धिके लिए बनाई जाती है, नैतिक कारण माननेमें कोई आपत्ति नहीं है। संतान-हितकी दृष्टिसे ही अगर

भाई-बहनके सम्बन्धका प्रतिबन्ध योग्य है, तो चचेरी बहन इत्यादिपर भी प्रतिबन्ध होना चाहिए; लेकिन भाई-बहनके सम्बन्ध या ऐसे सम्बन्धके अतिरिक्त कोई प्रतिबन्ध धर्ममें नहीं माना जाता। इसलिए रूढ़िका जो प्रतिबन्ध जिस समाजमें हो, उसका अनुसरण उचित मालूम देता है। नैतिक विवाहके लिए जो पांच मर्यादाएं हरिभाऊजीने रखी हैं, उनका क्रम बदलना चाहिए। पारस्परिक प्रेम और आकर्षणको अन्तिम स्थान देना चाहिए। अगर उसे प्रथम स्थान दिया जाय, तो दूसरी सब शर्तें उसके आश्रयमें जानेसे निरर्थक बन सकती हैं। इसलिए उक्त क्रममें आध्यात्मिक उन्नतिको प्रथम स्थान देना चाहिए। समाज और देश-सेवाको दूसरा स्थान दिया जाय। कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधाको तीसरा। पारस्परिक आकर्षण और प्रेमको चौथा। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस जगह इन प्रथम तीन शर्तोंका अभाव हो, वहां पारस्परिक प्रेमको स्थान नहीं मिल सकता। अगर प्रेमको प्रथम स्थान दिया जाय तो वह सर्वोपरि बनकर दूसरोंकी अवगणना कर सकता है, और करता है, ऐसा आजकलके व्यवहारमें देखनेमें आता है। प्राचीन और अर्वाचीन नवल कथाओंमें भी यह पाया जाता है। इसलिए यह कहना होगा कि उपर्युक्त तीन शर्तोंका पालन होते हुए भी जहां पारस्परिक आकर्षण नहीं है वहां विवाह त्याज्य है। सुप्रजननकी क्षमताको शर्त न माना जाय; क्योंकि यही एक वस्तु विवाहकी शर्त नहीं।

हिन्दू-शास्त्रमें पुत्रोत्पत्तिपर अवश्य जोर दिया गया है। यह उस कालके लिए ठीक था, जब समाज में शस्त्र-युद्धको अनिवार्य स्थान मिला हुआ था, और पुरुष-वर्गकी बड़ी आवश्यकता थी। उसी कारणसे एकसे अधिक पत्नियोंकी भी इजाजत थी और अधिक पुत्रोंसे अधिक बल माना जाता था। धार्मिक दृष्टिसे देखें तो एक ही संतति 'धर्मज' या 'धर्मजा है। मैं पुत्र और पुत्रीके बीच भेद नहीं करता हूं; दोनों एक समान स्वागत के योग्य हैं।

वशिष्ठ, विश्वामित्रका दृष्टांत सार-रूपमें अच्छा है। उसे शब्दश सत्य अथवा शक्य माननेकी आवश्यकता नहीं। उससे इतना ही सार निकालना काफी है कि सन्तानोत्पत्तिके ही अर्थ किया हुआ संयोग ब्रह्मचर्यका

विरोधी नहीं है। कामाग्निकी तृप्तिके कारण किया हुआ संयोग त्याज्य है। उसे निन्द्य माननेकी आवश्यकता नहीं। असंख्य स्त्री-पुरुषोंका मिलन भोगके ही कारण होता है, और होता रहेगा। उससे जो दुष्परिणाम होते रहते हैं, उन्हें भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य अपने जीवनको धार्मिक बनाना चाहता है, जो जीव-मात्रकी सेवाको आदर्श समझकर संसार-यात्रा समाप्त करना चाहता है, उसके लिए ही ब्रह्मचर्यकी मर्यादाका विचार किया जा सकता है। और ऐसी मर्यादा आवश्यक भी है।

हरिजन सेवक,
१५ अप्रैल, १९३७

: २८ :

एक युवककी कठिनाई

नवयुवकोंके लिए मैंने 'हरिजन' में जो लेख लिखा था, उसपर एक नवयुवक, जिसने अपना नाम गुप्त ही रखा है, अपने मनमें उठे एक प्रश्नका उत्तर चाहता है। यों गुमनाम पत्रोंपर कोई ध्यान न देना ही सबसे अच्छा नियम है; लेकिन जब कोई सारयुक्त बात पूछी जाय, जैसी कि इसमें पूछी गई है, तो कभी-कभी मैं इस नियमको तोड़ भी देता हूं।

पत्र हिन्दीमें है और कुछ लम्बा है। उसका सारांश यह है—

"आपके लेखोंको पढ़कर मुझे सन्देह होता है कि आप युवकोंके स्वभावको कहांतक समझते हैं। जो बात आपके लिए सम्भव हो गई है वह सब युवकोंके लिए सम्भव नहीं है। मेरा विवाह हो चुका है। इतनेपर भी मैं स्वयं तो संयम कर सकता हूं; लेकिन मेरी पत्नी ऐसा नहीं कर सकती। बच्चे पैदा हों, यह तो वह नहीं चाहती; लेकिन विषयोपभोग करना चाहती है। ऐसी हालतमें, मैं क्या करूं? क्या यह मेरा फर्ज नहीं है कि मैं उसकी भोगेच्छाको तृप्त करूं? दूसरे जरियेसे वह अपनी इच्छा पूरी करे, इतनी उदारता तो मुझमें नहीं है। फिर अखबारोंमें जो पढ़ता रहा हूं, उससे मालूम पड़ता है कि विवाह-सम्बन्ध कराने और नव-दम्पतियोंको आशीर्वाद देनेमें भी आपको कोई आपत्ति नहीं है। यह तो आप अवश्य जानते होंगे, या आपको जानना चाहिए कि वे सब उस ऊंचे उद्देश्यसे ही नहीं होते जिसका कि आपने उल्लेख किया है।"

पत्र-लेखकका कहना ठीक है। विवाहके लिए उम्र, आर्थिक स्थिति आदिकी एक कसौटी मैंने बना रखी है। उसको पूरा करके जो विवाह होते हैं, मैं उनकी मंगल-कामना करता हूं। इतने विवाहोंमें मैं शुभ-कामना करता हूं, इससे सम्भवतः यही प्रकट होता है कि देशके युवकोंको इस हद

तक मैं जानता हूं कि यदि वे मेरा पथ-प्रदर्शन चाहें तो मैं वैसा कर सकता हूं।

इस भाईका मामला मानो इस तरहका एक नमूना है जिसके कारण यह सहानुभूतिका पात्र है; लेकिन संयोगका एक-मात्र उद्देश्य प्रजनन ही है, यह मेरे लिए एक प्रकारसे नई खोज है। इस नियमको जानता तो मैं पहलेसे था; लेकिन जितना चाहिए उतना महत्त्व इसे मैंने पहले कभी नहीं दिया था। अभीतक मैं इसे पवित्र इच्छा-मात्र समझता था। लेकिन अब तो मैं इसे विवाहित जीवनका ऐसा मौलिक विधान मानता हूं कि यदि इसके महत्त्वको पूरी तरह मान लिया गया तो इसका पालन कठिन नहीं है। जब समाजमें इस नियमको उपयुक्त स्थान मिल जायगा तभी मेरा उद्देश्य सिद्ध होगा; क्योंकि मेरे लिए तो यह जाज्वल्यमान विधान है। जब हम इसको भंग करते हैं, तो उसके दण्डस्वरूप बहुत-कुछ भुगतना पड़ता है। पत्र-प्रेषक युवक यदि इसके उस महत्त्वको समझ जाय, जिसका कि अनुमान नहीं लगाया जा सकता है और यदि उसे अपनेमें विश्वास एवं अपनी पत्नीके लिए प्रेम हो, तो वह अपनी पत्नीको भी अपने विचारोंका बना लेगा। उसका यह कहना कि मैं स्वयं संयम कर सकता हूं क्या सच है? क्या उसने अपनी पाशविक वासनाओंको जन-सेवा जैसी किसी ऊंची भावनामें परिणत कर लिया है? क्या स्वभावतः वह ऐसी कोई बात नहीं करता, जिससे उसकी पत्नीकी विषय-भावनाको प्रोत्साहन मिले? उसे जानना चाहिए कि हिन्दू-शास्त्रानुसार आठ तरहके सहवास माने गए हैं, जिनमें संकेतों द्वारा विषय-प्रवृत्तिको प्रेरित करना भी शामिल है। क्या वह इसमें मुक्त है? यदि वह ऐसा हो और सच्चे दिलसे यह चाहता हो कि उसकी पत्नीमें भी विषय-वासना न रहे तो वह उसे शुद्धतम प्रेमसे सराबोर करे, उसे यह नियम समझावे, सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाके बगैर सहवास करनेसे शारीरिक हानि होती है वह उसे समझावे और वीर्य-रक्षा का महत्व बतलावे। अलावा इसके उसे चाहिए कि अपनी पत्नीको अच्छे कामों-की ओर प्रवृत्त करके उनमें उसे लगाये रखे और उसकी विषय-वृत्तिको शांत करनेके लिए उसके भोजन, व्यायाम आदिको नियमित करनेका यत्न

करे। और इस सबसे बढ़कर यदि वह धर्म-प्रवृत्तिका व्यक्ति है, तो अपने उस जीवित विश्वासको वह अपनी सहचरी पत्नीमें भी पैदा करनेकी कोशिश करे, क्योंकि मुझे यह बात कहनी होगी कि ब्रह्मचर्य-व्रतका तबतक पालन नहीं हो सकता जबतक कि ईश्वरमें, जो कि जीता-जागता सत्य है, अटूट विश्वास न हो। आजकल तो यह एक फैशन-सा बन गया है कि जीवन-में ईश्वरका कोई स्थान नहीं समझा जाता और सच्चे ईश्वरमें अडिग आस्था रखनेकी आवश्यकताके बिना ही सर्वोच्च जीवनतक पहुंचने-पर जोर दिया जाता है। मैं अपनी यह असमर्थता कबूल करता हूं कि जो अपनेसे ऊंची किसी दैवी-शक्तिमें विश्वास नहीं रखते, या उसकी जरू-रत नहीं समझते, उन्हें मैं यह बात समझा नहीं सकता। पर मेरा अपना अनुभव तो मुझे इसी ज्ञानपर ले जाता है कि जिसके नियमानुसार सारे विश्वका संचालन होता है, उस शाश्वत नियममें अचल विश्वास रखे बिना पूर्णतम जीवन सम्भव नहीं है। इस विश्वाससे विहीन व्यक्ति तो समुद्रसे अलग आ पड़नेवाली उस बूंदके समान हैं, जो नष्ट होकर ही रहती है; परन्तु जो बूंद समुद्रमें ही रहती है वह उसकी गौरव-वृद्धिमें योग देती है और हमें प्राण-प्रद वायु पहुंचानेका सम्मान उसे प्राप्त होता है।

हरिजन सेवक,

२४ अप्रैल, १९३७

: २६ :

विद्यार्थियोंके लिए

"'हरिजन' के पिछले एक अंकमें आपने 'एक युवककी कठिनाई' शीर्षक एक लेख लिखा है, जिसके सम्बन्धमें नम्रता-पूर्वक आपको यह लिख रहा हूं। मुझे ऐसा लगता है कि आपने उस विद्यार्थीके साथ न्याय नहीं किया। यह प्रश्न आसानीसे हल होनेवाला नहीं। उसके सवालका आपने जो जवाब दिया है, वह संदिग्ध और सामान्य रायका है। आपने विद्यार्थियोंसे यह कहा है कि वे झूठी प्रतिष्ठाका खयाल छोड़कर साधारण मजदूरोंकी तरह बन जायं। यह सब सिद्धांतकी बातें आदमीको कुछ रास्ता नहीं सुझातीं और न आप-जैसे बहुत ही व्यावहारिक आदमीको शोभा देती हैं। इस प्रश्नपर आप अधिक विस्तारके साथ विचार करनेकी कृपा करें और नीचे मैं जो उदाहरण दे रहा हूं, उसमें क्या रास्ता निकाला जाय, इसका तफसील-वार व्यावहारिक और व्यापक उत्तर दें।

मैं लखनऊ-यूनिवर्सिटीमें एम० ए० का विद्यार्थी हूं। प्राचीन भारतीय इतिहास मेरा विषय है। मेरी उम्र करीबन २१ सालकी है। मैं विद्याका प्रेमी हूं और मेरी यह इच्छा है कि जीवनमें जितनी भी विद्या प्राप्त कर सकूं, करूं। आपका बताया हुआ जीवनका आदर्श भी मुझे प्रिय है। एकाध महीनेमें मैं एम० ए० फाइनलकी परीक्षा दे दूंगा और मेरी पढ़ाई पूरी हो जायगी। इसके बाद मुझे 'जीवनमें प्रवेश' करना पड़ेगा।

मुझे अपनी पत्नीके अलावा ४ भाइयों, (मुझसे सब छोटे हैं, और एककी शादी भी हो चुकी है) २ बहनों और माता-पिताका पोषण करना है। हमारे पास कोई पूंजीका साधन नहीं है। जमीन है; पर बहुत ही थोड़ी।

अपने भाई-बहनोंकी शिक्षा के लिए क्या करूं? फिर बहनोंकी शादी

भी तो जल्दी करनी है । इस सबके अलावा घर-भरके लिए अन्न और वस्त्र कहांसे लाकर जुटाऊंगा ?

मुझे मौज व टीमटामसे रहनेका मोह नहीं है । मैं और मेरे आश्रित-जन अच्छा निरोगी जीवन बिता सकें, और वक्त-जरूरतका काम अच्छी तरह चलता जाय, तो इतनेसे मुझे संतोष है । दोनों समय स्वास्थ्यकर आहार और ठीक-ठीक कपड़े मिलते जायं, बस इतना ही मेरे सामने सवाल है ।

पैसेके बारेमें मैं ईमानदारीके साथ रहना चाहता हूं । भारी सूद लेकर या शरीर बेचकर मुझे रोज़ी नहीं कमानी है । देश-सेवा करनेकी भी मुझे इच्छा है । अपने इस लेखमें आपने जो शर्तें रखी हैं, उन्हें पूरा करनेके लिए मैं तैयार हूं ।

पर मुझे यह नहीं सूझ रहा है कि मैं क्या करूं ? शुरुआत कहां और कैसे की जाय ? शिक्षा मुझे केवल किताबी और अव्यावहारिक मिली है। कभी-कभी मैं सूत कातनेका विचार करता हूं; पर कातना सीखें कैसे, और उस सूतका क्या होगा, इसका भी मुझे पता नहीं ।

जिन परिस्थितियोंमें पड़ा हूं, उनमें आप मुझे क्या सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधन काममें लानेकी सलाह देंगे ? संयम और ब्रह्मचर्यमें मेरा विश्वास है; पर ब्रह्मचारी बननेमें मुझे अभी कुछ समय लगेगा । मुझे भय है कि पूर्ण संयमकी सिद्धि प्राप्त होनेके पूर्व यदि मैं कृत्रिम साधनोंका उपयोग नहीं करूंगा, तो मेरी स्त्रीके कई बच्चे पैदा हो जायंगे और इस तरह बैठे-ठाले मैं आर्थिक बरबादी मोल ले लूंगा । और फिर मुझे ऐसा लगता है कि अपनी स्त्रीसे, उसके स्वाभाविक भावना-विकासमें, कड़े संयमका पालन करना बिलकुल ही उचित नहीं । आखिरकार साधारण स्त्री-पुरुषोंके जीवनमें विषय-भोगके लिए तो स्थान है ही । मैं उसमें अपवाद-रूप नहीं हूं । और मेरी स्त्रीको, आपके 'ब्रह्मचर्य', 'विषय-सेवनके खतरे' आदि विषयोंके महत्त्वपूर्ण लेख पढ़ने व समझनेका मौका नहीं मिला, इसलिए वह इससे भी कम तैयार है ।

मुझे अफसोस है कि पत्र ज्यादा लम्बा हो गया है; पर मैं संक्षेपमें

लिखकर इतनी स्पष्टतासे साथ अपने विचार जाहिर नहीं कर सकता था।

इस पत्रका आपको जो उपयोग करना हो वह आप खुशीसे कर सकते हैं।"

यह पत्र मुझे फरवरीके अन्तमें मिला था; पर जवाब इसका मैं अब लिख सका हूं। इसमें ऐसे महत्वके प्रश्न उठाये गए हैं कि हर एककी चर्चाके लिए इस अखबारके दो-दो कालम चाहिएं; पर मैं संक्षेपमें ही जवाब दूंगा।

इस विद्यार्थीने जो कठिनाइयां बताई हैं, वे देखनेमें गम्भीर मालूमहोती हैं; पर वे उसकी खुदकी पैदा की हुई हैं। इन कठिनाइयोंके नाम निर्देश भरसे ही जान लेना चाहिए कि इस विद्यार्थीकी और अपने देशकी शिक्षा-पद्धतिकी स्थिति कितनी खोटी है। यह पद्धति शिक्षाको केवल बाजारू, बेचकर पैसा पैदा करनेकी चीज बना देती है। मेरी दृष्टिसे शिक्षाका उद्देश्य बहुत ऊंचा और पवित्र है। यह विद्यार्थी अगर अपनेको करोड़ों आदमियोंमेंसे एक माने, तो वह देखेगा कि वह अपनी डिगरीमें जो आशा रखता है, वह करोड़ों युवक और युवतियोंसे पूरी नहीं हो सकती। अपने पत्रमें उसने जिन सम्बन्धियोंका जिक्र किया है उनकी परवरिशके लिए वह क्यों जवाबदार बने? बड़ी उम्रके आदमी अच्छे मजबूत शरीरके हों, तो वे अपनी आजीविकाके लिए मेहनत-मजूरी क्यों न करें? एक उद्योगी मधुमक्खीके पीछे—भलेही वह नर हो—बहुत-सी आलसी मधु-मक्खियोंका रखना गलत तरीका है।

इस विद्यार्थीकी उलझनका इलाज, उसने जो बहुत-सी चीजें सीखी हैं, उनके भूल जानेमें है। उसे शिक्षा-सम्बन्धी अपने विचार बदल देने चाहिएं। अपनी बहनोंको वह ऐसी शिक्षा क्यों दे, जिसपर इतना ज्यादा पैसा खर्च करना पड़े? वे कोई उद्योग-धन्धा वैज्ञानिक रीतिसे सीखकर अपनी बुद्धिका विकास कर सकती हैं। जिस क्षण वे शरीरके विकासके साथ-साथ मनका विकास कर लेंगी, अगर वे ऐसा करेंगी, उसी क्षण वे अपनेको समाजका शोषण करनेवाली नहीं; किन्तु सेविकायें समझना

सीखेंगी, तो उनके हृदयका अर्थात् आत्माका विकास होगा। और वे अपने भाईके साथ आजीविकाके लिए काम करनेमें समान हिस्सा लेंगी।

पत्र लिखनेवाले विद्यार्थीने अपनी बहनोंके ब्याहका उल्लेख किया है। उसकी भी यहां चर्चा कर लूं। शादी 'जल्दी' होगी ऐसा लिखनेका क्या अर्थ है, यह मैं नहीं जानता। २० सालकी उम्र न हो जाय, तबतक उनकी शादी करनेकी जरूरत ही नहीं और अगर वह अपने जीवनका सारा क्रम बदल लेगा तो वह अपनी बहनोंको अपना-अपना वर खुद ढूंढ़ लेने देगा; और विवाह-संस्कारमें ५) रुपयेसे अधिक खर्च होना ही नहीं चाहिए। मैं ऐसे कितने ही विवाहोंमें उपस्थित रहा हूं और उनमें उन लड़कियोंके पति या उनके बड़े-बूढ़े खासी अच्छी स्थितिके ग्रेजुएट थे।

कातना कहां और कैसे सीखा जा सकता है, उसे इसका भी पता नहीं। उसकी यह लाचारी देखकर करुणा आती है। लखनऊमें वह प्रयत्न-पूर्वक तलाश करे, तो कातना सिखाने-वाले उसे वहां कई युवक मिल सकते हैं; पर उसे अकेला कातना सीख कर बैठे रहनेकी जरूरत नहीं, हालांकि सूत कातना भी पूरे समयका धन्धा होता जा रहा है, और वह ग्राम-वृत्ति वाले स्त्री-पुरुषोंको पर्याप्त आजीविका दे सकनेवाला उद्योग बनता जा रहा है। मुझे आशा है कि मैंने जो कहा है, उसके बाद बाकीका सब यह विद्यार्थी खुद समझ लेगा।

अब सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंके सम्बन्धमें यहां भी उसकी कठिनाई काल्पनिक ही है। यह विद्यार्थी अपनी स्त्रीकी बुद्धिको जिस तरह आंक रहा है, वह ठीक नहीं। मुझे तो जरा भी शंका नहीं कि अगर वह साधारण स्त्रियोंकी तरह है, तो पतिके संयमके अनुकूल वह सहल हो जायगी। विद्यार्थी खुद अपने मनसे पूछकर देखे कि उसके मनमें पर्याप्त संयम है या नहीं? मेरे पास जितने प्रमाण हैं, वे तो सब यही बताते हैं कि संयम-शक्तिका अभाव स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषमें ही अधिक होता है; पर इस विद्यार्थीको अपनी संयम रखनेकी शक्ति कम समझकर उसे हिसाब मेंसे निकाल देनेकी जरूरत नहीं। उसे बड़े कुटुम्बकी सम्भावनाका मर्दा-नगीके साथ सामना करना चाहिए, और उस परिवारके पालन-पोषण

करनेका अच्छे-से-अच्छा जरिया ढूंढ़ लेना चाहिए। उसे जानना चाहिए कि करोड़ों आदमियोंको इन कृत्रिम साधनोंका पता ही नहीं, इन साधनोंको काममें लानेवालोंकी संख्या तो बहुत-बहुत होगी तो कुछेक हजार ही होगी। उन करोड़ोंको इस बातका भय नहीं होता कि बच्चोंका पालन किस तरह करेंगे, यद्यपि बच्चे वे सब मां-बापकी इच्छासे नहीं होते। मैं चाहता हूं कि मनुष्य अपने कर्मके परिणामका सामना करनेसे इन्कार न करे। ऐसा करना कायरता है। जो लोग कृत्रिम साधनोंको काममें लाते हैं, वे संयमका गुण नहीं सीख सकते। उन्हें इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी। कृत्रिम साधनोंके साथ भोगा हुआ भोग बच्चोंका आना तो रोकेगा; पर पुरुष और स्त्री दोनोंकी—स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषकी अधिक—जीवन-शक्तिको वह चूस लेगा। आसुरी वृत्तिके खिलाफ युद्ध करनेसे इन्कार करना नामर्दी है। पत्र-लेखक अगर अनचाहे बच्चोंको रोकना चाहता है, तो उसके सामने एकमात्र अचूक और सम्मानित मार्ग यही है कि उसे संयम-पालन करनेका निश्चय कर लेना चाहिए। सौ बार भी उसके प्रयत्न निष्फल जायं तो भी क्या सच्चा आनन्द तो युद्ध करनेमें है, उसका परिणाम तो ईश्वरकी कृपासे ही आता है।

हरिजन सेवक,
२४ अप्रैल, १९३७

: ३० :

विवाह-संस्कार

[गांधी-सेवा-संघके हुदलीमें हुए तृतीय अधिवेशनमें गांधीजीकी पोती तथा श्री महादेव देसाईकी बहनका विवाह हुआ था।

अपने स्वभावके विपरीत, गांधीजी ने उस दिन सबकी उपस्थितिमें वर-बधुओंसे जो कहना था वह नहीं कहा; बल्कि खानगी तौरपर उन्हें उपदेश दिया। किन्तु गांधीजीके वे विचार सभी दम्पतियोंके लिए हितकर हैं, अतः मैं उन विचारोंको नीचे सारांश रूपमें देनेका, जहांतक मुझसे हो सकेगा, प्रयत्न करता हूं। —म० दे०]

"तुम्हें यह जानना ही चाहिए कि मैं इन संस्कारोंमें उसी हदतक विश्वास करता हूं, जहांतक कि ये हमारे अन्दर कर्तव्य-पालनकी भावना को जगाते हैं। जबसे मैंने अपने सम्बन्धमें विचार करना शुरू किया, तभी-से मेरी यह मनोवृत्ति है। तुमने जिन मंत्रोंका उच्चारण किया, तभीसे मेरी यह मनोवृत्ति है। तुमने जिन मंत्रोंका उच्चारण किया है और जिन प्रतिज्ञाओंको लिया है, वे सब-की-सब संस्कृतमें थीं; पर तुम्हारे लिए उन सबका अनुवाद कर दिया गया था। संस्कृतका हमने इसलिए आश्रय लिया; क्योंकि में जानता हूं कि संस्कृत शब्दोंमें शक्ति है, जिसके प्रभाव-के नीचे आना मनुष्य पसन्द ही करेगा।

"विवाह-संस्कारके समय पतिने जो इच्छाएं प्रकट की थीं, उनमें एक यह भी है कि वधू अच्छे निरोगीपुत्रकी जननी बने। इस कामनासे मुझे आघात नहीं पहुंचा। इसके माने यह नहीं हैं कि सन्तान पैदा करना लाजिमी है; पर इसका अर्थ यह है कि यदि संतानकी आवश्यकता है, तो शुद्ध धर्म-भावनासे विवाह करना जरूरी है। जिसे सन्तानकी जरूरत नहीं, उसे

विवाह करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं। विषय-भोगकी तृप्तिके लिए किया हुआ विवाह विवाह नहीं वह तो व्यभिचार है। इसलिए आजके विवाह-संस्कारोंका अर्थ यह है कि जब स्त्री-पुरुष दोनोंकी ही सन्ततिके लिए स्पष्ट इच्छा हो, केवल तभी उन्हें सम्भोगकी अनुमति मिलती है। यह सारी ही कल्पना पवित्र है। इसलिए इस कामको प्रार्थनापूर्वक ही करना होगा। कामोत्तेजना और विषय-सुखकी प्राप्तिके लिए साधारणतया स्त्री-पुरुषमें जो प्रेमासक्ति देखनेमें आती है, उसका इस पवित्र कल्पनामें नाम भी नहीं। अगर दूसरी सन्तान नहीं चाहिए, तो स्त्री-पुरुषका ऐसा सम्भोग जीवनमें केवल एक ही बार होगा। जो दम्पति चारित्र्य और शरीरसे स्वस्थ नहीं हैं, उन्हें सम्भोग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं, और अगर वे ऐसा करते हैं तो वह 'व्यभिचार' है। अगर तुमने यह सीखा हो कि विवाह विषय-तृप्तिके लिए है तो तुम्हें यह चीज भूल जानी चाहिए। यह तो एक वहम है। तुम्हारा सारा ही संस्कार पवित्र अग्निकी साक्षीमें हुआ है। तुम्हारे अन्दर जो भी काम-वासना हो उसे वह पवित्र अग्नि भस्म कर दे।

"एक और वहमसे तुम्हें अलग रखनेके लिए मैं तुमसे कहूंगा। यह वहम दुनियामें आजकल जोरोंसे फैलता जा रहा है। यह कहा जा रहा है कि इन्द्रिय-निग्रह और संयम ग़लत तरीक़े हैं, और विषय-वासनाकी अबाध तृप्ति और स्वच्छन्द प्रेम सबसे अधिक प्राकृतिक वस्तु है। इससे अधिक विनाशकारी वहम कभी सुननेमें नहीं आया। हो सकता है कि तुम आदर्शतक न पहुंच सको, तुम्हारा शरीर अशक्त हो; पर इससे आदर्शको नीचा न कर देना, अधर्म को धर्म न बना लेना। अपनी आत्म-निर्बलताके क्षणोंमें मेरा यह कहना याद रखना। इस पवित्र अवसरकी स्मृति तुम्हें डांवाडोल न होने दे, और तुम्हें इन्द्रिय-निग्रहकी ओर ले जाय। विवाह-का अर्थ ही इन्द्रिय-निग्रह और काम-वासनाका दमन है। अगर विवाह-का कोई दूसरा अर्थ है तो वह स्वार्पण नहीं; किन्तु सन्तति-प्राप्तिको छोड़कर किसी दूसरे प्रयोजनसे किया हुआ विवाह विवाह नहीं है। विवाहने तुम्हें मैत्री और समानताके स्वर्ण-सूत्रसे बांध दिया है। पतिको अगर स्वामी कहा गया है तो पत्नीको 'स्वामिनी'। एक-दूसरेके दोनों सहायक हैं, जीवनके

समस्त कार्य और कर्तव्य पूरे करनेमें वे एक दूसरेका सहयोग करने वाले हैं। लड़को ! तुमसे मैं यह कहूंगा कि अगर ईश्वरने तुम्हें अच्छी बुद्धि और उज्ज्वल भावनाएं बख्शी हैं तो तुम अपनी पत्नियोंमें भी इन सद्गुणोंका प्रवेश करो। उनके तुम सच्चे शिक्षक और मार्ग-दर्शक बनना, उन्हें मदद देना और उन्हें मार्ग दिखाना; पर कभी उनके बाधक न बनना, न उन्हें ग़लत रास्ते पर ले जाना। तुम्हारे बीचमें विचार, वचन और कर्मका पूर्ण सामंजस्य हो, तुम अपने हृदयकी बात एक-दूसरेसे न छिपाओ, तुम एकात्म बन जाओ।

"मिथ्याचारी या दम्भी न बनना। जिस कामका करना तुम्हारे लिए असम्भव हो, उसे पूरा करनेके निष्फल प्रयत्नोंमें अपना स्वास्थ्य न गिरा बैठना। इन्द्रिय-निग्रहसे कभी किसीका स्वास्थ्य नष्ट नहीं होता। जिससे मनुष्यका स्वास्थ्य नष्ट होता है वह निग्रह नहीं किन्तु बाह्य अवरोध है। सच्चे आत्म-निग्रही व्यक्तिकी शक्ति तो दिन-दिन बढ़ती है और शान्तिके वह अधिकाधिक समीप पहुंचता जाता है। आत्म-निग्रहकी सबसे पहली सीढ़ी विचारोंका निग्रह है। अपनी मर्यादाको समझ लो, और जितना हो सके उतना ही करो। मैंने तो तुम्हारे सामने आदर्श रख दिया है—एक समकोण खींच दिया है। अपनी शक्तिके अनुसार जितना तुमसे हो सके उतना प्रयत्न इस आदर्शतक पहुंचनेका करना। पर अगर तुम असफल हो जाओ तो दुःख या शर्मका कोई कारण नहीं। मैंने तो तुम्हें सिर्फ यह बतलाया है कि यज्ञोपवीत-संस्कारकी तरह विवाह भी एक स्वार्पण-संस्कार है, एक नया जन्म धारण करना है। मैंने तुमसे जो कहा है, उससे भयभीत न होना, और न कोई दुर्बलता महसूस करना। हमेशा विचार, वचन और कर्मकी पूर्ण एकताको अपना लक्ष्य बनाये रहना। विचारमें जितनी सामर्थ्य है, उतनी और किसी वस्तुमें नहीं। कर्म वचनका अनुसरण करता है और वचन विचारका। संसार एक महान् प्रबल विचारका ही परिणाम है, और जहां विचार प्रबल और पवित्र है वहां परिणाम भी हमेशा प्रबल और पवित्र होगा। मैं चाहता हूं कि तुम एक उच्चादर्शका अभेद्य कवच धारण करके जाओ, और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि तुम्हें

कोई भी प्रलोभन हानि नहीं पहुंचा सकेगा, कोई भी अपवित्रता तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकेगी।

"जिन विधियोंको तुम्हें समझाया गया है, उन्हें याद रखना। 'मधु-पर्क' की सीधी-सादी दीखनेवाली विधिको ही ले लो। इसका अभिप्राय यह है कि सारा संस्कार मधुसे परिपूर्ण है, जरूरत सिर्फ यह है कि जब बाकी सब लोग उसमें से अपना हिस्सा ले लें, तब तुम उसे ग्रहण करो। अर्थात् त्यागसे ही आनन्द मिलता है।"

"लेकिन", एक वरने पूछा, "अगर सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा न हो, तो क्या विवाह ही नहीं करना चाहिए ?"

"निश्चय ही नहीं", गांधीजीने कहा, "आध्यात्मिक विवाहोंमें मेरा विश्वास नहीं है। कई ऐसे उदाहरण जरूर मिलते हैं कि जिनमें पुरुषोंमे शारीरिक सम्भोगका कोई खयाल न कर सिर्फ स्त्रियोंकी रक्षा करनेके विचारसे ही विवाह किये; लेकिन यह निश्चय है कि ऐसे उदाहरण बहुत कम बिरले ही हैं। पवित्र वैवाहिक जीवनके बारेमें मैंने जो-कुछ लिखा है, वह सब तुम्हें जरूर पढ़ लेना चाहिए। मुझपर तो, मैंने महाभारतमें जो कुछ पढ़ा है, दिन-पर-दिन उसका ज्यादह-से-ज्यादह असर पड़ता जा रहा है। उसमें व्यासके नियोग करनेका वर्णन है। उसमें व्यासको सुन्दर नहीं बताया है, बल्कि वह तो इससे विपरीत थे। उनकी शक्ल-सूरतका उसमें जो वर्णन आया है, उससे मालूम पड़ता है कि देखनेमें वह बड़े कुरूप थे, प्रेम-प्रदर्शनके लिए कोई हाव-भाव भी उन्होंने नहीं बताये ? बल्कि सम्भोगसे पहले अपने सारे शरीर पर उन्होंने घी चुपड़ लिया था। उन्होंने सम्भोग किया वह विषय-वासनाकी पूर्तिके लिए नहीं, बल्कि सन्तानोत्पत्तिके लिए किया था। सन्तानकी इच्छा बिलकुल स्वाभाविक है, और जब एक बार यह इच्छा पूर्ण हो जाय, तो फिर सम्भोग नहीं करना चाहिए।

मनुने पहली सन्ततिको धर्मज अर्थात् धर्म-भावनासे उत्पन्न बताया है और उसके बाद पैदा होनेवालेको कामज अर्थात् कामवृत्तिके फलस्वरूप पैदा होनेवाला कहा है। सार-रूपमें वैषयिक सम्बन्धोंका यही विधान है। और 'विधान ही ईश्वर है और विधान या नियमका पालन ही ईश्वर-

की आज्ञाको मानना है।' यह याद रखो कि तीन वार तुमसे यह वचन लिया गया है कि 'किसी भी रूपमें मैं इस विधानका भंग नहीं करूंगा।' अगर मुट्ठी-भर स्त्री-पुरुष ही हमें ऐसे मिल जायं, जो इस विधानसे बन्धनेको तैयार हों तो बलवान और सच्चे स्त्री-पुरुषोंकी एक जाति-की-जाति पैदा हो जायगी।"

हरिजन सेवक,
२४ अप्रैल, १९३७

: ३१ :

धर्म-संकट

एक सज्जन लिखते हैं :

"करीब ढाई साल हुए, हमारे शहरमें एक घटना हो गई थी जो इस प्रकार है—

एक वैश्य गृहस्थकी १६ बरसकी एक कुमारी कन्या थी। लड़कीका मामा, जिसकी उम्र लगभग २१ वर्षकी थी, स्थानीय कालेजमें पढ़ता था। यह तो मालूम नहीं कि कबसे इन दोनों मामा और भांजीमें प्रेम था; पर जब बात खुल गई तो उन दोनोंने आत्म-हत्या करली। लड़की तो फौरन ही जहर खानेके बाद मर गई; पर लड़का दो रोज बाद अस्तपालमें मरा। लड़कीको गर्भ भी था। इस बातकी शुरू-शुरूमें तो खूब चर्चा चली। यहां-तक कि अभागे मां-बापको शहरमें रहना भारी हो गया; पर वक्तके साथ साथ यह बात भी दब गई और लोग भूलने लगे। कभी-कभी जब ऐसी मिलती-जुलती बात सुननेको मिलती है, तब पुरानी बातोंकी भी चर्चा होती है और यह वाक़या भी दोहरा दिया जाता है; पर उस जमानेमें; जब क़रीब-क़रीब सभी लड़कीको और लड़केको भी बुरा-भला कह रहे थे, मैंने यह राय अर्ज की थी कि ऐसी हालतमें समाजको विवाह कर लेने-की इजाजत दे देनी चाहिए। इस बातसे समाजमें खूब बवण्डर उठा। आपकी इसपर क्या राय है ?"

मैंने स्थानका और लेखकका नाम नहीं दिया है; क्योंकि लेखक नहीं चाहते कि उनका अथवा उनके शहर का नाम प्रकाशित किया जाय। तो भी इस प्रश्नपर जाहिर चर्चा आवश्यक है। मेरी तो यह राय है कि ऐसे सम्बन्ध जिस समाजमें त्याज्य माने जाते हैं, वहां विवाहका रूप यकायक नहीं ले सकते; लेकिन किसीकी स्वतन्त्रतापर समाज या सम्बन्धी आक्र-

मरण क्यों करें ? ये मामा और भांनजी सयानी उम्रके थे, अपना हित-अनहित समझ सकते थे। उन्हें पति-पत्नीके सम्बन्धसे रोकनेका किसीको हक़ नहीं था। समाज भले ही इस सम्बन्धको अस्वीकार करता; पर उन्हें आत्म-हत्या करनेतक जाने देना तो बहुत बड़ा अत्याचार था।

उक्त प्रकारके सम्बन्धका प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है। ईसाई, मुसलमान, पारसी इत्यादि कौमोंमें ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं माने जाते हैं--हिन्दुओंमें भी प्रत्येक वर्णमें त्याज्य नहीं हैं। उसी वर्णमें भिन्न प्रान्तमें भिन्न प्रथा है। दक्षिणमें उच्च माने जाने वाले ब्राह्मणोंमें ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं, बल्कि स्तुत्य भी माने जाते हैं। मतलब यह है कि ऐसे प्रतिबन्ध रूढ़ियोंसे बने हैं। यह देखनेमें नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णयसे बने हैं।

लेकिन समाजके सब प्रतिबन्धोंको नवयुवक-वर्ग छिन्न-भिन्न करके फेंक दें, यह भी नहीं होना चाहिए। इसलिए मेरा यह अभिप्राय है कि किसी समाजमें रूढ़िका त्याग करवानेके लिए लोक-मत तैयार करानेकी आवश्यकता है। इस बीचमें व्यक्तियोंको धैर्य रखना चाहिए। धैर्य न रख सकें तो बहिष्कारादिको सहन करना चाहिए।

दूसरी ओर समाजका यह कर्तव्य है कि जो लोग समाज-बन्धन तोड़े, उनके साथ निर्दयताका बर्ताव न किया जाय। बहिष्कारादि भी अहिंसक होने चाहिएं।

उक्त आत्म-हत्याओंका दोष, जिस समाजमें वे हुईं; उसपर अवश्य है, ऐसा ऊपरके पत्रसे सिद्ध होता है।

हरिजन सेवक,

१ मई १९३७,

: ३२ :

अप्राकृतिक व्यभिचार

कुछ साल पहले बिहार-सरकारने अपने शिक्षा-विभागमें पाठशाला-ओंमें होने वाले अप्राकृतिक व्यभिचारके सम्बन्धमें जांच करवाई थी। जांच-समितिने इस बुराईको शिक्षकों तकमें पाया था, जो अपनी अस्वाभाविक वासनाकी तृप्तिके कारण विद्यार्थियोंके प्रति अपने पदका दुरुपयोग करते हैं। शिक्षा-विभागके डाइरेक्टरने एक सरकुलर द्वारा शिक्षकोंमें पाई जानेवाली ऐसी बुराईका प्रतिकार करनेका हुक्म निकाला था। सरकुलर का जो परिणाम हुआ होगा—अगर कोई हुआ हो—वह अवश्य ही जानने लायक होगा।

मेरे पास इस सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे साहित्य भी आया है, जिसमें इस और ऐसी बुराइयोंकी तरफ मेरा ध्यान खींचा गया है और कहा गया है कि यह प्रायः भारत-भरके तमाम सार्वजनिक और प्राइवेट मदरसोंमें फैल गया है और बराबर बढ़ रहा है।

यह बुराई यद्यपि अस्वाभाविक है तथापि इसकी विरासत हम अनन्त कालसे भोगते आ रहे हैं। तमाम छुपी बुराइयोंका इलाज ढूंढ निकालना एक कठिनतम काम है। यह और भी कठिन बन जाता है, जब इसका असर बालकोंके संरक्षकपर भी पड़ता है—और शिक्षक बालकोंके संरक्षक हैं ही। प्रश्न होता है कि 'अगर प्राण-दाता ही प्राणहारक हो जाय तो फिर प्राण कैसे बचें ?' मेरी रायमें जो बुराइयां प्रगट हो चुकती हैं, उनके सम्बन्धमें विभागकी ओरसे बाजाब्ता कार्रवाई करना ही इस बुराईके प्रतिकारके लिए काफी न होगा। सर्वसाधारणके मतको इस सम्बन्धमें सुगठित और सुसंस्कृत बनाना इसका एक-मात्र उपाय है; लेकिन इस देशके कई मामलोंमें प्रभावशाली लोकमत जैसी कोई बात है ही नहीं।

राजनैतिक जीवनमें असहायता या बेबसीकी जिस भावनाका एकछत्र राज्य है उसने देशके जीवनके सब क्षेत्रोंपर अपना असर डाल रखा है। अतएव जो बुराइयां हमारी आंखोंके सामने होती रहती हैं, उन्हें भी हम टाल जाते हैं।

जो शिक्षा-प्रणाली साहित्यिक योग्यतापर ही एकान्त जोर देती है, वह इस बुराईको रोकनेके लिए अनुपयोगी ही नहीं है; बल्कि उससे उलटे बुराईको उत्तेजना ही मिलती है। जो बालक सार्वजनिक शालाओंमें दाखिल होनेसे पहले निर्दोष थे, शालाके पाठ्य-क्रमके समाप्त होते-होते वे ही दूषित, स्त्रैण और नामर्द बनते देखे गये हैं। बिहार-समितिने 'बालकोंके मनपर धार्मिक प्रतिष्ठाके संस्कार जमाने' की सिफारिश की है; लेकिन बिल्लीके गलेमें घंटी कौन बांधे? अकेले शिक्षक ही धर्मके प्रति आदर-भावना पैदा कर सकते हैं; लेकिन वे स्वयं इससे शून्य हैं। अतएव प्रश्न शिक्षकोंके योग्य चुनावका प्रतीत होता है; मगर शिक्षकोंके योग्य चुनावका अर्थ होता है, या तो अबसे कहीं अधिक वेतन या फिर शिक्षणके ध्येयका काया-पलट—याने शिक्षाको पवित्र कर्तव्य मानकर शिक्षकोंका उसके प्रति जीवन अर्पण कर देना। रोमन कैथालिकोंमें यह प्रथा आज भी विद्यमान है। पहला उपाय तो हमारे-जैसे गरीब देश के लिए स्पष्ट ही असम्भव है। मेरे विचारमें हमारे लिए दूसरा मार्ग ही सुगम है; लेकिन वह भी उसकी शासन-प्रणालीके अधीन रहकर सम्भव नहीं; जिसमें हर एक चीजकी कीमत आंकी जाती है, और जो दुनिया-भरमें ज्यादा-से-ज्यादा होती है।

अपने बालकोंकी नैतिक सुधारणाके प्रति माता-पिताओंकी लापरवाहीके कारण इस बुराईको रोकना और कठिन हो जाता है। वे तो बच्चोंको स्कूल भेजकर अपने कर्तव्योंकी इति-श्री मान लेते हैं। इस तरह हमारे सामनेका काम बहुत ही विषाद-पूर्ण है; लेकिन यह सोचकर आशा भी होती है कि तमाम बुराइयोंका एक रामबाण उपाय है और वह है—आत्म-शुद्धि। बुराईकी प्रचण्डतासे घबरा जानेके बदले हममेंसे हर एकको पूरे-पूरे प्रयत्न-पूर्वक अपने आस-पासके वातावरणका सूक्ष्म निरीक्षण करते

रहना चाहिए और अपने-आपको ऐसे निरीक्षणका प्रथम और मुख्य केन्द्र मानना चाहिए। हमें यह कहकर सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए कि हममें दूसरोंकी-सी बुराई नहीं है। अस्वाभाविक दुराचार कोई स्वतन्त्र अस्तित्व-की चीज नहीं है। वह तो एक ही रोगका भयंकर लक्षण है। अगर हममें अपवित्रता भरी है, अगर हम विषयकी दृष्टिसे पतित हैं, तो हमें आत्मसुधार करना चाहिए और फिर पड़ोसियोंके सुधारकी आशा रखनी चाहिए। आजकल तो हम दूसरोंके दोषोंके निरीक्षणमें बहुत पटु हो गए हैं और अपने-आपको अत्यन्त निर्दोष समझते हैं। परिणाम दुराचारका प्रसार होता है। जो इस बातके सत्यको महसूस करते हैं वे इससे छूटें और उन्हें पता चलेगा कि यद्यपि सुधार और उन्नति कभी आसान नहीं होते तथापि वे बहुत कुछ सम्भवनीय हैं।

हरिजन सेवक,
२७ मई, १९३७

: ३३ :

सम्भोगकी मर्यादा

बंगलौरसे एक सज्जन लिखते हैं :

"आप कहते हैं कि विवाहित दम्पतिको एकमात्र तभी सम्भोग करना चाहिए जब दोनों बच्चा पैदा करना चाहें ; पर मेहरबानी करके यह तो बतलाइये कि बच्चा पैदा करनेकी इच्छा किसीको क्यों हो ? बहुत-से लोग मां-बाप बननेकी जिम्मेदारीको पूरी तरह महसूस किये बगैर ही सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करते हैं और दूसरे, बहुत-से अच्छी तरह यह जानते हुए भी कि वे मां-बाप होनेकी जिम्मेदारियोंको निबाहनेमें असमर्थ हैं, बच्चोंकी हविस रखते हैं। बहुत-से ऐसे लोग भी बच्चे पैदा करना चाहते हैं जो शारीरिक और मानसिक दृष्टिसे सन्तानोत्पत्तिके अयोग्य हैं। क्या आप यह नहीं सोचते कि इन लोगोंके लिए प्रजनन करना गलती है ?

बच्चा पैदा करनेकी इच्छाका उद्देश्य क्या है, यह मैं जानना चाहता हूँ। बहुत-से लोग इसलिए बच्चोंकी इच्छा करते हैं कि उनकी सम्पत्तिके वारिस बनें और उनके जीवनकी नीरसताको मिटाकर सरस बनायें। कुछ लोग इसलिए भी पुत्रकी इच्छा करते हैं कि ऐसा न हुआ तो मरनेपर वे स्वर्गमें न जा सकेंगे। क्या इन सबका बच्चेकी इच्छा करना गलती नहीं है ?"

किसी बातके कारणोंकी खोज करना तो ठीक है; लेकिन हमेशा ही उन्हें पा लेना सम्भव नहीं है। सन्तानकी इच्छा विश्व-व्यापी है; लेकिन अपने वंशजोंके द्वारा अपनेको कायम रखनेकी इच्छा अगर काफी और सन्तोषजनक कारण नहीं है तो इसका कोई दूसरा सन्तोषजनक कारण मैं नहीं जानता। मगर सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाका जो कारण मैने बताया है वह अगर काफी सन्तोषजनक न मालूम हो तो भी जिस बातका मैं प्रतिपादन

कर रहा हूं, उसमें कोई दोष नहीं आता; क्योंकि यह इच्छा तो है ही। मुझे तो यह स्वाभाविक ही मालूम पड़ती है । मैं पैदा हुआ, इसका मुझे कोई अफसोस नहीं है । मेरे लिए यह कोई गैर-कानूनी बात नहीं है कि मुझमें जो भी सर्वोत्तम गुण हों उन्हें मैं दूसरेमें मूर्त्तरूपमें उतरे हुए देखूं । कुछ भी हो, जबतक खुद प्रजननमें ही मुझे कोई बुराई न मालूम दे और जबतक मैं यह न देख लूं कि खाली आनन्दके लिए सम्भोग करना भी ठीक ही है, तबतक मुझे इस बातपर कायम रहना चाहिए कि सम्भोग तभी ठीक है जब कि वह सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे किया जाय। मैं समझता हूं कि स्मृतिकार इस बारेमें इतने स्पष्ट थे कि मनुने पहले पैदा हुए बच्चोंको ही धर्म्य (धर्मसे पैदा हुए) बतलाया है और बाद में पैदा हुए बच्चोंको काम्य (काम-वासनासे पैदा हुए) बतलाया है । इस विषयमें यथासम्भव अनासक्त भावसे मैं जितना अधिक सोचता हूं उतना ही अधिक मुझे इस बातका पक्का विश्वास होता जाता है कि इस बारेमें मेरी जो स्थिति है और जिसपर मैं कायम हूं वही सही है । मुझे यह स्पष्टतर होता जा रहा है कि इस विषयके साथ जुड़ी हुई अनावश्यक गोपनीयताके कारण इस विषयमें हमारा अज्ञान ही सारी कठिनाईकी जड़ है । हमारे विचार स्पष्ट नहीं है । परिणामका सामना करनेसे हम डरते हैं । अधूरे उपायोंको हम सम्पूर्ण या अन्तिम मानकर अपनाते है और इस प्रकार उन्हें आचरणके लिए बहुत कठिन बना लेते हैं । मगर हमारे विचार स्पष्ट हों, हम क्या चाहते हैं इस बातका हमें निश्चय हो तो हमारी वाणी और हमारे आचरण दृढ़ होंगे ।

इस प्रकार, अगर मुझे इस बातका निश्चय हो कि भोजनका हरेक ग्रास शरीरको बनाने और कायम रखनेके ही लिए है तो स्वादकी खातिर मैं कभी खाना न चाहूंगा । यही नहीं; बल्कि मैं यह भी महसूस करूंगा कि अगर भूख या शरीरको कायम रखनेकी दृष्टिके अलावा कोई चीज सुस्वाद होनेके ही कारण खाना चाहूं तो वह रोगकी निशानी होगी; इसलिए मुझे उसको वाजिब और स्वास्थ्यप्रद इच्छा समझकर उसकी पूर्ति करनेके बजाय अपनी इस बीमारीको दूर करनेकी ही फिक्र करनी पड़ेगी। इसी तरह अगर मुझे इस बातका निश्चय हो कि प्रजननकी निर्विवाद इच्छाके बगैर

सम्भोग करना गैर-कानूनी और शरीर, मन तथा आत्माके लिए विनाशक है, तो इस इच्छाका दमन करना निश्चय ही आसान हो जायगा—उससे कहीं आसान, जबकि मेरे मनमें यह निश्चय न हो कि खाली इच्छाकी पूर्ति करना कानून-सम्मत और हितकर है या नहीं। अगर मुझे ऐसी इच्छाके गैन-कानूनीपन या अनौचित्यका स्पष्टरूपसे भान हो तो मैं उसे एक तरहकी बीमारी समझूंगा और अपनी पूरी शक्तिके साथ उससे आक्रमणोंका मुकाबला करूंगा। ऐसे मुकाबलेके लिए तब मैं अपनेको अधिक शक्तिशाली महसूस करूंगा। जो लोग यह दावा करते हैं कि हमें यह बात पसन्द तो नहीं है; लेकिन हम असहाय हैं, वे गलती पर ही नहीं हैं; बल्कि झूठे भी हैं और इसलिए प्रतिरोधमें वे कमजोर रहते और हार जाते हैं। अगर सब लोग आत्म-निरीक्षण करें तो उन्हें मालूम होगा कि उनके विचार उन्हें धोखा देते हैं। उनके विचारोंमें वासनाकी इच्छा होती है, और उनकी वाणी उनके विचारोंको गलत रूपमें व्यक्त करती है। दूसरी ओर यदि उनकी वाणी उनके विचारोंकी सच्ची द्योतक हो तो कमजोरी-जैसी कोई बात नहीं हो सकती। हार तो हो सकती है; पर कमजोरी हरगिज नहीं।

इन सज्जनने अस्वस्थ माता-पिताओं द्वारा किये जानेवाले प्रजननपर जो आपत्ति की है वह बिलकुल ठीक है। उन्हें प्रजननकी कोई इच्छा नहीं होनी चाहिए। अगर वे यह कहे कि सम्भोग हम प्रजननके लिए ही करते हैं तो वे अपनेको और ससारको धोखा देते हैं। किसी विषयपर विचार करनेमें सचाईका हमेशा सहारा लेना पड़ता है। सम्भोगके आनन्दको छिपानेके लिए प्रजननकी इच्छाका बहाना हर्गिज न लेना चाहिए।

हरिजन सेवक,

२४ जुलाई, १९३७

: ३४ :

अहिंसा और ब्रह्मचर्य

एक कांग्रेस-नेताने बातचीतके सिलसिलेमें उस दिन मुझसे कहा—"यह क्या बात है कि कांग्रेस अब नैतिकताकी दृष्टिसे वैसी नहीं रही जैसी कि वह १९२० से १९२५ तक थी ? तबसे तो इसकी बहुत नैतिक अवनति हो गई है। अब तो इसके नव्वे फीसदी सदस्य कांग्रेसके अनुशासनका पालन नहीं करते। क्या आप इस हालतको सुधारनेके लिए कुछ नहीं कर सकते ?"

यह प्रश्न उपयुक्त और सामयिक है। मैं यह कहकर अपनी जिम्मेदारीसे हट नहीं सकता कि अब मैं कांग्रेसमें नहीं हूं। मैं तो और अच्छी तरह इसकी सेवा करनेके लिए ही इससे बाहर हुआ हूं। कांग्रेसकी नीतिपर अब भी मैं अपना प्रभाव डाल रहा हूं, यह मैं जानता हूं। और १९२० में कांग्रेसका जो विधान बना था, उसे बनानेवालेकी हैसियतसे उस गिरावटके लिए मुझे अपनेको जिम्मेदार मानना ही चाहिए, जिससे कि बचा जा सकता है।

कांग्रेसने आरम्भिक कठिनाइयोंके बीच सन् १९२० में काम शुरू किया था। सत्य और अहिंसापर बतौर ध्येयके बहुत कम लोग विश्वास करते थे। अधिकांश सदस्योंने इन्हें नीतिके तौरपर ही स्वीकार किया। वह अनिवार्य था। मैंने आशा की थी कि नई नीतिसे कांग्रेसको काम करते हुए देखकर उनमेंसे अनेक इन्हें अपने ध्येयके रूपमें स्वीकार कर लेंगे; लेकिन ऐसा कुछ ही लोगोंने किया, बहुतोंने नहीं। शुरूआतमें तो सबसे बड़े नेताओंमें भारी परिवर्तन देखनेमें आया। स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धुदासके जो पत्र 'यंग इंडिया' में उद्धृत किये गए थे, उन्हें पाठक भूले नहीं होंगे। संयम, सादगी और अपने आपको कुर्बान

कर देनेके जीवनमें उन्हें एक नये आनन्द और एक नई आशाका अनुभव हुआ था। अलीबन्धु तो क़रीब-क़रीब फ़क़ीर ही बन गये थे। जगह-जगह दौरा करते हुए, इन भाइयोंमें होनेवाली तब्दीलीको मैं आनन्दके साथ देखता था। जो बात इन चार नेताओंके विषयमें सच है, वही और भी ऐसे बहुतोंके बारेमें कही जा सकती है, जिनके कि मैं नाम गिना सकता हूं। इन नेताओंके उत्साहका लोगोंपर भी असर पड़ा।

लेकिन यह प्रत्यक्ष परिवर्तन 'एक सालमें स्वराज्य' के आकर्षणकी वजहसे था। इसकी पूर्तिके लिए मैंने जो शर्तें लगाई थीं, उनपर किसीने ध्यान नहीं दिया। ख्वाजा अब्दुलमजीद साहबने तो यहांतक कह डाला कि सत्याग्रह-सेनाके, जैसी कि कांग्रेस उस समय बन गई थी और अभी भी है, (यदि कांग्रेसवादी सत्याग्रहके अर्थको महसूस करें) सेनापतिकी हैसियतसे मुझे इस बातका निश्चय कर लेना चाहिए था कि मैं जो शर्तें लगा रहा हूं, वे ऐसी हैं जो पूरी हो जायंगी। शायद उनका कहना ठीक ही था। सिर्फ वह ज्ञान-चक्षु मेरे पास नहीं था। सामूहिक रूपमें और राजनीतिक उद्देश्योंसे अहिंसाका उपयोग खुद मेरे लिए भी एक प्रयोग ही था। इसलिए मैं गर्व-पूर्वक कोई दावा नहीं कर सकता था। मेरी शर्तोंका यह उद्देश्य था कि जिससे लोगोंकी शक्तिका अन्दाजा लग सके। वे पूरी हो भी सकती थीं और नहीं भी हो सकती थीं। ग़लतियों, या ग़लत अन्दाजोंकी तो सदा ही सम्भावना थी। जो भी हो, जब स्वराज्यकी लड़ाई लम्बी हो गई और खिलाफतके सवालमें जान न रही तो लोगोंका उत्साह मन्द पड़ने लगा। अहिंसामें नीतिके तौरपर भी विश्वास ढीला पड़ने लगा और असत्यका प्रवेश हो गया। जिन लोगोंका इन दोनों गुणोंमें या खद्दरकी शर्तमें कोई विश्वास नहीं था, वे इसमें घुस आये और बहुतोंने तो खुले आम भी कांग्रेस-विधानकी अवहेलना करनी शुरू कर दी।

यह बुराई बराबर बढ़ती ही गई। वर्किंग-कमेटी कांग्रेसको इस बुराईसे मुक्त करनेका कुछ प्रयत्न करती रही है; लेकिन दृढ़तापूर्वक नहीं, और न वह कांग्रेसके सदस्योंकी संख्या कम हो जानेके खतरेको उठानेके लिए तैयार हो सकी है। मैं खुद तो संख्याके बजाय गुणमें ही ज्यादा विश्वास करता हूं।

लेकिन अहिंसाकी योजनामें जबर्दस्तीका कोई काम नहीं है। उसमें तो इसी बातपर निर्भर रहना पड़ता है कि लोगोंकी बुद्धि और हृदय-तक—उसमें भी बुद्धिकी अपेक्षा हृदयपर ही ज्यादा—पहुंचनेकी क्षमता प्राप्त की जाय।

इसका अभिप्राय हुआ कि सत्याग्रह-सेनापतिके शब्दमें ताकत होनी चाहिए—वह ताकत नहीं जो असीमित अस्त्र-शस्त्रोंसे प्राप्त होती है; बल्कि वह जो जीवनकी शुद्धता, दृढ़ जागरूकता और संतत आचरणसे प्राप्त होती है। यह ब्रह्मचर्यका पालन किये बगैर असम्भव है। इसका इतना सम्पूर्ण होना आवश्यक है, जितना कि मनुष्यके लिए सम्भव है। ब्रह्मचर्यका अर्थ यहां खाली दैहिक आत्म-संयम या निग्रह ही नहीं है। इसका तो इससे कहीं अधिक अर्थ है। इसका मतलब है सभी इन्द्रियोंपर पूर्ण नियमन। इस प्रकार अशुद्ध विचार भी ब्रह्मचर्यका भंग है और यही हाल क्रोधका है। सारी शक्ति उस वीर्य-शक्तिकी रक्षा और ऊर्ध्वगतिसे प्राप्त होती है, जिससे कि जीवनका निर्माण होता है। अगर इस वीर्य-शक्तिको नष्ट होने देनेके बजाय, संचय किया जाय, तो यह सर्वोत्तम सृजन-शक्तिके रूपमें परिणत हो जाती है। बुरे या अस्त-व्यस्त, अव्य-वस्थित, अवांछनीय विचारोंसे भी इस शक्तिका बराबर और अज्ञात रूपसे क्षय होता रहता है और चूंकि विचार ही सारी वाणी और क्रियाओंका मूल होता है इसलिए वे भी इसीका अनुसरण करती है। इसीलिए पूर्णतः नियंत्रित विचार खुद ही सर्वोच्च प्रकारकी शक्ति है। और स्वतः क्रिया-शील बन सकता है। मूकरूपमें की जानेवाली हार्दिक प्रार्थनाका मुझे तो यही अर्थ मालूम पड़ता है। अगर मनुष्य ईश्वरकी मूर्तिका उपासक है, तो उसे अपने मर्यादित क्षेत्रके अन्दर किसी बातकी इच्छा भर करनेकी देर है! जैसा वह चाहता है वैसा ही वह बन जाता है। जिस तरह चूने वाले नलमें भाप रखनेसे कोई शक्ति पैदा नहीं होती, उसी प्रकार जो अपनी शक्तिका किसी भी रूपमें क्षय होने देता है, उसमें इस शक्तिका होना असं-भव है। प्रजोत्पत्तिके निश्चित उद्देश्योंसे न किया जाने वाला काम-सम्बन्ध इस शक्ति-क्षयका एक बहुत बड़ा नमूना है, इसलिए उसकी खास

तौरसे निन्दा की गई है, वह ठीक ही है, लेकिन जिसे अहिंसात्मक कार्यके लिए मनुष्य-जातिके विशाल समूहोंको संगठित करना है, उसे तो, इन्द्रियों-के जिस पूर्ण निग्रहका मैंने ऊपर वर्णन किया है, उसको प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करना ही चाहिए।

ईश्वरकी असीम कृपाके बगैर यह सम्पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह सम्भव नहीं है। गीताके दूसरे अध्यायमें एक श्लोक है—

"विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः,
रसवर्ज रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।"

अर्थात्—जबतक उपवास किये जाते हैं, तबतक इन्द्रियां विषयोंकी ओर नहीं दौड़तीं, पर अकेले उपवाससे रस सूख नहीं जाते। उपवास छोड़ते ही वे और बढ़ भी सकते हैं। इसको वशमें करनेके लिए तो ईश्वर-का प्रसाद आवश्यक है। यह नियमन यांत्रिक या अस्थायी नहीं है। एक बार प्राप्त हो जानेके बाद यह कभी नष्ट नहीं होता। उस हालतमें वीर्य-शक्ति इस तरह सुरक्षित रहती है कि अगणित रास्तोंमेंसे किसीमें होकर उसके निकलनेकी सम्भावना ही नहीं रहती।

कहा गया है कि ऐसा ब्रह्मचर्य यदि किसी तरह प्राप्त किया जा सकता हो तो कन्दराओंमें रहनेवाले ही कर सकते होंगे। ब्रह्मचारीको तो, कहते हैं, स्त्रियोंका स्पर्श तो क्या, उसका दर्शन भी कभी नहीं करना चाहिए। निस्सन्देह किसी ब्रह्मचारीको काम-वासनासे किसी स्त्रीको न तो छूना चाहिए, न देखना चाहिए और न उसके विषयमें कुछ कहना या सोचना चाहिए, लेकिन ब्रह्मचर्य-विषयक पुस्तकोंमें हमें यह जो वर्णन मिलता है उसमें इसके महत्त्वपूर्ण अव्यय 'कामवासना-पूर्वक' का उल्लेख नहीं मिलता। इस छूटकी वजह यह मालूम पड़ती है कि ऐसे मामलोंमें मनुष्य निष्पक्षरूपसे निर्णय नहीं कर सकता और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कब तो उसपर ऐसे सम्पर्कका असर पड़ा और कब नहीं। काम-विकार अक्सर अनजाने ही उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए दुनियामें आजादीसे सबके साथ हिलने-मिलनेपर ब्रह्मचर्यका पालन यद्यपि कठिन है, लेकिन

अगर संसारसे नाता तोड़ लेनेपर ही यह प्राप्त हो सकता हो तो उसका कोई विशेष मूल्य ही नहीं है।

जैसे भी हो मैंने तो तीस वर्षसे भी अधिक समयसे प्रवृत्तियोंके बीच रहते हुए ब्रह्मचर्यका खासी सफलतासे साथ पालन किया है। ब्रह्मचर्यका जीवन बितानेका निश्चय कर लेनेके बाद, अपनी पत्नीके साथ व्यवहारको छोड़कर मेरे बाह्य आचरणमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके बीच मुझे जो काम करना पड़ा, उसमें मैं स्त्रियोंके साथ आजादीके साथ हिलता-मिलता था। ट्रांसवाल और नेटालमें शायद ही कोई ऐसी भारतीय स्त्री हो जिसे मैं न जानता होऊं। मेरे लिए तो इतनी सारी स्त्रियां बहनें और बेटियां ही थीं। मेरा ब्रह्मचर्य पुस्तकीय नहीं है। मैंने तो अपने तथा उन लोगोंके लिए जो कि मेरे कहनेपर इस प्रयोगमें शामिल हुए हैं, अपने ही नियम बनाये हैं और अगर मैंने इसके लिए निर्दिष्ट निषेधोंका अनुसरण नहीं किया है, तो धार्मिक साहित्यमें स्त्रियोंको जो सारी बुराई और प्रलोभनका द्वार बताया गया है, उसे मैं इतना भी नहीं मानता। मैं तो ऐसा मानता हूं कि मुझमें जो भी अच्छाई हो वह सब मेरी मांकी बदौलत है। इसलिए स्त्रियोंको मैंने कभी इस तरह नहीं देखा कि कामवासनाकी तृप्तिके लिए ही वे बनाई गई हैं; बल्कि हमेशा उसी श्रद्धाके साथ देखा है जो कि मैं अपनी माताके प्रति रखता हूं। पुरुष ही प्रलोभन देनेवाला और आक्रमण करने वाला है। स्त्रीके स्पर्शसे वह अपवित्र नहीं होता; बल्कि अक्सर वह खुद ही उसका स्पर्श करने लायक पवित्र नहीं होता। लेकिन हालमें मेरे मनमें सन्देह जरूर उठा है कि स्त्री या पुरुषके सम्पर्कमें आनेके लिए ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणीको किस तरहकी मर्यादाओंका पालन करना चाहिए। मैंने जो मर्यादाएं रखी हैं वे मुझे पर्याप्त नहीं मालूम पड़तीं; लेकिन वे क्या होनी चाहिएं, यह मैं नहीं जानता। मैं तो प्रयोग कर रहा हूं। इस बातका मैंने कभी दावा नहीं किया कि मैं अपनी परिभाषाके अनुसार पूरा ब्रह्मचारी बन गया हूं। अब भी मैं अपने विचारोंपर उतना नियंत्रण नहीं रख सकता हूं जितने नियंत्रणकी अपनी अहिंसाकी शोधोंके लिए मुझे आवश्यकता है; लेकिन अगर मेरी अहिंसा

ऐसी हो जिसका दूसरोंपर असर पड़े और वह उनमें फैले, तो मुझे अपने विचारोंपर और अधिक नियंत्रण करना ही चाहिए। इस लेखके आरम्भिक वाक्यमें नेतृत्वकी जिस प्रत्यक्ष असफलताका उल्लेख किया गया है, उसका कारण शायद कहीं-न-कहीं किसी कमीका रह जाना ही है।

अहिंसामें मेरा विश्वास हमेशाकी तरह दृढ़ है। मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि इससे न केवल हमारे देशकी सारी आवश्यकताओंकी पूर्ति होनी चाहिए; बल्कि अगर ठीक तरहसे इसका पालन किया जाय तो यह उस खून-खराबीको भी रोक सकती है, जो हिन्दुस्तानके बाहर हो रही है और सारे पश्चिमी संसारमें जिसके व्याप्त हो जानेका अन्देशा है।

मेरी आकांक्षा तो मर्यादित है। परमेश्वरने मुझे इतनी शक्ति नहीं दी है, जो अहिंसाके पथपर सारी दुनियाकी रहनुमाई करूं; लेकिन मैंने यह कल्पना जरूर की है कि हिन्दुस्तानकी अनेक खराबियोंके निवारणार्थ अहिंसाका प्रयोग करनेके लिए उसने मुझे अपना औजार बनाया है। इस दिशामें अभीतक जो प्रगति हो चुकी है, वह महान् है; लेकिन अभी बहुत कुछ करना बाकी है। इतनेपर भी मुझे ऐसा लगता है कि इसके लिए आम तौरपर कांग्रेसवादियोंकी जो सहानुभूति आवश्यक है उसे उकसानेकी शक्ति मुझमें नहीं रही है। जो अपने औजारोंको ही बुरा बतलाता रहता है वह कोई अच्छा बढ़ई नहीं है। यह तो 'नाच न आवे, आंगन टेढ़ा' की मसल होगी। इसी तरह बिगड़े हुए कामोंके लिए अपने आदमियोंको दोष देनेवाला सेनापति भी अच्छा नहीं कहा जा सकता; पर मैं जानता हूं कि मैं बुरा सेनापति नहीं हूं। अपनी मर्यादाओंको जाननेकी जितनी बुद्धि मुझमें मौजूद है अगर कभी उसका मेरे अन्दरसे दिवाला निकल जाय तो ईश्वर मुझे इतनी शक्ति देगा कि मैं उसकी स्पष्ट घोषणा कर दूंगा।

उसकी कृपासे मैं कोई आधी सदीसे जो काम कर रहा हूं अगर उसके लिए मेरी और जरूरत न रही, तो शायद वह मुझे उठा लेगा; लेकिन मेरा खयाल है कि मेरे करनेको अभी काफी काम है। जो अन्धकार मेरे

ऊपर छा गया मालूम पड़ता है, वह नष्ट हो जायगा, और स्पष्टतया अहिंसात्मक साधनोंसे भारत अपने लक्ष्यतक पहुंच जायगा—फिर इसके लिए चाहे डांडी-कूचसे भी ज्यादा उग्र लड़ाई लड़नी पड़े या उसके बगैर ही ऐसा हो जाय। मैं ईश्वरसे उस प्रकाशकी याचना कर रहा हूं जो अन्धकारका नाश कर देगा। अहिंसामें जिनकी जीवित श्रद्धा हो उन्हें इसमें मेरा साथ देना चाहिए।

हरिजन सेवक,
२३ जुलाई, १९३८

: ३५ :

विद्यार्थियोंके लिए लज्जाजनक

पंजाबके एक कालेजकी लड़की का एक हृदयस्पर्शी पत्र करीबन दो महीनेसे मेरी फाइलमें पड़ा हुआ है। इस लड़कीके प्रश्नका जवाब जो अभीतक नहीं दिया इसमें समयके अभावका तो केवल एक बहाना था। किसी-न-किसी तरह इस कामसे अपनेको मैं बचा रहा था, हालांकि मैं यह जानता था कि इस प्रश्नका क्या जवाब देना चाहिए। इस बीचमें मुझे एक और पत्र मिला। यह पत्र एक ऐसी बहन का लिखा हुआ है, जो बहुत अनुभव रखती हैं। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कालेजकी इस लड़कीकी जो यह बहुत वास्तविक कठिनाई है, उसका मुकाबला करना मेरा कर्तव्य है, और इसकी अब मैं और अधिक दिनोंतक उपेक्षा नहीं कर सकता। पत्र उसने शुद्ध हिन्दुस्तानीमें लिखा है जिसका एक भाग मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूं :

"लड़कियों और वयस्क स्त्रियोंके सामने, उनकी इच्छाके विरुद्ध ऐसे अवसर आ जाया करते हैं, जब कि उन्हें अकेली जानेकी हिम्मत करनी पड़ती है—या तो उन्हें एक ही शहरमें एक जगहसे दूसरी जगह जाना होता है या एक शहरसे दूसरे शहरको। और जब वे इस तरह अकेली होती हैं, तब गन्दी मनोवृत्ति वाले लोग उन्हें तंग किया करते हैं। वे उस वक्त अनुचित और अश्लील भाषातकका प्रयोग करते हैं। और अगर भय उन्हें रोकता नहीं है, तो इससे भी आगे बढ़नेमें उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। मैं यह जानना चाहती हूं कि ऐसे मौकोंपर अहिंसा क्या काम दे सकती है? हिंसाका उपयोग तो है ही। अगर किसी लड़की या स्त्रीमें काफी हिम्मत हो तो उसके पास जो भी साधन होंगे वह उन्हें कामसें लायगी और एक बार बदमाशोंको सबक सिखा देगी। वे कम-

से-कम हंगामा तो मचा सकती हैं जिससे कि लोगोंका ध्यान आकर्षित हो और गुण्डे वहांसे भाग जायं। लेकिन मैं जानती हूं कि इसके परिणाम-स्वरूप विपत्ति सिर्फ टल जायगी, यह कोई स्थायी इलाज नहीं है। अशिष्ट व्यवहार करने वाले लोगोंका अगर आपको पता है तो मुझे विश्वास है कि उन्हें अगर समझाया जाय, तो वे आपकी प्रेम और नम्रताकी बातें सुनेंगे। पर उस आदमीके लिए आप क्या कहेंगे, जो साइकिलपर चढ़ा हुआ किसी लड़की या स्त्रीको देखकर, जिसके साथ कोई मर्द साथी नहीं है, गंदी भाषाका प्रयोग करता है ? उसे दलील देकर समझानेका आपको मौका नहीं है। आपके उससे फिर मिलनेकी कोई सम्भावना नहीं। हो सकता है, आप उसे पहचानें भी नहीं। आप उसका पता भी नहीं जानते। ऐसी परिस्थितिमें वह बेचारी लडकी या स्त्री क्या करे ? मैं अपना ही उदा-हरण देकर आपको अपना अनुभव बताती हूं। २६ अक्तूबरकी रात-की बात है। मैं अपनी एक सहेली के साथ ७-३० बजे के करीब एक खास कामसे जा रही थी। उस वक्त किसी मर्द साथीको साथ ले जाना नामुम-किन था, और काम इतना जरूरी था कि टाला नहीं जा सकता था। रास्तेमें एक सिख युवक साइकिलपर जा रहा था। वह कुछ गुनगुनाता जाता था। जबतक कि हम सुन सके उसने गुनगुनाना जारी रखा। हमें यह मालूम था कि वह हमें लक्ष्य करके ही गुनगुना रहा है। हमें उसकी यह हरकत बहुत नागवार मालूम हुई। सड़कपर कोई चहल-पहल नहीं थी। हमारे चंद कदम जानेसे पहले वह लौट पड़ा। हम उसे फौरन पहचान गये, हालांकि वह अब भी हमसे खासे फासलेपर था। उसने हमारी तरफ साइ-किल घुमाई। ईश्वर जाने, उसका इरादा उतरनेका था, या यूं ही हमारे पाससे सिर्फ गुजरनेका। हमें ऐसा लगा कि हम खतरेमें हैं। हमें अपनी शारीरिक बहादुरीमें विश्वास नहीं था। मैं एक औसत लड़कीके मुकाबले शरीरसे कमजोर हूं; लेकिन मेरे हाथमें एक बड़ी-सी किताब थी। यकायक किसी तरह मेरे अन्दर हिम्मत आगई। साइकिलकी तरफ मैंने उस किताबको जोरसे मारा और चिल्लाकर कहा, "चुहलबाजी करनेकी तू फिर हिम्मत करेगा ?" वह मुश्किलसे अपनेको संभाल सका,

और साइकिलकी रफ्तार बढ़ाकर वहांसे रफू-चक्कर हो गया। अब अगर मैंने उसकी साइकिलकी तरफ किताब जोरसे न मारी होती तो वह अन्ततक इसी तरह अपनी गन्दी भाषासे हमें तंग करता जाता। यह तो मामूली; बल्कि नगण्य-सी घटना है; पर मैं चाहती हूं कि आप लाहौर आते और हम हत-भागिनी लड़कियोंकी मुसीबतोंकी दास्तान खुद अपने कानों सुनते। आप निश्चय ही इस समस्याका ठीक-ठीक हल ढूंढ सकते हैं। सबसे पहले आप मुझे यह बतायें कि ऊपर जिन परिस्थितियोंका मैंने वर्णन किया है उनमें लड़कियां अहिंसाके सिद्धान्तका प्रयोग किस तरह कर सकती हैं, और कैसे अपने आपको बचा सकती हैं? दूसरे स्त्रियोंको अपमानित करनेकी जिन युवकोंको यह बहुत बुरी आदत पड़ गई है, उसको सुधारनेका क्या उपाय है? आप यह उपाय न सुझाइयेगा कि हमें उस नई पीढ़ीके आनेतक इन्तजार करना चाहिए और तबतक हम इस अपमानको चुपचाप बर्दाश्त करती रहें, जिस पीढ़ीने कि बचपनसे ही स्त्रियोंके साथ भद्रोचित व्यवहार करनेकी शिक्षा पाई होगी। सरकारकी या तो इस समाजिक बुराईका मुकाबला करनेकी इच्छा नहीं या ऐसा करने में वह असमर्थ है। और हमारे बड़े-बड़े नेताओंके पास ऐसे प्रश्नोंके लिए वक्त नहीं। कुछ जब यह सुनते हैं कि किसी लड़कीने अशिष्टतासे पेश आनेवाले नवयुवकोंकी अच्छी तरहसे मरम्मत कर दी है, तो कहते हैं, "शाबाश, ऐसा ही सब लड़कियोंको करना चाहिए।" कभी-कभी किसी नेताको हम विद्यार्थियोंके ऐसे दुर्व्यवहार के खिलाफ छटादार भाषण करते हुए पाते हैं, मगर ऐसा कोई नजर नहीं आता, जो इस गम्भीर समस्याका हल निकालनेमें निरन्तर प्रयत्नशील हो। आपको यह जानकर कष्ट और आश्चर्य होगा कि दीवाली और ऐसे ही दूसरे त्यौहारों पर अखबारोंमें इस किस्मकी चेतावनीकी नोटिसें निकला करती हैं कि रोशनी देखनेतकके लिए औरतोंको घरोंसे बाहर नहीं निकलना चाहिए। इसी तरह एक बातसे आप जान सकते हैं कि दुनियाके इस हिस्सेमें हम किस कदर मुसीबतोंमें फंसी हुई हैं। ऐसे-ऐसे नोटिसोंको जो लिखते हैं, न तो वे ही कुछ शर्म खाते हैं कि ऐसी चेतावनियां उन्हें निकालनी चाहिए और न पढ़ने वाले ही?"

एक दूसरी पंजाबी लड़कीको मैंने यह पत्र पढ़नेके लिए दिया था। उसने भी अपने कालेज-जीवनके निजी अनुभवके आधारपर इस घटनाका समर्थन किया। उसने मुझे बताया कि मेरे संवाददाताने जो-कुछ लिखा है, बहुत-सी लड़कियोंका अनुभव वैसा ही होता है।

एक और अनुभवी महिलाने लखनऊकी अपनी विद्यार्थिनी मित्रोंके अनुभव लिखे हैं। सिनेमा-थियेटरोंमें उनकी पिछली लाइनमें बैठे हुए लड़के उन्हें दिक करते हैं, उनके लिए ऐसी भाषाका प्रयोग करते हैं, जिसे मैं अश्लीलके सिवा और कोई नाम नहीं दे सकता। उन लड़कियोंके साथ किये जानेवाले भद्दे मजाक भी पत्र-लेखिकाने मुझे लिखे हैं; लेकिन मैं उन्हें यहां उद्धृत नहीं कर सकता।

अगर सिर्फ तात्कालिक निजी रक्षाका सवाल हो तो इसमें सन्देह नही कि उस लड़कीने, जो अपनेको शारीरिक दृष्टिसे कमजोर बताती है, जो इलाज—साइकिलके सवारपर जोरसे किताब मारकर—किया, वह बिलकुल ठीक है। यह बहुत पुराना इलाज है। मैं 'हरिजन' में पहले भी लिख चुका हूं कि यदि कोई व्यक्ति जबर्दस्ती करने पर उतारू होना चाहता है तो उसके रास्तेमें शारीरिक कमजोरी भी रुकावट नहीं डालती, भले ही उसके मुकाबलेमें शारीरिक दृष्टिसे कोई बहुत बलवान विरोधी हो। और हम यह भली-भांति जानते हैं कि आजकल तो जिस्मानी ताकत इस्तेमाल करनेके इतने ज्यादा तरीके ईजाद हो चुके हैं कि एक छोटी, लेकिन काफी समझदार लड़की किसीकी हत्या और विनाशतक कर सकती है। जिस परिस्थितिका जिक्र पत्र-लेखिकाने किया है, वैसी परिस्थितियोंमें लड़कियों-को आत्म-रक्षाके तरीके सिखानेका रिवाज आजकल बढ़ रहा है; लेकिन वह लड़की यह भी खूब समझती है कि भले ही वह उस क्षण आत्म-रक्षाके हथियारके तौरपर अपने हाथकी किताब मारकर बच गई हो; लेकिन इस बढ़ती हुई बुराईका यह कोई असली इलाज नहीं है। भद्दे अश्लील मजाकके कारण बहुत घबराने या डर जानेकी जरूरत नहीं; लेकिन इनकी ओरसे आंख मूंद लेना भी ठीक नहीं। ऐसे सब मामले भी अखबा-रोंमें छप जाने चाहिएं। इस बुराईका भंडाफोड़ करनेमें किसीका

झूठा लिहाज नहीं करना चाहिए। इस सार्वजनिक बुराईके लिए प्रबल लोक-मत जैसा कोई अच्छा इलाज नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि इन बातोंको जनता उदासीनतासे देखती है; लेकिन सिर्फ जनताको ही क्यों दोष दिया जाय? उनके सामने ऐसी गुस्ताखीके मामले भी तो आने चाहिएं। चोरीके मामलों तकके लिए उन्हें पता लगाकर छापा जाता है, तब कहीं जाकर चोरी कम होती है। इस तरह जबतक ऐसे मामले भी दबाये जाते रहेंगे, इस बुराईका इलाज नहीं हो सकता। पाप और बुराई भी अपने शिकारके लिए अन्धकार चाहते हैं। जब उनपर रोशनी पड़ती है, वे खुद-बखुद खत्म हो जाते हैं।

लेकिन मुझे यह भी डर है कि आजकलकी लड़कीको भी तो अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बनना प्रिय है। वह अति साहसको पसन्द करती है। आजकलकी लड़की वर्षा या धूपसे बचनेके उद्देश्यसे नहीं; बल्कि लोगोंका ध्यान अपनी ओर खींचनेके लिए तरह-तरहके भड़कीले कपड़े पहनती है। वह अपनेको रंगकर कुदरतको भी मात करना और असाधारण सुन्दर दिखाना चाहती है। ऐसी लड़कियोंके लिए कोई अहिंसात्मक मार्ग नहीं है। मैं इन पृष्ठोंमें बहुत बार लिख चुका हूं कि हमारे हृदयमें अहिंसाकी भावनाके विकासके लिए भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। अहिंसाकी भावना बहुत महान् प्रयत्न है। विचार और जीवनके तरीकेसे यह क्रान्ति उत्पन्न कर देता है। यदि मेरी पत्र-लेखिका और उस तरहके-से विचार रखनेवाली लड़कियां ऊपर बताये गये तरीकेसे अपने जीवनको बिलकुल ही बदल डालें तो उन्हें जल्दी ही यह अनुभव होने लगेगा कि उनके सम्पर्कमें आनेवाले नौजवान उनका आदर करना तथा उनकी उपस्थितिमें भद्रोचित व्यवहार करना सीखने लगे हैं; लेकिन यदि उन्हें मालूम होने लगे कि उनकी लाज और धर्मपर हमला होनेका खतरा है, तो उनमें उस पशु मनुष्यके आगे आत्म-समर्पण करनेके बजाय मर जाने तकका साहस होना चाहिए। कहा जाता है कि कभी-कभी लड़कीको इस तरह बांधकर या मुंहमें कपड़ा ठूसकर विवश कर दिया जाता है कि वह आसानीसे मर भी नहीं सकती, जैसे कि मैंने सलाह दी है; लेकिन मैं फिर भी जोरोंके साथ

कहता हूं कि जिस लड़कीमें मुकाबलेका दृढ़ संकल्प है, वह उसे असहाय बनानेके लिऐ बांधे गये सब सम्बन्धोंको तोड़ सकती है। दृढ़ संकल्प उसे मरनेकी शक्ति दे सकता है।

लेकिन यह साहस और यह दिलेरी उन्हींके लिए सम्भव है; जिन्होंने इसका अभ्यास कर लिया है। जिसका अहिंसापर दृढ़ विश्वास नहीं है, उन्हें रक्षाके साधारण तरीके सीखकर कायर युवकोंके अश्लील व्यवहार-से अपना बचाव करना चाहिए।

पर बड़ा सवाल तो यह है कि युवक साधारण शिष्टाचार भी क्यों छोड़ दें, जिससे भली लड़कियोंको हमेशा उनसे सताये जानेका डर लगता रहे? मुझे यह जानकर दुःख होता है कि ज्यादातर नौजवानोंमें बहादुरीका जरा भी माद्दा नहीं रहा; लेकिन उनमें एक वर्गके नाते नामवर होनेकी डाह पैदा होनी चाहिए। उन्हें अपने साथियोंमें होनेवाली प्रत्येक ऐसी वारदात-की जांच करनी चाहिए। उन्हें हर एक स्त्रीका अपनी मां और बहनकी तरह आदर करना सीखना चाहिए। यदि वे शिष्टाचार नहीं सीखते, तो उनकी बाकी सारी लिखाई-पढ़ाई फिजूल है।

और क्या यह प्रोफेसर और स्कूल-मास्टरोंका फर्ज नहीं है कि लोगोंके सामने जैसे अपने विद्यार्थियोंकी पढ़ाईके लिए जिम्मेवार होते हैं उसी तरह उनके शिष्टाचार और सदाचारके लिए भी उनको पूरी तसल्ली दें?

हरिजन सेवक,

३१ दिसम्बर, १९३८

: ३६ :

आजकलकी लड़कियां

ग्यारह लड़कियोंकी ओरसे लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला है, जिनके नाम और पते भी मुझे भेजे गए हैं। उनमें ऐसे हेर-फेर करके जिससे उसके मतलबमें तो कोई तबदीली न हो; पर वह पढ़नेमें अधिक अच्छा हो जाय, मैं उसे यहां देता हूं—

"एक लड़कीकी 'आत्म-रक्षा कैसे करें ?" शीर्षक शिकायतपर जो ३१ दिसम्बर, १९३८ के 'हरिजन' में प्रकाशित हुई, आपने जो टीका-टिप्पणी की वह विशेष ध्यान देने लायक है। आधुनिक यानी आजकलकी लड़कीने आपको इस हदतक उत्तेजित कर दिया मालूम पड़ता है कि अन्तमें आपने उसे अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बननेकी शौकीन बतला डाला है। इससे स्त्रियोंके प्रति आपके जिस विचारका पता लगता है वह बहुत स्फूर्तिदायक नहीं है।

इन दिनों जब कि पुरुषोंकी मदद करने और जीवनके भारमें बराबरीका हिस्सा लेनेके लिए स्त्रियां बन्द दरवाजोंसे बाहर आ रही हैं, यह निःसन्देह आश्चर्यकी ही बात है कि पुरुषों द्वारा उनके साथ दुर्व्यवहार किये जानेपर अभी भी उन्हें ही दोष दिया जाता है। इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें दोनोंका कसूर बराबर हो। कुछ लड़कियां ऐसी भी हो सकती हैं जिन्हें अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बनना प्रिय हो; लेकिन उस हालतमें यह भी मानना ही पड़ेगा कि ऐसे पुरुष भी हैं जो ऐसी लड़कियोंकी टोहमें गली-सड़कोंमें फिरते रहते हैं। और यह तो हर्गिज नहीं माना जा सकता या मानना चाहिए कि आजकल की सभी लड़कियां इस तरह अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बननेकी शौकीन हैं या आजकलके नवयुवक सब उनकी टोहमें फिरनेवाले ही हैं। आप खुद

आजकलकी काफी लड़कियोंके सम्पर्कमें आये हैं और उनके निश्चय, बलिदान एवं स्त्रियोचित अन्य गुणोंका आपपर जरूर असर पड़ा होगा।

आपको पत्र लिखने वालीने जैसे बदचलन आदमियोंका जिक्र किया है उनके खिलाफ लोक-मत तैयार करनेका जहांतक सवाल है, यह करना लड़कियोंका काम नहीं है। यह काम हम झूठी शर्मके लिहाजसे नहीं; बल्कि उसके असरके लिहाजसे कहती हैं।

लेकिन संसार-भरमें जिसकी इज्ज़त है ऐसे आदमीके द्वारा ऐसी बात कही जानेसे एक बार फिर उसी पुरानी और लज्जाजनक लोकोक्तिकी पैरवी की जाती मालूम पड़ती है कि 'स्त्री नरकका द्वार है।'

इस कथनसे यह न समझिये कि आजकलकी लड़कियां आपकी इज्जत नहीं करतीं। नवयुवकोंकी तरह वे भी आपका सम्मान करती हैं। उन्हें तो सबसे बड़ी यही शिकायत है कि उन्हें नफरत या दयाकी दृष्टिसे क्यों देखा जाय! उनके तौर-तरीके अगर सचमुच दोषपूर्ण हों तो वे उन्हें सुधारनेके लिए तैयार हैं; लेकिन उनकी मलामत करनेसे पहले उनके दोषको अच्छी तरह सिद्ध कर देना चाहिए। इस सम्बन्धमें वे न तो स्त्रियोंके प्रति शिष्टताकी झूठी भावनाकी छायाका ही सहारा लेना चाहती हैं, न वे न्यायाधीश द्वारा मनमाने तौरपर अपनी निन्दाकी जानेको चुपचाप बर्दाश्त करनेके लिए ही तैयार हैं। सचाईका सामना तो करना ही चाहिए; आजकलकी लड़कीमें, जिसे कि आपके कथनानुसार अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बनना प्रिय है, उसका मुकाबला करने जितना साहस पर्याप्त रूपमें विद्यमान है।"

मुझे पत्र भेजनेवालियोंको शायद यह पता नहीं है कि चालीस बरससे ज्यादा हुए तब दक्षिण अफ्रीकामें मैंने भारतीय स्त्रियोंकी सेवाका कार्य करना शुरू किया था, जबकि इनमेंसे किसीका शायद जन्म न हुआ होगा। मैं तो ऐसा कुछ लिख ही नहीं सकता जो नारीत्वके लिए अपमानजनक हो। स्त्रियोंके लिए इज्जतकी सम्भावना मेरे अन्दर इतनी ज्यादा है कि मैं उनकी बुराईका विचार ही नहीं कर सकता। स्त्रियां तो, जैसा कि अंग्रेजीमें उन्हें कहा गया है, हमारा सुन्दरार्द्ध हैं। फिर मैंने जो लेख

लिखा वह विद्यार्थियोंकी निर्लज्जता पर प्रकाश डालनेके लिए था, लड़कियोंकी कमजोरीका ढोल पीटनेके लिए नहीं। अलबत्ता रोगका निदान बतलानेके लिए, अगर मुझे उसका ठीक इलाज बतलाना हो तो, मुझे उन सब बातों का उल्लेख करना लाजिमी था, जो रोगकी तहमें हों।

आधुनिक या आजकलकी लड़कीका एक खास अर्थ है। इसलिए अपनी बात कुछ ही तक सीमित रखनेका सवाल नहीं था। यह याद रहे कि अंग्रेजी शिक्षा पाने वाली सभी लड़कियां आधुनिक नहीं हैं। मैं ऐसी लड़कियोंको जानता हूं, जिन्हें 'आधुनिक लड़की' की भावनाने स्पर्शतक नहीं किया; लेकिन कुछ ऐसी जरूर हैं जो आधुनिक लड़कियां बन गई हैं। मैंने जो कुछ लिखा वह भारतकी विद्यार्थिनियोंको यह चेतावनी देनेके ही लिए था कि वे आधुनिक लड़कियोंकी नकल करके उस समस्याको और जटिल न बनाएं जो पहले ही भारी खतरा हो रही हैं; क्योंकि जिस समय मुझे यह पत्र मिला, उसी समय मुझे आन्ध्रसे भी एक विद्यार्थिनीका पत्र मिला था, जिसमें आन्ध्रके विद्यार्थियोंके व्यावहारकी कड़ी शिकायत की गई थी और उसका जो वर्णन उसने किया था वह लाहौरकी लड़की द्वारा वर्णित व्यवहारसे भी बुरा था। आन्ध्रकी वह लड़की कहती है कि उसकी साथिन लड़कियां सादा पोशाक पहननेपर भी नहीं बच पातीं; लेकिन उनमें इतना साहस नहीं है कि वे उन लड़कोंके जंगलीपनका भंडाफोड़ कर दें जो कि जिस संस्थामें पढ़ते हैं उसके लिए कलंक-रूप हैं। आन्ध्र-यूनिवर्सिटीके अधिकारियोंका ध्यान मैं इस शिकायतकी ओर आकर्षित करता हूं।

पत्र भेजनेवाली इन ग्यारह लड़कियोंको मैं इस बातके लिए निमन्त्रित करता हूं कि वे विद्यार्थियोंके जंगली व्यवहारके खिलाफ जहाद बोल दें। ईश्वर उनकी मदद करता है जो अपनी मदद अपने आप करते हैं। लड़कियोंको पुरुषके जंगली व्यवहारसे अपनी रक्षा करनेकी कला तो सीख ही लेनी चाहिए।

हरिजन सेवक,

१८ फरवरी, १९३९

परिशिष्ट

: १ :

सन्तति-निरोधकी हिमायतिन

दरिद्रनारायणकी सेवामें अपना सब-कुछ समर्पण कर देनेवाले बूढ़े किसानसे सर्वथा विपरीत, इंग्लैण्डकी एक श्रीमती हाउ-मार्टिन हैं, जो कृत्रिम सन्तति-निरोधकी जबर्दस्त प्रचारिका हैं और भारतके गरीबोंकी मददके लिए अपना सन्देश लेकर भारत पधारी हैं। गांधीजीके पास वह इस इरादेसे आई हैं कि या तो उन्हें अपने विचारोंका बना लें या खुद उनके विचारोंपर आ जायं। निस्सन्देह, वह हिन्दुस्तानमें पहली ही बार आई हैं और यहां के गरीबोंकी हालत अभी उन्होंने मुश्किलसे ही देखी होगी, इसलिए ब्रिटेनकी गन्दी बस्तियोंके अपने अनुभवकी ही उन्होंने चर्चा की और उन 'अबलाओं' का बड़ा पक्ष लिया जिन्हें कि सशक्त पुरुषके आगे झुकना पड़ता है।

लेकिन इस पहली ही दलीलपर गांधीजीने उन्हें आड़े हाथों लिया।'कोई स्त्री अबला नहीं है।' गांधीजीने कहा, 'कमजोर-से-कमजोर स्त्री भी पुरुष-से ज्यादा बल रखती है और अगर आप भारतके गांवोंमें चलें तो मैं यह बात आपको दिखला देनेके लिए पूरी तरह तैयार हूं। वहां प्रत्येक स्त्री आपसे यही कहेगी कि उसकी इच्छा न हो तो माईका जाया कोई ऐसा लाल नहीं जो उसपर बलात्कार कर सके। यह बात अपनी पत्नीके साथके खुद अपने अनुभवसे मैं कह सकता हूं, और यह याद रखिए कि मेरा उदाहरण कोई बिरला ही नहीं है। सच तो यह है कि झुकनेके बजाय मर जानेकी भावना मौजूद हो तो कोई राक्षस भी स्त्रीको अपनी दुष्ट चेष्टा

के लिए मजबूर नहीं कर सकता। यह तो परस्परकी रजामन्दीकी बात है। स्त्री-पुरुष दोनोंमें ही पशुत्व और देवत्वका सम्मिश्रण है, और अगर हम उनमेंसे पशुत्वको दूर कर सकें तो यह श्रेष्ठ और हितकर ही होगा।"

"लेकिन", श्रीमती हाउ-मार्टिनने पूछा, "अगर पुरुष अधिक बच्चोंसे बचनेके लिए अपनी पत्नीको छोड़कर पर-स्त्रीके पास जाय तो बेचारी पत्नी क्या करे ?"

"यह तो आप अपनी बातें बदल रही हैं; लेकिन यह याद रखिए कि अगर आप अपनी दलीलको निर्भ्रान्त न रखेंगी तो आप जरूर गलत परिणाम-पर पहुंचेंगी। व्यर्थकी कल्पनाएं करके पुरुषको पुरुषसे कुछ और तथा स्त्री-को स्त्रीसे अन्यथा बनानेकी कोशिश न कीजिए। आपके सन्देशका आधार क्या है, यह तो मुझे समझ लेने दीजिए। जब मैंने यह कहा कि सन्तति-निरोधका आपका प्रचार काफी फैल चुका है, तब इस विनोदके पीछे कुछ गम्भीरता थी; क्योंकि मुझे यह मालूम है कि ऐसे भी कुछ स्त्री-पुरुष हैं जो समझते हैं कि सन्तति-निरोधमें ही हमारी मुक्ति है। इसलिए मैं आपसे इसका आधार समझ लेना चाहता हूं।"

"मैं इसमें संसारकी मुक्ति नहीं देखती", श्रीमती हाउ-मार्टिनने कहा, "मैं तो सिर्फ यही कहती हूं कि सन्तति-निरोधका कोई रूप अख्तियार किये बगैर प्रजाकी मुक्ति नहीं है। आप ऐसा एक तरीकेसे करेंगे, मैं दूसरे तरीकेसे करूंगी। आपके तरीकेका भी मैं प्रतिपादन करती हूं; लेकिन सभी हालतोंमें नहीं। आपतो, मालूम होता है, एक सुन्दर वस्तुको ऐसा समझते हैं मानो वह कोई आपत्तिजनक चीज हो; पर यह याद रखिए कि दो व्यक्ति जब नये जीवनका निर्माण करने जाते हैं तो वे पशुत्वसे ऊपर उठकर देवत्वके अत्यन्त निकट होते हैं। इस क्रियामें कोई बात ऐसी है जो बड़ी सुन्दर है।"

"यहां भी आप भ्रममें हैं", गांधीजीने कहा, "नये जीवनका निर्माण देवत्वके अत्यन्त निकट है, इस बातको मैं मानता हूं। मैं जो कुछ चाहता हूं वह तो यही है कि यह दैवी रूपमें ही किया जाय, मतलब यह कि पुरुष-स्त्री नये जीवनका निर्माण करने यानी सन्तानोत्पत्तिके सिवा और किसी

इच्छासे सम्भोग न करें ? लेकिन अगर वे खाली काम-वासना शान्त करनेके लिए ही सम्भोग करें तब तो वे शैतानियतके ही बहुत नजदीक होते हैं। दुर्भाग्यवश, मनुष्य इस बातको भूल जाता है कि वह देवत्वके निकटतम है, वह अपने अन्दर विद्यमान पशु-वासनाके पीछे भटकने लगता है और पशुसे भी बदतर बन जाता है।"

"लेकिन पशुत्वकी आपको क्यों निन्दा करनी चाहिए ?"

"मैं निन्दा नहीं करता। पशु तो, उसके लिए कुदरतने जो नियम बनाये हैं, उनका पालन करता है। सिंह अपने क्षेत्रमें एक श्रेष्ठ प्राणी है और मुझको खा जानेका उसे पूरा अधिकार है; लेकिन मेरी यह विशेषता नहीं है कि मैं पंजे बढाकर आपके ऊपर झपटूं। मैं ऐसा करूं तो अपनेको हीन बनाकर पशुसे भी बदतर बन जाऊंगा।"

"मुझे अफसोस है", श्रीमती हाउ-मार्टिनने कहा, "मैंने अपने भाव ठीक तरह व्यक्त नहीं किये। इस बातको मैं स्वीकार करती हूं कि अधिकांश मामलोंमें इससे उनकी मुक्ति नहीं होगी; लेकिन यह ऐसी बात जरूर है जिससे जीवन ऊंचा बनेगा। मेरी बात आप समझ गये होंगे, हालांकि मुझे शक है कि मैं अपनी बात बिलकुल स्पष्ट नहीं कर पाई हूं।"

"नहीं-नहीं मैं आपकी अव्यवस्थिताका कोई बेजा फायदा नहीं उठाना चाहता। हां, यह जरूर चाहता हूं कि मेरा दृष्टिकोण आप समझ लें। गलतफहमियोंपर न चलिए। उपरि-मार्ग और अधो-मार्गमेंसे कोई एक आदमीको जरूर चुनना होगा; लेकिन उसमें पशुत्वका अंश होनेके कारण वह उपरि-मार्गके बदले अधो-मार्ग उसके सामने सुन्दर आवरणसे परिवेष्टित हो। सद्गुणके परदेमें पाप सामने आने पर मनुष्य आसानीसे उसका शिकार हो जाता है, और मेरी स्टोप्स तथा दूसरे (कृत्रिम सन्तति निरोधके हिमायती) यही कह रहे हैं। मैं अगर विलासिताका प्रचार करना चाहूं तो मैं जानता हूं, मनुष्य आसानीसे उसे ग्रहण कर लेंगे। मैं जानता हूं कि आप जैसे लोग अगर निस्स्वार्थ भावसे उत्साहके साथ अपने सिद्धान्तके प्रचारमें लगे रहें तो जाहिरा तौर पर शायद आपको विजय भी मिल जाय; लेकिन मैं यह भी जानता हूं कि ऐसा करके आप निश्चित रूपसे मृत्युके

मार्गपर पहुंचेंगे—इसमें शक नहीं कि ऐसा आप करेंगे इस बातको बिलकुल न जानते हुए कि आप कितनी शरारत कर रहे हैं। अधो-मार्गकी प्रवृत्ति ही ऐसी है कि उसके लिए किसी समर्थन या दलीलकी जरूरत नहीं होती। यह तो हमारे अन्दर मौजूद ही है, और अगर हम इस पर रोक लगाकर इसे नियंत्रित न रखें तो रोग और महामारीका खतरा है।"

श्रीमती हाड-मार्टिनने जो अबतक देवत्व और शैतानियतके बीच भेदको स्वीकार करती मालूम पड़ती थीं कहा कि ऐसा कोई भेद नहीं है और लोग समझते हैं उससे कहीं ज्यादा वे परस्पर-सम्बद्ध हैं। सन्तति-निरोधकी सारी फिलासफीके पीछे दरअसल यही बात है, और सन्तति-निरोधके हिमायती यह भूल जाते हैं कि यही उनका रामबाण इलाज है।

"तो आप ऐसा समझती हैं कि देव और पशु एक ही चीज है ? क्या आप सूर्यमें विश्वास करती हैं ? अगर करती हैं तो क्या आप यह नहीं सोचतीं कि छायामें भी आपको विश्वास करना चाहिए ?" गांधीजीने पूछा।

"आप छायाको शैतान क्यों कहते हैं ?"

"आप चाहें तो उसे ईश्वरेतर कह सकती हैं।"

"मैं यह नहीं समझती कि छायामें 'ईश्वरेतर' नहीं है। जीवन तो सर्वत्र है।"

"जीवनका प्रभाव जैसी भी कोई चीज है। क्या आप जानती हैं कि हिन्दू लोग अपने-अपने प्रियतमों तकके शरीरको उनकी जीवन-ज्योतिके बुझते ही जल्दसे-जल्द जलाकर भस्म कर देते हैं ? यह ठीक है कि समस्त जीवनमें मूलभूत एकता है; लेकिन विभिन्नता भी है। हमारा काम है कि उस विभिन्नतामें प्रवेश करके उसके अन्दर समाविष्ट एकताका पता लगायें; लेकिन बुद्धिके द्वारा नहीं, जैसा कि आप प्रयत्न करनेकी कोशिश कर रही हैं। जहाँ सत्य है, वहां असत्य भी जरूर होना चाहिए; इसी तरह जहां प्रकाश है, वहां छाया भी जरूर होगी। अब तक आप तर्क और बुद्धि ही नहीं, बल्कि शरीरका भी सर्वथा उत्सर्ग न कर दें तब तक आप इस व्यापक ज्ञानकी अनुभूति नहीं कर सकतीं।"

श्रीमती हाड-मार्टिन भौंचक्की रह गईं। उनकी मुलाकातका समय बीता जा रहा था; लेकिन गांधीजीने कहा, "नहीं, मैं आपको और समय देनेके लिए भी तैयार हूं, लेकिन इसके लिए आपको वर्धा आकर मेरे पास ठहरना होगा। मैं भी आपसे कम उत्साही नहीं हूं, इसलिए जबतक आप मुझे अपने विचारोंका न बना लें या खुद मेरे विचारों पर न आ जायं तबतक आपको हिन्दुस्तान से नहीं जाना चाहिए।"

यह आनन्दप्रद वार्ता सुनते हुए, जो दूसरे कार्य-क्रमोंके कारण यहीं रोकनी पड़ी, मुझे असीसीके सन्त फ्रांसिसके इन महान् शब्दोंका स्मरण हो आया—"प्रकाशने देखा और अन्धकार लुप्त हो गया। प्रकाशने कहा, "मैं वहां जाऊंगा?" शान्तिने दृष्टि फेंकी और युद्ध भाग गया, शान्तिने कहा, "मैं वहां जाऊंगी।" प्रेम उदित हुआ और घृणा उड़ गई। प्रेमने कहा, "मैं वहां जाऊंगा।" और यह बात सूर्य-प्रकाशकी भांति सर्वत्र फैलकर हमारे अंतरमें प्रवेश कर गई।

—महादेव देसाई

: २ :

पाप और सन्तति-निग्रह

गांधीजीके ध्यानमें सारे दिन ग्राम और ग्रामवासी ही रहते हैं और स्वप्न भी उन्हें इसी विषयके आते हैं। स्वामी योगानन्द नामके एक संन्यासी सोलह बरस अमेरिकामें रहकर अभी-अभी स्वदेश वापस आये हैं। गत सप्ताह रांची जाते हुए गांधीजीसे मिलनेके लिए वे यहां उतर पड़े और दो दिन ठहरे। उनके साथ गांधीजीका जो खासा लम्बा सम्वाद हुआ उसमें भी उनके इस ग्राम-चिन्तनकी काफी स्पष्ट झलक दिखाई देती थी। स्वामी योगानन्द केवल धर्मप्रचारके लिए अमेरिका गये थे और उनके कहे अनुसार उन्होंने आचरण और उपदेशके द्वारा भारतवर्षका आध्यात्मिक सन्देश संसारको देनेका ही सब जगह प्रयत्न किया। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि "भारतवर्षके बलिदानसे ही जगत्का उद्धार होगा।"

गांधीजीके साथ उन्हें पाप, सन्तति-निग्रह इन दो विषयों पर चर्चा करनी थी। अमेरिकाके जीवनकी काली बाजू उन्होंने अच्छी तरह देखी थी और अमेरिकाके युवकों और युवतियोंके विलासितामय जीवनकी एक-एक बात पर प्रकाश डालनेवाली पुस्तकके लेखक जज लिंडसेके साथ उनका वहां काफी निकटका परिचय था।

गांधीजीने कहा, "दुनियामें पाप क्यों है", इस प्रश्नका उत्तर देना कठिन है। मैं तो एक ग्रामवासी जो जवाब देगा वही दे सकता हूं। जगत्में प्रकाश है तो अन्धकार भी है। इसी तरह जहां पुण्य है वहां पाप होगा ही। किन्तु पाप और पुण्य तो हमारी मानवी दृष्टिसे हैं। ईश्वरके आगे तो पाप और पुण्य जैसी कोई चीज ही नहीं। ईश्वर तो पाप और पुण्य दोनोंसे ही परे है। हम गरीब ग्रामवासी उसकी लीलाका मनुष्यकी वाणी-में वर्णन करते हैं; पर हमारी भाषा ईश्वरकी भाषा नहीं है।

"वेदान्त कहता है कि यह जगत् माया रूप है। यह निरूपण भी मनुष्यकी तोतली वाणीका है। इसलिए मैं कहता हूं कि मैं इन बातोंमें पड़ता ही नहीं। ईश्वरके घरके गूढ़-से-गूढ़ भेद जाननेका भी मुझे अवसर मिले तो भी मैं उन्हें जाननेकी हामी न भरूं। कारण यह है कि मुझे यह पता नहीं कि मैं वह सब जानकर क्या करूंगा ! हमारे आत्म-विकासके लिए इतना ही जानना काफी है कि मनुष्य जो कुछ अच्छा काम करता है ईश्वर निरन्तर उसके साथ रहता है। यह भी ग्रामवासीका निरूपण है।"

"ईश्वर सर्वशक्तिमान् तो है ही, तो वह हमें पापसे मुक्त क्यों नहीं कर देता ?" स्वामीजी ने पूछा।

'मैं इस प्रश्नकी भी उधेड़-बुनमें नहीं पड़ना चाहता। ईश्वर और हम बराबर नही हैं। बराबरीवाले ही एक-दूसरेसे ऐसे प्रश्न पूछ सकते हैं, छोटे-बड़े नहीं। गांववाले यह नहीं पूछते कि शहरवाले अमुक काम क्यों करते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि अगर हमने वैसा किया तो हमारा सर्वनाश तो निश्चित ही है।"

"आपके कहनेका आशय मैं अच्छी तरह समझता हूं। आपने यह बड़ी जोरदार दलील दी है। पर ईश्वरको किसने बनाया है ?" स्वामीजीने पूछा।

"ईश्वर यदि सर्वशक्तिमान् है तो अपना सिरजनहार उसे स्वयं ही होना चाहिए।"

"ईश्वर स्वतंत्र सत्तावान् है या लोक-तंत्रमें विश्वास करनेवाला ? आपका क्या विचार है ?"

"मैं इन बातों पर बिलकुल विचार नहीं करता। मुझे ईश्वरकी सत्तामें तो हिस्सा लेना नहीं, इसलिए ये प्रश्न मेरे लिए विचारणीय नहीं हैं। मैं तो, मेरे आगे जो कर्तव्य है, उसे करके ही संतोष मानता हूं। जगत्की उत्पत्ति कैसे हुई, और क्यों हुई, इन सब प्रश्नोंकी चिन्तामें मैं क्यों पड़ूं ?"

"ईश्वरने हमें बुद्धि तो दी है ?"

"बुद्धि तो जरूर दी है; पर वह बुद्धि हमें यह समझनेमें सहायता

देती है कि जिन बातोंका हम ओर-छोर नहीं निकाल सकते, उनमें हमें माथापच्ची नहीं करनी चाहिए। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि सच्चे ग्रामवासीमें अद्भुत व्यावहारिक बुद्धि होती है और इससे वह कभी इन पहेलियों की उलझनमें नहीं पड़ता।"

"अब मैं एक दूसरा ही प्रश्न पूछता हूं। क्या आप यह मानते हैं कि पुण्यात्मा होनेकी अपेक्षा पापी होना सहल है, अथवा ऊपर चढ़नेकी अपेक्षा नीचे गिरना आसान है।"

"ऊपरसे तो ऐसा मालूम होता है, पर असल बात यह है कि पापी होनेकी अपेक्षा पुण्यात्मा होना सहल है। कवियोंने कहा है सही कि नरकका मार्ग आसान है; पर मैं ऐसा नहीं मानता। मैं यह भी नहीं मानता कि संसारमें अच्छे आदमियोंकी अपेक्षा पापी लोग अधिक हैं। अगर ऐसा है तो ईश्वर स्वयं पापकी मूर्त्ति बन जायगा; पर वह तो अहिंसा और प्रेमका साकार रूप है।"

"क्या मैं आपकी अहिंसाकी परिभाषा जान सकता हूं ?"

"संसारमें किसी भी प्राणीको मन, वचन और कर्मसे हानि न पहुंचाना अहिंसा है।"

गांधीजीकी इस व्याख्यासे अहिंसाके सम्बन्धमें काफी लम्बी चर्चा हुई; पर उस चर्चाको मैं छोड़ देता हूं। 'हरिजन' और 'यंगइंडिया' में न जाने कितनी बार इस विषय पर चर्चा हो चुकी है।

"अब मैं दूसरे विषय पर आता हूं," स्वामीजीने कहा, "क्या आप सन्तति-निग्रहके मुकाबलेमें संयमको अधिक पसंद करते हैं ?"

"मेरा यह विश्वास है कि किसी कृत्रिम रीतिसे या पश्चिममें प्रचलित मौजूदा रीतियोंसे सन्तति-निग्रह करना आत्म-घात है। मैंने यहां जो 'आत्म-घात' शब्दका प्रयोग किया है उसका अर्थ यह नहीं है कि प्रजाका समूल नाश हो जायगा। 'आत्म-घात' शब्दको मैं इससे ऊंचे अर्थमें लेता हूं। मेरा आशय यह है कि सन्तति-निग्रहकी ये रीतियां मनुष्योंको पशुसे बदतर बना देती हैं। यह अनीतिका मार्ग है।"

"पर हम यह कहां तक बर्दाश्त करें कि मनुष्य अविवेकके साथ सन्तान

पैदा करता ही चला जाय ? मैं एक ऐसे आदमीको जानता हूं, जो नित्य एक सेर दूध लेता था और उसमें पानी मिला देता था, ताकि उसे अपने तमाम बच्चोंको बांट सके । बच्चोंकी संख्या हर साल बढ़ती ही जाती थी। क्या इसमें आप पाप नहीं मानते ?"

"इतने बच्चे पैदा करना कि उनका पालन-पोषण न हो सके यह पाप तो है ही; पर मैं यह मानता हूं कि अपने कर्मके फलसे छुटकारा पानेकी कोशिश करना तो उससे भी बड़ा पाप है। इससे तो मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है ।"

"तब लोगोंको यह सत्य बतानेका सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग क्या है !"

"सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग यह है कि हम संयमका जीवन बितावें । उपदेशसे आचरण ऊंचा है ।"

"मगर पश्चिमके लोग हमसे पूछते हैं कि तुम लोग अपने को पश्चिमके लोगोंसे अधिक आध्यात्मिक मानते हो, फिर भी हम लोगोंके मुकाबलेमें तुम्हारे यहां बालकोंकी मृत्यु अधिक संख्यामें क्यों होती है ? महात्माजी, आप मानते हैं कि मनुष्य अधिक संख्यामें संतान पैदा करें ?"

"मैं तो यह माननेवाला हूं कि सन्तान बिलकुल पैदा न की जाय।"

"तब तो सारी प्रजाका नाश हो जायगा ।"

"नाश नहीं होगा, प्रजाका और भी सुन्दर रूपान्तर हो जायगा। पर यह कभी होनेका नहीं; क्योंकि हमें अपने पूर्वजोंसे यह विषय-वृत्तिका उत्तराधिकार युगानुयुगसे मिला हुआ है । युगोंकी इस पुरानी आदतको काबूमें लानेके लिए बहुत बड़े प्रयत्नकी जरूरत है, तो भी वह प्रयत्न सीधा-सादा है । पूर्ण त्याग, पूर्ण ब्रह्मचर्य ही आदर्श स्थिति है । जिससे यह न हो सके वह खुशीसे विवाह कर ले, पर विवाहित जीवनमें भी वह संयमसे रहे ।"

"जन-साधारणको संयममय जीवनकी बात सिखानेकी क्या आपके पास कोई व्यावहारिक रीति है ?"

"जैसा कि एक क्षण पहले मैं कह चुका हूं, हमें पूर्ण संयमकी साधना

करनी चाहिए और जन-साधारणके बीच जाकर संयममय जीवन बिताना चाहिए। भोग-विलास छोड़कर ब्रह्मचर्यके साथ अगर कोई मनुष्य रहे तो उसके आचरणका प्रभाव अवश्य ही जनता पर पड़ेगा। ब्रह्मचर्य और अस्वाद व्रतके बीच अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता है, वह अपने प्रत्येक कार्यमें संयमसे काम लेगा और सदा नम्र बनकर रहेगा।"

स्वामीजीने कहा, "मैं समझ गया। जन-साधारणको संयमके आनन्दका पता नहीं और हमें यह चीज उसे सिखानी है; पर मैंने पश्चिमके लोगोंकी जिस दलीलके बारेमें आपसे कहा है, उस पर आपका क्या मत है?"

"मैं यह नहीं मानता कि हम लोगोंमें पश्चिमके लोगोंकी अपेक्षा आध्यात्मिकता अधिक है। अगर ऐसा होता तो आज हमारा इतना अधः-पतन न हो गया होता। किन्तु इस बातसे कि पश्चिमके लोगोंकी उम्र औसतन हम लोगोंकी उम्रसे ज्यादा लम्बी होती है, यह साबित नहीं होता कि पश्चिममें आध्यात्मिकता है। जिसमें आध्यात्म-वृत्ति होती है, उसकी आयु अधिक लम्बी होनी चाहिए, यह बात नहीं है, बल्कि उसका जीवन अधिक अच्छा, अधिक शुद्ध होना चाहिए।"

—महादेव देसाई

: ३ :

श्रीमती सेंगर और सन्तति-निरोध

श्रीमती मार्गरेट सेंगर अभी थोड़े ही समय पहले गांधीजीसे वर्धामें मिली थीं। गांधीजीने उन्हें अच्छी तरह समय दिया था। भारतवर्ष छोड़-नेके पहले उन्होंने 'इलस्ट्रेटेड वीकली' में एक लेख लिखा है, जिसमें यह दिखाया गया है कि गांधीजीके साथ उनकी जो बात-चीत हुई उससे उन्हें कितना थोड़ा लाभ प्राप्त हुआ है। गांधीजीसे वह मार्गदर्शन प्राप्त करनेके लिए आई थीं। "अगणित लोग आपको पूजते है, आपकी आज्ञा पर चलते हैं, फिर उनसे आप इस सम्बन्धमें क्यों नहीं कहते? उनके लिए आप कोई ऐसा मन्त्र क्यों नहीं देते कि जिससे वे सन्मार्ग पर चलना सीखें?"—यह वे चाहती थीं। "देशके लाखों स्त्री-पुरुषोंका हित आपने किया है, तो फिर इस विषयमें भी आप कुछ कीजिए।" यह उनकी मांग थी। पहले दिन अच्छी तरह बात करनेके बाद जब वे तृप्त नहीं हुईं तो दूसरे दिन भी उन्होंने उतनी देर तक बातें कीं। अब वे अपने लेखमें यह लिखती हैं कि गांधीजीको तो भारतकी महिलाओंका कुछ पता नहीं; क्योंकि उन्होंने तो सारी बात-चीतमें दो ऐसी बेहूदी बातें कीं कि जिनसे उनका अज्ञान प्रकट हो गया। गांधीजीने इस बात-चीतमें अपनी आत्मा निचोड़ दी थी, अपनी आत्म-कथाके कितने ही प्रकरण हृदयंगम भाषामें बताये थे; किन्तु उन सबका निष्कर्ष इस महिलाने यह निकाला कि गांधीजोको स्त्रियोंकी मनोवृत्तिका कुछ ज्ञान ही नहीं।

गांधीजीसे श्रीमती सेंगर स्त्रियोंके लिए एक उद्धारक मंत्र लेना चाहती थीं, और वह मंत्र उन्हें मिला; पर वह तो असलमें यह चाहती थीं कि उनके अपने मंत्र पर गांधीजी मोहर लगा दें। इसलिए वह सुवर्ण मंत्र उन्हें दो कौड़ीका मालूम हुआ। उन्हें भले ही वह दो कौड़ीका मालूम हुआ हो;

पर भारतकी स्त्रियोंको वह मंत्र देना जरूरी है, उन्हें वह कौड़ी मोलका मालूम नहीं पड़ेगा। गांधीजीने तो उनसे बार-बार विनय करके यह भी कहा था कि मुझसे आपको एक ही बात मिल सकती है। मेरे और आपके तत्त्व-ज्ञानमें जमीन-आसमानका अन्तर है। इन सब बातोंको उस समय तो उन्होंने अच्छा महत्त्व दिया, पर खुद उन्होंने जो लेख प्रकाशित कराया है, उसमें उन्हें जरा भी महत्त्व नहीं दिया।

गांधीजीने तो पीड़ित स्त्रियोंके लिए यह सुवर्ण मंत्र दिया था कि—"मैंने तो अपनी स्त्रीके गजसे ही तमाम स्त्रियोंका माप निकाला है। दक्षिण अफ्रिकामें अनेक बहनोंसे मैं मिला—यूरोपीय औरभारतीय दोनोंसे ही। भारतीय स्त्रियोंसे तो मैं सभीसे मिलचुका था, ऐसा कहा जा सकता है, क्योंकि उनसे मैंने काम लिया था। सभीसे मैं तो डोंडी पीट-पीट कर कहता था कि तुम अपने शरीरकी—आत्माकी तरह शरीरकी भी—स्वामिनी हो, तुम्हें किसीके वशमें होकर नहीं बरतना है, तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध तुम्हारे माता-पिता या तुम्हारा पति तुमसे कुछ नहीं करा सकता, लेकिन बहुत-सी बहनें अपने पतिसे 'न.' नहीं कह सकतीं। इसमें उनका दोष नहीं। पुरुषोंने उन्हें गिराया है, पुरुषोंने उनके पतनके लिए अनेक तरहके जाल रचे हैं, और उन्हें बांधनेकी जजीरको भी उन्होंने सोनेकी जंजीरका काम दे रखा है। इसलिए वे बेचारी पुरुषकी ओर आकर्षित हो गई हैं। मगर मेरे पास तो एक ही सुवर्ण-मार्ग है, वह यह कि वे पुरुषोंका प्रतिरोध करें। यह वे उन्हें साफ-साफ बतला दें कि उनकी इच्छाके विरुद्ध पुरुष उनके ऊपर सन्ततिका भार नहीं डाल सकते। इस प्रकारका प्रतिरोध करनेमें अपने जीवनके शेष वर्ष यदि मैं खर्च कर सकूं तो फिर सन्तति-निग्रह-जैसी बातका कोई प्रश्न नहीं रहता। पुरुष यदि पशु-वृत्ति लेकर उनके पास जावें तो वे स्पष्ट रूपसे 'ना' कह दें। यह शक्ति अगर उनमें आ जाय तो फिर कुछ भी करनेकी जरूरत नहीं। यहां हिन्दुस्तानमें तो सन्तति-निग्रहका प्रश्न ही नहीं रहेगा। सभी पुरुष तो पशु हैं नहीं। मैंने ही तो अपने निजी सम्पर्कमें आई हुई अनेक स्त्रियोंको यह प्रतिरोधकी कला सिखाई है। असल प्रश्न तो यह है कि अनेक स्त्रियां यह प्रतिरोध करना

ही नहीं चाहतीं।...मेरा तो यह विश्वास है कि ६६ प्रतिशत स्त्रियां बिना किसी कटुताके अपने प्रेमसे ही पतियोंसे यह प्रार्थना कर सकती हैं कि हमारे ऊपर आप बलात्कार न करें। यह चीज असलमें उन्हें सिखाई नहीं गई, न माता-पिताने ही सिखाई, न समाज-सुधारकोंने ही। तो भी कुछ पिता ऐसे देखें हैं कि जिन्होंने अपने दामादसे यह बात की है। और कुछ अच्छे पति भी देखनेमें आये हैं कि जिन्होंने अपनी स्त्रीकी रक्षा की है। मेरी तो सौ बातकी एक बात है कि स्त्रियोंको प्रतिरोधका जन्म-सिद्ध अधिकार है, उसका उन्हें निर्बाध रीतिसे उपयोग करना चाहिए।"

मगर यह बात श्रीमती सेंगरको बेहूदी-सी मालूम हुई। गांधीजीके आगे तो उन्होंने नहीं कहा, पर अपने लेखमें वे कहती है कि इस सारी बातसे गांधीजीका अज्ञान ही प्रकट होता है, क्योंकि स्त्रियोंमें इस तरहका प्रतिरोध करनेकी शक्ति नहीं। आज स्त्रियां यह प्रतिरोध नहीं करतीं, यह तो गांधी जी भी खुद मानते हैं, पर उनका कहना यह है कि प्रत्येक शुद्ध सुधारकका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह स्त्रियोंको इस तरहका प्रतिरोध करनेकी शिक्षा दे। क्रोध, द्वेष और हिंसाकी दावाग्नि महात्मा ईसाके जमानेमें भी सुलग रही थी, किन्तु उन्होंने उपदेश दिया प्रेमका, अहिंसाका। उस उपदेशका पालन आज भी कम ही होता है, पर इससे यह कोई नहीं कहता कि महात्मा ईसाको मानव-समाजका ज्ञान न था।

श्रीमती सेंगर बम्बईकी चालियोंमें कुछ स्त्रियोंसे मिलकर आई थीं, और कहती थीं कि उन स्त्रियोंके साथ बात करने पर उन्हें ऐसा लगा कि उन स्त्रियोंको यदि सन्तति-निग्रहके साधन प्राप्त हो जायं तो उन्हें बड़ी खुशी हो। ईश्वर जाने, वे वहां किस चालीमें गई थीं, और उनका दुभाषिया कौन था! मगर गांधीजीने तो उनसे यह कहा कि 'हिन्दुस्तानके गांवोंमें आप जायं तो आपके सन्तति-निग्रहके इन उपायोंकी वे लोग बात भी सहन नहीं करेंगी। आज इनीगिनी पढ़ी-लिखी स्त्रियोंको आप भले ही बहका सकें; पर इससे आप यह न मान लें कि हिन्दुस्तानकी स्त्रियोंकी ऐसी ही मनोवृत्ति है।"

लेकिन श्रीमती सेंगरको ऐसा मालूम हुआ कि इस प्रतिरोधसे तो

गार्हस्थ्य जीवनमें कलह बढ़ेगा, स्त्रियां अप्रिय हो जायंगी। पति-पत्नीके विवाहित जीवनकी सुगन्ध और सुन्दरता नष्ट हो जायगी। बात तो यह थी कि इस प्रतिरोधसे यह सब होगा, यह बात नहीं; पर बिना शरीर-सम्बन्धका विवाहित जीवन ही शुष्क हो जाता है, ऐसा वे मानती हैं। इसलिए शरीर-सम्बन्धके विरुद्ध यह विद्रोहकी सलाह ही उनके गले नहीं उतरती। अमेरिकाके कुछ उदाहरण उन्होंने गांधीजीके आगे रक्खे और बतलाया कि "देखिए, इन पति-पत्नियोंका जीवन अलग-अलग रहनेसे कण्टकमय हो गया था; पर उन्होंने सन्तति-निग्रह करना सीखा और इससे वे लोग विवाहित जीवनका आनन्द भी उठा सके और उनका जीवन भी सुखी हुआ।" गांधीजीने कहा, "मैं आपको पचासों उदाहरण दूसरे प्रकारके दे सकता हूं। शुद्ध संयमी जीवनसे कभी दुःखकी उत्पत्ति नहीं हुई; किन्तु आत्य-संयम तो एक खरी वस्तु है। आत्म-संयम रखने वाला व्यक्ति अपने जीवनमात्रको जबतक संयत नहीं करता तबतक उसमें वह सफल हो ही नहीं सकता। मेरा तो यह अटल विश्वास है कि आपने जो उदाहरण दिये हैं वे तो संयम-हीन, बाह्य त्याग करके अन्तरसे विषयका सेवन करने वालोंके उदाहरण हैं। उन्हें यदि मैं सन्तति-निग्रहके उपायोंकी सिफारिश करूं तो उनका जीवन तो और भी गन्दा हो जाय।

कुंवारे स्त्री-पुरुषोंके लिए तो यह साधन नरकका द्वार खोल देंगे। इस विषयमें गांधीजीको शंका ही नहीं थी। उन्होंने अपने अनुभव भी सुनाये, मगर श्रीमती सेंगरकी वर्धाकी बातचीतसे यह जान पड़ा कि वे कुंवारे पुरुषोंके लिए इन उपायोंकी सिफारिश नहीं कर रहीं हैं। उन्होंने तो इतना पूछा कि "विवाहितोंके लिए भी क्या आप इन साधनोंकी अनु मति नहीं देते ?" गांधीजीने कहा, "नहीं, विवाहितोंका भी यह साधन सत्यानाश करेंगे।" श्रीमती सेंगरने अपने लेखमें जो दलील इसके विरुद्ध रखी है, वह दलील उन्होंने बातचीतमें नहीं दी थी। वे लिखती हैं—"यदि सन्तति-निग्रहके साधनेसे ही मनुष्य अत्यन्त विषयी अथवा व्यभिचारी बनते हों, तब तो गर्भाधानके बादके नौ मासमें भी अतिशय विषय और व्यभिचारके लिए क्या गुंजाइश नहीं रहती ?" दलीलकी खातिर तो यह

दलील की जा सकती है; पर मालूम होता है कि श्रीमती सेंगरने इस बातका विचार नहीं किया कि स्त्री-जातिके लिए ही यह दलील कितनी अपमानजनक है। बहुत ही दबाई हुई अथवा एकाध अत्यन्त विषयान्ध स्त्रीको छोड़कर क्या कोई गर्भवती स्त्री अपने पतिके भी विषय-वासनाके वश होती है?"

मगर बात असलमें यह थी कि श्रीमती सेंगर और गांधीजीकी मनोवृत्तियोंमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर था। बातचीतमें विषयेच्छा और प्रेमकी चर्चा चली। गांधीजीने कहा कि विषयेच्छा और प्रेम ये दोनों अलग-अलग चीजें हैं। श्रीमती सेंगरने भी यही बात कही। गांधीजीने अपने अनुभवका प्रकाश डालकर कहा कि "मनुष्य अपने मनको चाहे जितना धोखा दे; पर विषय विषय है, और प्रेम-प्रेम है। काम-रहित प्रेम मनुष्यको ऊंचा उठाता है, और काम-वासना वाला सम्बन्ध मनुष्यको नीचे गिराता है।" गांधीजीने सन्तानोत्पत्तिके लिए किये हुए धर्म्य सम्बन्धका अपवाद कर दिया। उन्होंने दृष्टान्त देकर समझाया कि "शरीर-निर्वाहके लिए हम जो कुछ खाते हैं, वह आहार नहीं, अस्वाद नहीं; किन्तु स्वाद है और विहार है। हलवा या पकवान या शराब मनुष्य भूख या प्यास बुझानेके लिए नहीं खाता-पीता; किन्तु केवल अपनी विषय-लोलुपताके वश होकर ही इन चीजोंको खाता-पीता है। इसी तरह शुद्ध सन्तानोत्पत्तिके लिए पति-पत्नी जब इकट्ठे होते हैं तब उस सम्बन्धको प्रेम-सम्बन्ध कहते हैं, सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाके बिना जब वह इकट्ठे होते हैं तो वह प्रेम नहीं, भोग है।"

श्रीमती सेंगरने कहा, "यह उपमा ही मुझे स्वीकार्य नहीं।"

गांधीजी—"आपको यह क्यों स्वीकार्य हो? आप तो सन्तानेच्छा-रहित सम्बन्धको आत्माकी भूख मानती हैं, इसलिए मेरी बात क्यों आपके गले उतरे?"

श्रीमती सेंगर—"हां, मैं उसे आत्माकी भूख मानती हूं। मुख्य बात यह है कि वह भूख किस तरह तृप्त की जाय? तृप्तिके परिणाम-स्वरूप सन्तान हो या न हो, यह गौण बात है। अनेक बच्चे बिना इच्छाके ही उत्पन्न होते हैं और शुद्ध सन्तानोत्पत्तिके लिए तो कौन दम्पति इकट्ठे होते

होंगे ? यदि शुद्ध सन्तानोत्पत्तिके लिए ही इकट्ठे हों तो पति-पत्नीको जीवनमें तीन-चार बार ही विषयेच्छाको तृप्त करके सन्तोष मानना पड़े। और यह तो ठीक बात नहीं कि सन्तानेच्छासे जो सम्बन्ध किया जाय, वह शुद्ध प्रेम है और सन्तानेच्छा-रहित सम्बन्ध विषय-सम्बन्ध है।"

गांधीजी—"मैं यह अनुभवकी बात कहता हूं कि मैंने अमुक सन्तानें होनेके बाद अपने विवाहित जीवनमें शरीर-सम्बन्ध बन्द कर दिया। सन्तानेच्छारहित सभी सम्बन्ध विषय-सम्बन्ध है, ऐसा आप कहना चाहें तो मैं यह कबूल कर सकता हूं। मेरा तो एक अनुभव आईना-सा स्पष्ट है कि मैं जब-जब शरीर-सम्बन्ध करता था, तब-तब हमारे जीवनमें सुख एवं शान्ति और विशुद्ध आनन्द नहीं होता था। एक आकर्षण था सही; किन्तु ज्यों-ज्यों हमारे जीवनमें—मेरेमें—संयम बढ़ता गया, त्यों-त्यों हमारा जीवन अधिक उन्नत होता गया। जबतक विषयेच्छा थी, तबतक सेवा-शक्ति शून्यवत् थी। विषयेच्छा पर चोट की कि तुरन्त सेवा-शक्ति उत्पन्न हुई। काम नष्ट हुआ और प्रेमका साम्राज्य जमा।" गांधीजीने अपने जीवनके एक अन्य आकर्षणकी भी बात की। उस आकर्षणसे ईश्वरने उन्हें किस तरह बचाया, यह भी उन्होंने बतलाया, पर ये तमाम अनुभवकी बातें श्रीमती सेंगरको अप्रस्तुत मालूम हुईं। शायद न मानने योग्य मालूम हुई हों तो कोई अचरज नहीं, क्योंकि अपने लेखमें वे कहती हैं कि "कांग्रेसके मुट्ठी-भर आदर्शवादी कार्यकर्ता अपनी विषयेच्छाको दबाकर सेवाशक्तिमें भले ही परिणत कर सके हों; पर उन इने-गिने व्यक्तियोंको छोड़कर उन्हें तो हम लोगोंकी बातें करनी थीं।" पर जहां तक मेरा खयाल है, गांधीजीने तो कांग्रेस या कांग्रेसके कार्यकर्ताओंका सारी बातचीतमें कोई हवाला ही नहीं दिया था; पर श्रीमती सेंगर यह भूल जाती हैं कि तमाम नैतिक उन्नति "मुट्ठी-भर आदर्शवादियों" के आचरणकी बदौलत ही हुई है। सच बात तो यह है कि गांधीजीने बतौर स्वप्न-द्रष्टा-के बात नहीं की थी। गांधीजी खुद एक नीति-शिक्षक हैं और श्रीमती सेंगर भी नीति-शिक्षिका हैं; वे स्वयं एक समाज-सेवक हैं और श्रीमती सेंगर भी समाज-सेविका हैं, यह मानकर ही संवाद चला था, और

यह होते हुए भी व्यवहारकी भूमिका पर खड़े होकर ही उन्होंने उनसे बातें की थीं। उन्होंने कहा, "नहीं, बतौर नीति-रक्षकके मेरा और आपका कर्तव्य तो यह है कि इस सन्तति-निग्रहको छोड़कर अन्य उपायोंका आयोजन करें। जीवनमें कठिन पहेलियां तो आयंगी ही; पर वे किसी मनचाहे अनुकूल साधनसे हल नहीं की जा सकतीं। इन सन्तति-निग्रहके साधनोंको अधर्म्य समझकर आप चलेंगी तभी आपको अन्य साधन सूझेंगे। तीन-चार बच्चे पैदा हो जानेके बाद मां-बापको अपनी विषय-वासना शान्त कर देनी चाहिए, इस प्रकारकी शिक्षा हम क्यों न दें, इस तरहका कानून हम क्यों न बनावें ? विषय-भोग खूब तो भोग लिया, चार-चार बच्चे हो जानेके बाद भोग-वासनाको अब क्यों न रोका जाय ? बच्चे मर जायं और बादको जरूरत हो तो सन्तान उत्पन्न करनेकी गरजसे पति-पत्नी फिरसे इकट्ठे हो सकते हैं। आप ऐसा करेंगी तो विवाह-बन्धनको आप ऊंचे दरजे पर ले जायंगी। सन्तति-निग्रहकी सलाह मुझसे कोई स्त्री लेने आये तो मैं उससे यही कहूंगा कि 'यह सलाह, बहन, तुम्हें मेरे पास मिलनेकी नहीं; और किसीके पास जाओ।' पर आप तो सन्तति-निग्रह-के धर्मका आज प्रचार कर रही हैं। मैं आपसे यह कहूंगा कि इससे आप लोगोंको नरकमें ले जाकर पटकेंगी, क्योंकि उनसे आप यह तो कहेंगी नहीं कि 'बस, अब इससे आगे नहीं।' इसमें आप कोई मर्यादा तो रख नहीं सकेंगी।"

वर्धामें जो बातचीत हुई उसमें तो श्रीमती सेंगरने इतने अधिक मित्रभावसे, इतनी अधिक जिज्ञासा-वृत्तिसे बर्ताव किया कि कुछ पूछिये नहीं। गांधीजीसे उन्होंने कहा था, "पर आप कोई उपाय भी बतलाइए। संयम मैं भी चाहती हूं, संयम मुझे अप्रिय नहीं; पर शक्य संयमका ही पालन हो सकता है न ?" सत्य-शोधककी नम्रतासे गांधीजीने कहा, "निर्बल मनुष्योंके लिए एक उपाय दिखाई देता है। वह उपाय हाल हीमें एक मित्र-की भेजी हुई पुस्तकमें देखा है। उसमें यह सलाह दी है कि ऋतुकालके बाद अमुक दिनोंको छोड़कर विषय-सेवन किया जाय। इस तरह भी मनुष्यको महीनेमें १०-१२ दिन मिल जाते हैं और सन्तानोत्पादनसे वह

बच सकता है। इस उपायमें बाकीके दिन तो संयम पालनेमें ही जायंगे, इसलिए मैं इस उपायको सहन कर सकता हूं।"

पर यह उपाय श्रीमती सेंगरको तो नीरस ही मालूम हुआ होगा; क्योंकि इस उपायका उन्होंने न तो अपने लेखमें ही कहीं उल्लेख किया है, न अपने भाषणोंमें ही। इस उपायकी ही बात करें तो सन्तति-निग्रहके साधन बेचनेवाले भीख मांगने लगें और तीसों दिन जिन्हें भोग-वासना सताती हो, उन बेचारोंकी क्या हालत हो ?

फिर श्रीमती सेंगर तो ऐसे दुखियोंकी दुःख-भंजक ठहरीं। ऐसे दुखियोंका मोक्ष-साधन सन्तति-निग्रहके सिवा और क्या हो सकता है। मैं यह कटाक्ष नहीं कर रहा हूं। श्रीमती सेंगरने अमेरिकामें सर्वधर्म-परिषद्के आगे जो भाषण दिया था, उसमें उन्होंने सन्ततिनिग्रहको मोक्ष-साधनका रूप दिया है। उस भाषणमें उन्होंने न तो संयमकी बात की है; न केवल विवाहित दम्पतियोंकी। वहां तो उन्होंने बात की है उस अमेरिका की—जहां हर साल २० लाख भ्रूण-हत्याएं होती हैं। इतनी बाल हत्याएं रोकनेके लिए सन्तति-निग्रहके साधनोंके सिवा दूसरा उपाय ही क्या ! ! पर अभी जरा और आगे बढ़ें तो कुछ दूसरी ही बात मालूम होगी, और वह यह कि इन विदेशी प्रचारिकाओंकी चढ़ाई भारतकी स्त्रियोंके हितार्थ नहीं; किन्तु दूसरे ही हेतुसे हो रही है। अमेरिकाके उस भाषणमें ही उन्होंने स्पष्ट रीतिसे कहा था कि—"जापानकी आबादी कितनी बढ़ रही है ! वहां तो जन-वृद्धिकी मात्रा पहले ही बढ़ी-चढ़ी थी, और अब तो वह उसे भी पार कर रही है। इसी तरह अगर यह बढ़ती गई तो इन एशियाके राष्ट्रोंका त्रास पृथ्वी कैसे सहन कर सकेगी ? राष्ट्रसंघको इसके विरुद्ध कोई जबर्दस्त प्रतिबन्ध सहना ही होगा। अपनी इतनी बड़ी प्रजाके लिए खानेकी तंगी होनेसे जापानको और भी देशोंकी जरूरत होगी, और भी मण्डियां चाहनी पड़ेंगी, इसीसे वह पवित्र संधियोंको भंग कर रहा है और विश्व-व्यापी युद्धका बीज बो रहा है।" जापान आज जिस अप्रिय रीतिसे पेश आ रहा है, उसे देखते हुए तो जापानका यह उदाहरण चतुराईसे भरा हुआ उदाहरण है; पर श्रीमती सेंगरको तो इस डरका भयंकर

स्वप्न दबा रहा है कि सन्तति-निग्रह न करने वाले एशियाई राष्ट्र यूरोपीय प्रजाके लिए खतरनाक हो सकते हैं। ऐसे जन-हितैषियोंकी चढ़ाईसे हम जितनी ही जल्दी सजग हो जायं उतना ही अच्छा।

—महादेव देसाई

: ४ :

श्रीमती सेंगरका पत्र

श्रीमती सेंगरने मुझे निम्नलिखित पत्र भेजा है—

"अपने लेख ('विदेशियोंके नये-नये हमले') में मेरे और गांधीजीके बीच हुई बातचीत देते हुए आप कहते हैं कि 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के अपने लेखमें मैंने उस बातचीतका सिर्फ एक ही पहलू रखा है। आपकी यह बात बिलकुल ठीक है। उस लेखमें दरअसल, उसी पर मैं विचार भी करना चाहती थी।

"मुझे यह भी बता देना चाहिए कि उस लेखको छपनेके लिए भेजनेसे पहले मैंने आपकी और गांधीजीकी एक प्रिय और वफादार मित्र म्यूरियल लेस्टरको पढ़कर सुना दिया था और जिसे आप 'परदेकी ओटमें दुर्भाव' कहते हैं वह बात उन्होंने ही सुझाई थी। कृपया इस बातका यकीन रखें कि जो बहादुर स्त्री-पुरुष हिन्दुस्तानकी आजादीके लिए प्रयत्न कर रहे हैं उन सबके प्रति मेरे मनमें अत्यधिक श्रद्धा और सम्मानका ही भाव है। मैंने अभी तक जो-कुछ किया है उस पर आप नजर डालें तो हिन्दुस्तानमें आजादी प्राप्त करनेके लिए किए जानेवाले प्रयत्नोंकी मदद करनेकी गरजसे १९१७ में जो पहला दल अमेरिकामें संगठित हुआ था, उसमें मेरा भी नाम आपको मिलेगा।

"एक और बात भी आपके लेखमें ऐसी है जिसमें, मैं समझती हूं, आप गलती पर हैं। वह यह कि आप उसमें यह जाहिर करते मालूम पड़ते हैं कि हमारी बातचीतमें गांधीजीने (ऋतु-कालके बाद कुछ दिनोंको छोड़कर) ऐसे दिनोंमें समागमके उपायको स्वीकार कर लिया है जिनमें गर्भ रहनेकी सम्भावना प्रायः नहीं होती। मेरे खयालमें आप टाइप किये हुए वक्तव्यको देखें तो उसमें उनका यह कथन आपको मिलेगा,

'यह बात मुझे उतनी नहीं खलती जितनी कि दूसरी खलती है।' हालांकि मैंने और निश्चित बात कहनेका आग्रह किया, लेकिन इससे आगे उन्होंने कुछ नहीं कहा। ऐसी हालतमें आपने सार्वजनिक रूपसे जो कथन उनका बताया है, मेरे खयालमें वह आपने ठीक नहीं किया। और अन्तमें आपने प्रचारकोंके 'व्यापार' की जो बात लिखी है, मैं नहीं समझती कि उसमें गांधीजी आपसे सहमत होंगे। वह वाक्य और जिस भावनाका वह सूचक है वह, आप-जैसे व्यक्तिके लायक नहीं है, जिसने कि निःस्वार्थ भावसे जन-सेवा कार्य किया है।

"सन्तति-निग्रहके कार्यकर्त्ता जिस बातको मानव-स्वतन्त्रता एवं प्रगतिके लिए मनुष्य-मात्रका मौलिक स्वत्व मानते हैं, उसके लिए निःस्वार्थ भावसे और बिना किसी परिश्रमके उन्होंने संग्राम किया है और अब भी कर रहे हैं। फिर जो अपना विरोधी हो उसके बारेमें यों ही कोई ऐसी बात कह देना सर्वथा अनुचित, असौजन्यपूर्ण और असत्य है, जो दरअसल बिलकुल बेबुनियाद हो।"

इसमें जहांतक 'परदेकी ओटमें दुर्भाव' से सम्बन्ध है, मैं प्रसन्नता-से और कृतज्ञता-पूर्वक अपनी भूल स्वीकार करता हूं; लेकिन यह मानना होगा कि जिस शोखी और तुनकमिजाजीके लहजेमें वह लेख लिखा हुआ है, उससे यही भाव टपकता है, हालांकि अब मैं यह मान लेता हूं कि उनका ऐसा भाव नहीं था।

दूसरी ग़लतीके बारेमें, श्रीमती सेंगरको यह याद रखना चाहिए कि उन्होंने तो 'बातचीतके सिर्फ एक पहलूको ही' लिया है; लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं नहीं समझता कि यह कहकर कि ऋतु-कालके बाद-के कुछ दिनोंको छोड़कर ऐसे दिनोंमें समागमकी बात गांधीजी सहन कर लेंगे, जिनमें गर्भ रहनेकी सम्भावना प्रायः नहीं होती; क्योंकि इसमें आत्म-संयमकी थोड़ी-बहुत भावना तो है, मैंने उन्हें किसी ऐसी स्थितिमें डाल दिया है जो उन्हें पसन्द नहीं है। मैं तो सिर्फ यही बताना चाहता था कि अपने विरोधीकी बातको भी, जहां तक सम्भव हो, किस तत्परताके साथ गांधीजी स्वीकार कर लेते हैं। उन्होंने जिस कारण यह कहा कि

'यह बात मुझे इतनी नहीं खलती जितनी कि दूसरी खलती है,' वह इस विषयमें बड़ी मुद्देकी बात है; क्योंकि श्रीमती सेंगरके उपाय (कृत्रिम सन्तति-निग्रह) से जहां महीनेके सभी दिनोंमें विषय-भोगमें प्रवृत्त होनेकी छुट्टी मिल जाती है वहां इस विशेष उपायसे किसी हदतक तो आत्म-संयम होता ही है।

'व्यापार' वाली बात, मैं समझता हूं, श्रीमती सेंगरको बहुत बुरी लगी है; लेकिन खुद श्रीमती सेंगरपर मैंने ऐसा कोई आरोप नहीं लगाया है, न मेरा ऐसा कोई इरादा ही था; क्योंकि मुझे मालूम है, उन्होंने अपने उद्देश्यके लिए बड़ी बहादुरी और निःस्वार्थ भावसे लड़ाई लड़ी है, मगर यह बात बिलकुल गलत भी नहीं है कि सन्तति-निग्रहके लिए आजकल जो प्रचार हो रहा है वह तथा सन्तति-निग्रहके प्रायः सभी उत्साही समर्थकोंके यहां बिक्रीके लिए इस सम्बन्धका जो आकर्षक साहित्य या औजार आदि होते हैं वह सब मिलाकर बहुत भद्दा है। इन सबसे उस उद्देश्यको तो हानि ही पहुंचती है जिसके लिए कि श्रीमती सेंगर निःस्वार्थ भावसे इतना उद्योग कर रही हैं।

—महादेव देसाई

: ५ :

स्त्रियोंको स्वर्गकी देवियां न बनाइए[1]

गांधीजी उस विषयपर आये, जिस विषयपर कि विषय-समितिमें उन्होंने अपने विचार प्रकट किये थे। वायु-मण्डल अनुकूल नहीं था, इसलिए उस विषयपर वे कोई प्रस्ताव नहीं ले सके। 'ज्योति-संघ' नामक आन्दोलनकी संचालिका बहनोंने उन्हें एक पत्र लिखा था। इसीको लेकर उन्होंने कुछ कहा। इस पत्रके साथ एक प्रस्ताव भी था, जिसमें उन्होंने उस वृत्तिकी निन्दा की, जो आज-कल स्त्रियोंका चित्रण करनेके विषयमें वर्तमान साहित्यमें चल पड़ी है। गांधीजीको लगा कि उनकी शिकायतमें काफी बल है और उन्होंने कहा, "इस आरोपमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आजकलके लेखक स्त्रियोंका बिलकुल झूठा चित्रण करते हैं। जिस अनुचित भावुकताके साथ स्त्रियोंका चरित्र-चित्रण किया जाता है, उनके शरीर-सौन्दर्यका जैसा भद्दा और असभ्यतापूर्ण वर्णन किया जाता है, उसे देखकर इन कितनी बहनोंको घृणा होने लग गई। क्या उनका सारा सौन्दर्य और बल केवल शारीरिक सुन्दरता ही में है? पुरुषकी लालसाभरी विकारी आंखोंकी तृप्ति करनेकी क्षमतामें ही है? इस पत्रकी लेखिकाएं पूछती हैं और उनका पूछना बिलकुल न्याय्य है कि क्यों हमारा हमेशा इस तरह वर्णन किया जाता है, मानों हम कमजोर और दब्बू औरतें हों, जिनका कर्तव्य केवल यही है कि घरके तमाम हलके-से-हलके काम करती रहें और जिनके एकमात्र देवता उनके पति हैं! जैसी वे हैं वैसी ही उन्हें क्यों नहीं बताया जाता? वे कहती हैं, 'न तो हम स्वर्गकी अप्सराएं हैं, न गुड़िया हैं, और न विकार और दुर्बलताओंकी गठरी ही हैं।' पुरुषोंकी

१. गुजरात साहित्य-परिषद्की कार्यवाहीका अंश

भांति हम भी तो मानव-प्राणी ही हैं। जैसे वे हैं वैसी ही हम भी हैं। हममें भी आजादीकी वही आग है। मेरा दावा है कि उन्हें और उनके दिलको मैं काफी अच्छी तरह जानता हूं। दक्षिण अफ्रीकामें एक समय मेरे आस-पास स्त्रियां-ही-स्त्रियां थीं। मर्द सब उनके जेलोंमें चले गये थे। आश्रममें कोई ६० स्त्रियां थीं। और मैं उन सब लड़कियों और स्त्रियोंका पिता और भाई बन गया था। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे पास रहते हुए उनका आत्मिक बल बढ़ता ही गया, यहांतक कि अन्तमें वे सब खुद-ब-खुद जेल चली गईं।

मुझसे यह भी कहा गया कि हमारे साहित्यमें स्त्रियोंको खामखा देवताके सदृश वर्णन किया गया है। मेरी रायमें इस तरहका चित्रण भी बिलकुल ग़लत है। एक सीधी-सी कसौटी मैं आपके सामने रखता हूं। उनके विषयमें लिखते समय आप उनकी किस रूपमें कल्पना करते हैं? आपको मेरी यह सूचना है कि आप जब काग़ज पर क़लम चलाना शुरू करें, उससे पहले यह खयाल कर लें कि स्त्री-जाति आपकी माता है। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आकाशसे जिस तरह इस प्यासी धरतीपर सुन्दर शुद्ध जलकी वर्षा होती है, उसी तरह आपकी लेखनीसे भी शुद्ध से-शुद्ध साहित्य-सरिता बहने लगेगी। याद रखिए, एक स्त्री आपकी पत्नी बनी, उससे पहले एक स्त्री आपकी माता थी। कितने ही लेखक स्त्रियोंकी आध्यात्मिक प्यासको शान्त करनेके बजाय उनके विकारोंको जाग्रत करते हैं। नतीजा यह होता है कि बेचारी कितनी ही भोली स्त्रियां यही सोचनेमें अपना समय बरबाद करती रहती हैं कि उपन्यासोंमें चित्रित स्त्रियोंके वर्णनके मुकाबलेमें वे किस तरह अपनेको सजा और बना सकती हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि साहित्यमें उनका नख-शिख-वर्णन क्या अनिवार्य है? क्या आपको उपनिषदों, कुरान और बाइबिलमें ऐसी चीज़ें मिलती हैं? फिर भी क्या आपको पता नहीं कि बाइबिलको अगर निकाल दें तो अंग्रेजी भाषाका भण्डार सूना हो जायगा। उसके बारेमें कहा जाता है कि उसमें तीन हिस्से बाइबिल है और एक हिस्सा शेक्सपियर। कुरानके अभाव में अरबीको सारी दुनिया भूल जायगी और तुलसीदासके

अभावमें जरा हिन्दीकी कल्पना तो कीजिए। आजकलके साहित्यमें स्त्रियों-के विषयमें जो-कुछ मिलता है, ऐसी बातें आपको तुलसीकृत रामायणमें मिलती हैं ?"

: ३ :

ब्रह्मचर्य—२

ब्रह्मचर्य–२

: १ :

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्यकी जो व्याख्या मैंने की है, वह अब भी कायम है। अर्थात्, जो मनुष्य मनसे भी विकारी होता है, समझना चाहिए कि उसका ब्रह्मचर्य स्खलित हो गया है। जो विचारमें निर्विकार नहीं, वह पूर्ण ब्रह्मचारी कभी नहीं माना जा सकता। चूंकि अपनी इस व्याख्यातक मैं नही पहुंच सका, इसलिए अपनेको मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं मानता। पर अपने आदर्शसे दूर होते हुए भी, मैं यह मानता हूं कि जब मैंने इस व्रतका आरंभ किया तब मैं जहां पर था, उससे आगे बढ़ गया हूं। विचारकी निर्विकारता तबतक कभी आती ही नहीं, जबतक कि 'पर' का दर्शन नहीं होता। जब विचारके ऊपर पूरा काबू हो जाता है, तब पुरुष स्त्रीको और स्त्री पुरुषको अपनेमें लय कर लेती है। इस प्रकारके ब्रह्मचारीके अस्तित्वमें मेरा विश्वास है, पर ऐसा कोई ब्रह्मचारी मेरे देखनेमें नहीं आया। ऐसा ब्रह्मचारी बननेका मेरा महान् प्रयास जारी अवश्य है। जबतक यह ब्रह्मचर्य प्राप्त नहीं हो जाता, मनुष्य उतनी अहिंसातक, जितनी कि उसके लिए शक्य है, पहुंच नहीं सकता।

ब्रह्मचर्यके लिए आवश्यक मानी जानेवाली बाड़को मैंने हमेशाके लिए आवश्यक नहीं माना है। जिसे किसी वाह्य रक्षाकी जरूरत है वह पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं। इसके विपरीत, जो बाड़को तोड़नेके ढोंगसे प्रलोभनोंकी खोजमें रहता है, वह ब्रह्मचारी नहीं, किन्तु मिथ्याचारी है।

ऐसे निर्भय ब्रह्मचर्यका पालन कैसे हो? मेरे पास इसका कोई अचूक

उपाय नहीं, क्योंकि मैं पूर्ण दशाको नहीं पहुंचा हूं। पर मैंने अपने लिए जिस वस्तुको आवश्यक माना है, वह यह है :

विचारोंको खाली न रहने देनेकी खातिर निरंतर उन्हें शुभ चिंतनमें लगाये रहना चाहिए। रामनामका इकतारा तो चौबीसों घंटे, सोते हुए भी, श्वासकी तरह स्वाभाविक रीतिसे, चलता रहना चाहिए। वाचन हो तो सदा शुभ, और विचार किया जाय, तो अपने कार्यका ही। कार्य पारमार्थिक होना चाहिए। विवाहितोंको एक-दूसरेके साथ एकांत-सेवन नहीं करना चाहिए, एक कोठरीमें एक चारपाईपर नहीं सोना चाहिए। यदि एक दूसरेको देखनेसे विकार पैदा होता हो, तो अलग-अलग रहना चाहिए। यदि साथ-साथ बातें करनेमें विकार पैदा होता हो, तो बातें नहीं करनी चाहिएं। स्त्रीमात्रको देखकर जिसके मनमें विकार पैदा होता हो, वह ब्रह्मचर्य-पालनका विचार छोड़कर अपनी स्त्रीके साथ मर्यादापूर्वक व्यवहार रखें; जो विवाहित न हो, उसे विवाहका विचार करना चाहिए। किसीको सामर्थ्यके बाहर जानेका आग्रह नहीं रखना चाहिए। सामर्थ्यसे बाहर प्रयत्न करके गिरनेवालोंके अनेक उदाहरण मेरी नजरके सामने आते रहते हैं।

जो मनुष्य कानसे बीभत्स या अश्लील बातें सुननेमें रस लेते हैं, आंखसे स्त्रीकी तरफ देखनेमें रस लेते हैं, वे सब ब्रह्मचर्यका भंग करते हैं। अनेक विद्यार्थी और शिक्षक ब्रह्मचर्य-पालनमें जो हताश हो जाते हैं, इसका कारण यह है कि वे श्रवण, दर्शन वाचन, भाषण आदि की मर्यादा नहीं जानते, और मुझसे पूछते हैं, "हम किस तरह ब्रह्मचर्यका पालन करें ?" प्रयत्न वे जरा भी नहीं करते। जो पुरुष स्त्रीके चाहे जिस अंगका सविकार स्पर्श करता है, उसने ब्रह्मचर्यका भंग किया है, ऐसा समझना चाहिए। जो ऊपरी मर्यादा-का ठीक-ठीक पालन करता है, उसके लिए ब्रह्मचर्य-सुलभ हो जाता है।

आलसी मनुष्य कभी ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकता। वीर्य-संग्रह करनेवालेमें एक अमोघ शक्ति पैदा होती है। उसे अपने शरीर और मनको निरंतर कार्यरत रखना ही चाहिए। अतः हरेक साधकको ऐसा सेवा-कार्य खोज लेना चाहिए कि उसे विषय-सेवन करनेके लिए रंचमात्र भी यमय न मिले।

साधकको अपने आहारपर पूरा काबू रखना चाहिए। वह जो-कुछ खाये, वह केवल औषधिरूपमें शरीर-रक्षाके लिए, स्वादके लिए कदापि नहीं। इसलिए मादक पदार्थ, मसाले वगैरा उसे खाने ही नहीं चाहिएं। ब्रह्मचारी मिताहारी नहीं, किन्तु अल्पाहारी होना चाहिए। सब अपनी मर्यादा बांध लें।

उपवासादिके लिए ब्रह्मचर्य-पालनमें अवश्य स्थान है। पर आवश्यकतासे अधिक महत्त्व देकर जो उपवास करता और उससे अपनेको कृतकृत्य हुआ मानता है, वह भारी गलती करता है। निराहारीके विषय उस बीचमें क्षीण भले ही हो जायें, पर उसका रस नष्ट नहीं होता। शरीरको निरोगी रखनेमें उपवास बहुत सहायक है। अल्पाहारी भी भूल कर सकता है, इसलिए प्रसंगोपात्त उपवास करनेमें लाभ ही है।

'क्षणिक रसके लिए मैं क्यों तेजहीन होऊं ? जिस वीर्यमें प्रजोत्पत्तिकी शक्ति भरी हुई है, उसका पतन क्यों होने दूं, और इस तरह ईश्वरकी दी हुई बख्शीसका दुरुपयोग करके मैं ईश्वरका चोर क्यों बनूं ? जिस वीर्यका संग्रह कर मैं वीर्यवान् बन सकता हूं, उसका पतन करके वीर्यहीन क्यों बनूं ?' इस विचारका मनन यदि साधक नित्य करे, और रोज ईश्वरकृपाकी याचना करे, तो संभवतः वह इस जन्ममें ही वीर्यपर काबू प्राप्त कर ब्रह्मचारी बन सकता है। इसी आशाको लेकर मैं जी रहा हूं।

हरिजन-सेवक,

२८-१०-३९

: २ :

ब्रह्मचर्यका स्पष्टीकरण

मोण्टाना (अमरीका) से कुमारी मैबल ई० सिम्पसनने 'हरिजन' के सम्पादकको लिखा है :

"मैं आपके पत्रकी प्रशंसा करती हूं। यह ठीक है कि आकारमें यह बहुत बड़ा नहीं है, लेकिन इसमें जो कुछ रहता है उससे इस अभावकी पूर्ति हो जाती है। गांधीजीने सन्तति-निग्रहके विषयमें सदाकी तरह स्पष्टता-पूर्वक जो लेख लिखा है, वह मुझे बहुत पसन्द आया। अगर वह बीस बरस पहले, जब कि सन्तति-निग्रहसे घृणा की जाती थी, और अब जब कि इसका बहुत जोर है, अमरीका आते तो वह यह जान जाते कि नैतिक दृष्टिसे यह कितना पतन-कारक है। लेकिन वह किसीको इस बातका विश्वास नहीं करा सकेंगे, क्योंकि यह मनुष्यको नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे भी वंचित कर देता है, जिससे इस पथपर चलनेवालोंके लिए उच्च नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे बुद्धिपूर्वक किसी बातका निर्णय करना असम्भव हो जाता है। इस सम्बन्धमें हिन्दुस्तानने अगर पश्चिमका अनुकरण किया तो निश्चय ही वह अपने दो अत्यन्त अमूल्य और सुन्दर रत्नोंको खो देगा—एक तो छोटे बच्चेके प्रति प्रेम, और दूसरा माता-पिताके प्रति श्रद्धा। अमरीकाने इन दोनोंको गंवा दिया है—और, इनका उसे कुछ पता भी नहीं। क्या आप ब्रह्मचर्यके अर्थका स्पष्टीकरण कर सकते हैं? मुझसे इसके बारेमें पूछा गया है। हालांकि मेरे मनमें इसकी कुछ कल्पना तो है, लेकिन वह इतनी निश्चित नहीं है कि मैं दूसरोंको समझानेका प्रयत्न करूं।"

पाठक और पाठिकाएं इस साक्षीका जो-कुछ मूल्य आंकें वह आंक सकते हैं। मगर मैं कहता हूं कि सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोंका प्रयाग

करनेके विरुद्ध ऐसी साक्षी उन लोगोंकी साक्षीसे कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है जो इनके प्रयोगसे फायदा उठानेका दावा करते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। इससे बच्चोंकी उत्पत्ति रुकती है, इस रूपमें तो इसके फायदेसे कोई इंकार नहीं करता। कहा सिर्फ यह जाता है कि इसके प्रयोगसे जो नैतिक हानि होती है वह बेहिसाब है। कुमारी सिम्पसनने हमें ऐसी हानिका माप बताया है।

अब रही ब्रह्मचर्यके अर्थकी बात। सो उसका मूलार्थ इस प्रकार बताया जा सकता है—वह आचरण कि जिससे कोई व्यक्ति ब्रह्म या परमात्माके सम्पर्कमें आता है।

इस आचरणमें सब इन्द्रियोंका सम्पूर्ण संयम शामिल है। इस शब्द-का यही सच्चा और सुसंगत अर्थ है।

वैसे आम तौरपर इसका अर्थ सिर्फ जननेन्द्रियका शारीरिक संयम ही लगाया जाने लगा है। इस संकीर्ण अर्थने ब्रह्मचर्यको हल्का करके उसके आचरणको प्रायः बिलकुल असंभव कर दिया है। जननेन्द्रियपर तबतक संयम नहीं हो सकता जबतक कि सभी इन्द्रियोंका उपयुक्त संयम न हो। क्योंकि वे सब अन्योन्याश्रित हैं। मन भी इन्द्रियोंमें ही शामिल है। जबतक मनपर संयम न हो, खाली शारीरिक संयम चाहे कुछ समयके लिए प्राप्त भी हो जाय, पर उससे कुछ हो नहीं सकता।

'हरिजन सेवक',

२०-६-३६

: ३ :

लड़कीको क्या चाहिए

एक महिला लिखती हैं :

"आपका 'ऐसी मुसीबत जिससे बच सकते हैं' शीर्षक लेख मुझे अधूरा-सा लगता है। माता-पिता अपनी लड़कियोंकी शादी करनेका क्यों आग्रह रखते हैं और फिर उसके लिए ऐसी अकथनीय मुसीबतें क्यों उठाते हैं? अगर वे अपनी लड़कियोंको भी लड़कोंकी तरह ऐसी शिक्षा देने लग जायं जिससे कि वे भी स्वतंत्रतापूर्वक अपनी आजीविका कमाने लगें तो उन्हें लड़कियोंके लिए वर तलाश करनेमें इतना कष्ट और चिन्ताएं न करनी पड़ें। मेरा अपना तो यह अनुभव है कि जब लड़कियोंको अपनी मानसिक उन्नति करनेका अवकाश मिल जाता है और वे इज्जतके साथ अपना भरण-पोषण करने लायक हो जाती हैं, तब अगर वे शादी करना चाहती हैं तो उन्हें अपने लायक वर तलाशनेमें कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। मेरे कहनेका कोई यह अर्थ न लगाए कि लड़कियोंको आज-कलकी तथोक्त उच्च शिक्षा देनेकी मैं सिफारिश कर रही हूं। मैं जानती हूं कि वह तो हजारों लड़कियोंके लिए अप्राप्य ही है। मेरा तो मतलब यह है कि लड़कियोंको उपयोगी ज्ञानके साथ-साथ किसी ऐसे धन्धेकी शिक्षा भी दी जाय जिससे उन्हें यह पूरा विश्वास हो जाय कि वे अपने माता-पिता या पतिकी निरी आश्रिता बनकर नहीं रहेंगी, बल्कि अगर मौका आया तो संसारमें अपने पैरोंपर भी खड़ी रह सकती हैं। हां, मैं तो ऐसी भी कुछ लड़कियोंको जानती हूं, जो पति-द्वारा छोड़ दिए जानेपर आज फिर अपने पतियोंके साथ सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही हैं, क्योंकि परित्यक्ताकी दशामें उन्हें सद्भाग्यसे स्वाश्रयी बनने तथा अन्य उपयोगी

शिक्षा पानेका अवसर मिल गया था। विवाहयोग्य कन्याओंके माता-पिताओंकी कठिनाइयोंका विचार करते समय, आप सवालके इस पहलूपर भी जोर दें तो बड़ा अच्छा हो।"

पत्र-भेजनेवाली महिलाने जो भाव प्रकट किये हैं, उनका मैं हृदयसे समर्थन करता हूं। मुझे तो एक ऐसे पिताके मामलेपर विचार करना था, जिसने अपने-आपको बड़ी मुसीबतमें डाल लिया था—इसलिए नहीं कि उनकी लड़की अयोग्य थी, बल्कि इसलिए कि वे और शायद उनकी लड़की भी वरका चुनाव अपनी जातिके छोटे-से दायरेमें ही करना चाहते थे। इस मामलेमें तो लड़कीका सुयोग्य होना ही एक विघ्न साबित हो रहा था। अगर लड़की निरक्षर होती तो हर किसी युवकके अनुकूल अपनेको बना लेती। पर चूंकि खुद सुशिक्षिता थी, इसलिए स्वभावतः उसके लिए उतने ही सुयोग्य वरकी भी जरूरत थी। समाजमें दुर्भाग्यवश, किसी लड़कीसे शादी करनेके लिए कीमतके बतौर रुपये मांगना नीचता और निश्चित रूपसे बुराई नहीं मानते। कालेजकी अंग्रेजी शिक्षाको खामखा इतना अधिक कृत्रिम महत्त्व प्रदान कर दिया गया है। उसमें तो न जाने कितने पाप छिपे रहते हैं। जिन वर्गोंके युवकोंमें लड़कियोंसे शादी करनेके प्रस्ताव मंजूर करनेपर कीमतें मांगी जाती हैं, बड़ा अच्छा होता अगर उनमें सुयोग्यताकी परिभाषा बनानेमें कुछ अधिक अक्लसे काम लिया जाता। ऐसा होता तो लड़कियोंके लिए वर ढूंढ़नेकी चिन्ता अगर पूरी तरह न भी दूर होती तो कम-से-कम काफी घट जाती। इसलिए पाठकोंसे मैं सिफारिश करूंगा कि वे इन पत्र-प्रेषक महिलाके विचारोंपर जरूर गौर करें। पर साथ ही, जातपांतकी इन महान् हानिकार बाड़ोंको भी तोड़नेकी उन्हें मैं जोरोंसे सलाह दूंगा। ये बाड़े तोड़नेपर चुनावके लिए विशाल क्षेत्र खुल जायगा और यह पैसे ठहरानेकी बुराई बहुत हदतक अपने-आप कम हो जायगी।

'हरिजन सेवक',

५-९-३६

: ४ :

चरित्र-बल आवश्यक है

अच्छी तरह हरिजन-सेवा करनेके लिए, यही नहीं बल्कि गरीब, अनाथ असहायोंकी सब तरहकी सेवाके लिए यह जरूरी है कि लोक-सेवक-का अपना चरित्र शुद्ध और पवित्र हो। चरित्रबल अगर न हो, तो ऊंची-से-ऊंची बौद्धिक और व्यवस्था-सम्बन्धी योग्यताकी भी कोई क़ीमत नहीं। वह तो उलटे अड़चन भी बन सकती है, जबकि शुद्ध चरित्रके साथ-साथ ऐसी सेवाका प्रेम भी हो तो उससे आवश्यक बौद्धिक और व्यवस्था-सम्बन्धी योग्यता भी निश्चय ही बढ़ जायगी या पैदा हो जायगी। हरिजन-सेवामें लगे हुए दो अच्छे प्रसिद्ध कार्यकर्त्ताओंकी शोचनीय चरित्र-हीनताके दो अत्यन्त दुःखद उदाहरण मेरे सामने आये हैं, जिनपरसे कि मैं यह बात कह रहा हूं। इन दोनोंको जो लोग जानते थे वे सब इन्हें शुद्धचरित्रका और संदेहसे परे मानते थे। लेकिन इन दोनोंने ऐसा आचरण किया है, जो, जिस पदपर ये आसीन थे, उसके बिलकुल अनुपयुक्त है। इसमें कोई शक नहीं कि वे अपने हृदयके अंधेरे कोनेमें जहरीले सांपकी तरह छिपी हुई विषय-वासनाके शिकार हुए हैं। लेकिन हम तो मर्त्यलोकके साधारण जीव ठहरे, दूसरोंके मनमें क्या है यह हम नहीं जान सकते। हम तो मनुष्योंको सिर्फ उनके उन कामोंसे ही जान सकते हैं, और हमें उन्हींपरसे उनके बारेमें कुछ निर्णय करना चाहिए, जिन्हें कि हम देख और पूरा कर सकते हैं। ये दो मामले तो ऐसे हुए हैं कि उनके लिए हरिजन-सेवक-संघके कार्यकर्त्ता बने रहना असम्भव हो गया है। यह कोई सजा नहीं है; लेकिन उनके खुदके लिए भी न सही, तो भी हरिजन-सेवक-संघ और उसके उद्देश्यकी रक्षाके लिए उनका उससे हट जाना जरूरी है। मैं यह बात बड़ी अच्छी

तरह कह सकता हूं कि संघको उनके खिलाफ कोई कार्रवाई करनेकी आवश्यकता नहीं होगी; क्योंकि वे कार्यकर्त्ता संघसे, बल्कि मैं आशा करता हूं कि सार्वजनिक प्रवृत्तिसे खुद ही हट जायंगे। यह ठीक है कि सेवा करनेकी किसीको मनाही नहीं है। जिस आदमीका भयंकर रूपसे नैतिक पतन हो गया हो, अगर फिर भी वह सावधान हो जाय, तो वह जहां भी चाहे सेवा कर सकता है। खुद उसका सुधर जाना ही कुछ कम बात नहीं है, वह भी समाजकी एक सेवा ही होगी। लेकिन ऐसी सेवा, जो खुद-ब-खुद होती है और प्रायः गुप्त रूपसे की जाती है, उससे बिलकुल भिन्न है, जो किसी संस्थामें रहकर उसकी सब सुविधाओंका उपयोग करते हुए की जाती है। ऐसे सार्वजनिक जीवनमें फिरसे प्रवेश पानेके लिए तो यह बहुत जरूरी है कि सर्वसाधारणका पूरा विश्वास फिरसे प्राप्त किया जाय।

आजकलके सार्वजनिक जीवनमें एक ऐसी प्रवृत्ति है कि जबतक कोई सार्वजनिक कार्यकर्त्ता अपने जिम्मेके किसी व्यवस्थाकार्यको अच्छी तरह पूरा करता है, उसके चरित्रके सम्बन्धमें कोई ध्यान नहीं दिया जाता। कहा यह जाता है कि चरित्रपर ध्यान देना हरेकका अपना निजी काम है, हमें उसमें दखल देनेकी कोई जरूरत नहीं, हालांकि मैं जानता हूं कि यह बात अक्सर कही जाती है, लेकिन इस विचारको ग्रहण करना तो दूर, मैं इसे ठीक भी कभी नहीं समझ सका हूं। जिन संस्थाओंने व्यक्तियोंके निजी चरित्रको विशेष महत्त्व नहीं दिया, उनमें उससे कैसे-कैसे भयंकर परिणाम सामने आये, इसका मुझे पता है। बावजूद इसके पाठकोंको यह जान लेना जरूरी है कि इस समय मैं जो बात कह रहा हूं वह सिर्फ हरिजन-सेवक-संघ जैसी उन संस्थाओंके ही बारेमें कह रहा हूं, जो करोड़ों मूक लोगोंके हितकी संरक्षक बनना चाहती हैं। मगर मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि ऐसी किसी भी सेवाके लिए शुद्ध और निष्कलंक चरित्रका होना अनिवार्य रूपसे आवश्यक है। हरिजनसेवा अथवा खादी या ग्रामोद्योगके काममें लगे हुए कार्यकर्त्ताओंके लिए तो उन बिलकुल सीधे-सादे, निर्दोष और अज्ञान स्त्री-पुरुषोंके सम्पर्कमें आना बहुत जरूरी है, जो बौद्धिक दृष्टिसे सम्भवतः बच्चोंके समान होंगे। अगर उनमें चरित्रबल

न होगा तो अन्तमें जाकर जरूर उनका पतन होगा और उसके फलस्वरूप जिस उद्देश्यके लिए वे काम कर रहे हैं, उसे उस कार्यक्षेत्रमें और भी धक्का लगेगा, जिसमें कि सर्व साधारण उनसे परिचित हैं। ऐसे मामलोंके अनुभव-से प्रेरित होकर ही मैं यह बात लिख रहा हूं। यह प्रसन्नताकी बात है कि ऐसी सेवामें जितने लोग लगे हुए हैं उनकी संख्याके लिहाजसे ऐसे इक्के-दुक्के ही हैं। लेकिन बीच-बीचमें ऐसे मामले प्रायः होते रहते हैं। इसलिए जो संस्थाएं और कार्यकर्त्ता ऐसे सेवा-कार्योंमें लगे हुए हैं, उन्हें सार्वजनिक रूपमें सावधान करने और चेतावनी देनेकी जरूरत है। कार्यकर्त्ता तो इसके लिए जितने भी अधिक सतर्क और सावधान रहें उतना ही कम है।

'हरिजन सेवक',
७-११-३६

: ५ :

एक ही शत्रु

मनुष्यमात्रका एक ही शत्रु है, एक ही मित्र है ; और वह है आप खुद ही। यह मेरा वचन नहीं, सर्वशास्त्रोंका है। जब मनुष्य अपने-आपको धोखा देता है, तब वह आप अपना शत्रु बन जाता है। जब वह अपने अंतरमें रहनेवाले परमेश्वरकी गोदमें अपने-आपको छोड़ देता है, तब वह खुद अपना मित्र बन जाता है। यह लिखनेका प्रयोजन है चरित्रपतनके वे दोनों मामले, जिनका कि मैंने उल्लेख किया है और मेरी दृष्टिमें आनेवाले इसी प्रकारके और भी छोटे-मोटे क़िस्से। इन मामलोंमें मैं ज्यों-ज्यों गहरा उतरता जाता हूं, त्यों-त्यों देखता हूं कि उन व्यक्तियोंने अपने-आपको धोखा दे रखा है। मेरी जांच-पड़तालका परिणाम क्या आता है, यह तो आगे मालूम होगा।

दोष तो हम सभी करते । लेकिन जब हम दोषमें से निर्दोषता सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं, तब हम और अधिक नीचे गिर जाते हैं।

एक पुरुषको दो स्त्रियां भाईके समान समझती हैं, तपस्वीके रूपमें, शुद्ध सेवकके रूपमें उसे देखती हैं, शिक्षक या गुरु मानती हैं ; उन्हींके साथ उसका पतन होता है, और पीछे उनमें से एकके साथ वह शादी कर लेता है। इसे मैं अपना व्यभिचार छिपानेकी युक्ति मानता हूं। इस प्रकारके सम्बन्धको विवाहका नाम देना विवाहकी मानो फ़ज़ीहत करना है। मैं जानता हूं कि आजकल ऐसा बहुत जगह हो रहा है। पापका गुणाकार होनेसे उसकी वृद्धि होती है, वह कुछ पुण्यरूप नहीं कहा जा सकता। सारा जगत पाप करता है इसलिए वह रूढ़ भले ही हो जाय, पर अगर पाप होगा तो वह पाप ही रहेगा, ऐसा नियम पाप समझे जानेवाले सभी कृत्योंको लागू नहीं होगा, यह मैं जानता हूं। मेरी दृष्टिमें तो जो वस्तु

परंपरासे पाप मानी जा रही है और जिसे आज समाज पाप मानता है, उस प्रकारके ये क़िस्से हैं।

शिक्षकोंके अपनी शिष्याओंके साथ गुप्त सम्बन्ध हो जायं, और पीछे उन सम्बन्धोंमें से किसी एकको विवाहका रूप दे दिया जाय, तो इससे ऐसा सम्बन्ध पवित्र नहीं बन सकता। जिस प्रकार सगे भाई-बहनके बीचमें पति-पत्नीका सम्बन्ध संभव नहीं, उसी प्रकार शिक्षक और शिष्याके बीच होना चाहिए, यह मेरा दृढ़ अभिप्राय है। अगर इस सुवर्ण नियमका पूर्ण पालन न हो, तो परिणाम यह होगा कि शिक्षण-संस्था टूट जायगी; कोई लड़की शिक्षकोंसे सुरक्षित न रह सकेगी। शिक्षकका पद ऐसा है कि लड़कियां और लड़के उसके नीचे निरंतर रहते हैं; शिक्षकके वचनको वेदका वचन मानते हैं। अतः शिक्षक जो स्वतंत्रता लेता है, उसके विषयमें उन्हें कोई शंका नहीं होती। इसलिए जहां शरीरसे भिन्न आत्माका सम्मान है, वहां इस प्रकारके सम्बन्ध असह्य समझे जाते हैं, और समझे जाने चाहिएं। जब ऐसा कोई सम्बन्ध 'हरिजन-सेवक-संघ' जैसी संस्थामें हो जाय, तब उससे होनेवाला बुरा असर बहुत दूरतक पहुंचता है और उस कार्यको हानि पहुंचाता है।

कुछ लोगोंको प्रकट रूपमें पाप स्वीकार करते संकोच होता है, कुछको स्वीकार करते हुए झिझक होती है। धर्म तो पुकार-पुकार कर कहता है: अपने किये हुए राईके समान दिखनेवाले दोषोंको पर्वतके समान देखो। यदि हृदयसे उन्हें पूर्णतः स्वीकार करोगे, तो जैसे मैला कपड़ा मैला दूर हो जानेसे ही शुद्ध होता और शुद्ध दीखता है, उसी तरह तुम भी शुद्ध हो जाओगे और दिखोगे। और तुम्हारा प्रकट स्वीकार और पश्चात्ताप भविष्यमें पापसे बचनेमें ढालरूप सिद्ध होगा।

'हरिजन सेवक',

५-१२-३६

: ६ :

दृश्य तथा अदृश्य दोष

एक खादीसेवक लिखते हैं :

"आप कार्यकर्त्ताओंके सदाचारपर बहुत जोर देते आ रहे हैं। आपने अधिकतर कामवासनासे बचनेको ही बहुत महत्त्व दिया है, जो कि ठीक भी है। जब कभी इस विषयमें किसी कार्यकर्त्ताकी गिरावटका उदाहरण आपके सामने आया है, आपके हृदयको सख्त चोट लगी है और आपने उसका उल्लेख 'हरिजन' में भी किया है। लेकिन क्या सदाचारका अर्थ केवल परस्त्रीके प्रति कामवासना न रखना ही है? क्या झूठ बोलना, ईर्ष्या व द्वेष रखना सदाचारके विरुद्ध नहीं हैं? चूंकि हमारा समाज भी इन बातोंको इतनी घृणासे नहीं देखता, जितनी घृणासे वह परस्त्रीके साथ संबंधको देखता है; इसलिए शायद आप भी इन बातोंपर अधिक जोर नहीं देते। पर ये बुराइयां उससे कम नहीं, बल्कि बाज हालातमें तो ये कहीं अधिक हानिकारक होती हैं।

"वैसे तो पापोंकी तुलना ही क्या? परन्तु हमारे आजकलके समाजमें तो इन चीजोंको अधिक बुरी निगाहसे नहीं देखा जाता। जब एक जिम्मेदार मुख्य कार्यकर्त्ता एक दिनमें चार-पांच सफेद झूठ बोले और किसीपर झूठे इल्जाम लगाये, तो क्या हृदय-विदीर्ण नहीं हो जाता? क्या इससे अपनेको व समाजको वह हानि नहीं पहुंचाता?"

प्रश्न यह अच्छा है। दोषोंमें ऊंच-नीचकी भावना नहीं होनी चाहिए। जहांतक मेरा संबंध है, मैं तो असत्यको सब पापोंकी जड़ मानता हूं और जिस संस्थामें झूठको बर्दाश्त किया जाता है, वह संस्था कभी समाज-सेवा नहीं कर सकती; न उसकी हस्ती भी ज्यादा दिनों-

तक रह सकती है। लेकिन मनुष्य झूठका प्रयोग जब करता है, तब उस झूठपर अनेक प्रकारके रंग चढ़ते हैं। वह एक प्रकारका व्यभिचार है। झूठके ही रूपमें झूठ शायद ही प्रकट होता है। व्यभिचारी तीन दोष करता है। झूठका दोष तो करता ही है, क्योंकि उसके पापको छुपाता है। व्यभिचारको दोष मानता ही है और दूसरे व्यक्तिका भी पतन करता है।

जितने और दोषोंका वर्णन लेखकने किया है, वे सब गुणवाचक हैं। इनको हम न देख सकते हैं, न शीघ्र पकड़ सकते हैं। जब वे मूर्तिमंत होते हैं, अर्थात् कार्यमें परिणत होते हैं तभी उनका विवेचन हो सकता है, उनके दूर करनेका उपाय भी तभी संभावित होता है। एक मनुष्य किसीसे द्वेष करता है। उसका कोई परिणाम जबतक नहीं आता, तबतक न उसकी कोई टीका की जाती है न द्वेषी मनुष्यका सुधार किया जा सकता है। लेकिन जब द्वेषवश कोई किसीको हानि पहुंचाता है, तब उसकी टीका हो सकती है और वह दंडके योग्य भी बनता है। बात यह है कि समाजमें और कानूनमें भी व्यभिचार काफी बर्दाश्त किया जाता है, अगरचे व्यभिचारसे समाजको हानि अधिक पहुंचती है। चोरको सख्त सजा मिलती है और चोर बेचारा समाजसे बहिष्कृत हो जाता है। और व्यभिचारी सफेदपोश सब जगह देखनेमें आते हैं, उन्हें दंड तो मिलता ही नहीं। कानून उनकी उपेक्षा करता है। मेरा विश्वास है कि करोड़ोंकी सेवा करनेवाली संस्थामें जैसे चोरोंको, गुंडोंको स्थान होना ही नहीं चाहिए, ठीक इसी तरह व्यभिचारियोंको भी नहीं होना चाहिए।

'हरिजन सेवक',
२७-२-३७

: ७ :

एक युवककी दुविधा

एक विद्यार्थी पूछता है :

"मैट्रिक पास या कालेजमें पढ़नेवाला युवक अगर दुर्भाग्यसे दो-तीन बच्चोंका पिता हो गया हो, तो उसे अपनी आजीविका प्राप्त करनेके लिए क्या करना चाहिए ? और उसकी इच्छाके विरुद्ध पच्चीस बरस पहले ही उसकी शादी करदी जाय तो उसे, उस हालतमें, क्या करना चाहिए ?"

मुझे तो सीधे-से-सीधा जवाब यह सूझता है कि जो विद्यार्थी अपनी स्त्री और बच्चोंका पोषण करनेके लिए क्या करना चाहिए, यह न जानता हो, अथवा जो अपनी इच्छाके विरुद्ध शादी करता हो, उसकी पढ़ाई व्यर्थ है। लेकिन इस विद्यार्थीके लिए तो वह भूतकालका इतिहास-मात्र है। इस विद्यार्थीको तो ऐसे उत्तरकी जरूरत है, जो उसको सहायक हो सके। उसने यह नहीं बताया कि उसकी जरूरतें कितनी हैं ? वह अगर मैट्रिक पास है तो अपनी कीमत ज्यादा न आंके और साधारण मजदूरोंकी श्रेणीमें अपनेको रक्खेगा तो उसे अपनी आजीविका प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई नहीं आवेगी। उसकी बुद्धि उसके हाथ-पैरको मदद करेगी, और इस कारण जिन मजदूरोंको अपनी बुद्धिका विकास करनेका मौका नहीं मिला है, उनकी अपेक्षा वह अच्छा काम कर सकेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि जो मजदूर अंग्रेजी नहीं पढ़ा वह मूर्ख होता है। दुर्भाग्यसे मजदूरोंको उनकी बुद्धिके विकासमें कभी मदद नहीं दी गई, और जो स्कूलोंमें पढ़ते हैं, उनकी बुद्धि कुछ तो विकसित होती ही है, यद्यपि उनके सामने जो विघ्न-बाधाएं आती हैं वे इस जगतके दूसरे किसी भागमें देखनेको नहीं मिलतीं। इस मानसिक विकासका वातावरण स्कूल-कालेजमें पैदा हुए झूठी प्रतिष्ठाके खयालसे बराबर हो जाता है। इस कारण विद्यार्थी यह मानने लगते हैं कि कुर्सी-

मेजपर बैठकर ही वे आजीविका प्राप्त कर सकते हैं। अतः इस प्रश्नकर्ता-को तो शरीर-श्रमका गौरव समझकर इसी क्षेत्रमेंसे अपने परिवारके लिए आजीविका प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

और फिर उसकी पत्नी भी अवकाशके समयका उपयोग करके परि-वारकी आमदनीको क्यों न बढ़ावे ? इसी प्रकार अगर लड़के भी कुछ काम करने जैसे हों तो उनको भी किसी उत्पादक काममें लगा देना चाहिए। पुस्तकोंके पढ़नेसे ही बुद्धिका विकास होता है, यह खयाल गलत है। इसको दिमागसे निकालकर यह सच्चा खयाल मनमें जमाना चाहिए कि शास्त्रीय रीतिसे कारीगरका काम सीखनेसे मनका विकास सबसे जल्दी होता है। हाथको या औजारको किस प्रकार मोड़ना या घुमाना पड़ता है, यह कदम-कदमपर उम्मीदवारको जब सिखाया जाता है तब उसके मनके सच्चे विकासकी शुरुआत होती है। विद्यार्थी अगर साधारण मजदूरोंकी श्रेणीमें अपनेको खड़ाकर लें तो उनकी बेकारीका प्रश्न बिना मेहनतके हल हो सकता है।

अपनी इच्छाके विरुद्ध विवाह करनेके विषयमें तो मैं इतना ही कह सकता हूं कि अपनी इच्छाके खिलाफ जबरदस्ती किये जानेवाले विवाहका विरोध करने जितना संकल्प-बल तो विद्यार्थियोंको जरूर प्राप्त करना चाहिए। विद्यार्थियोंको अपने बलपर खड़ा रहने और अपनी इच्छाके विरुद्ध कोई भी बात—खासकर ब्याह-शादी—जबरदस्ती किये जानेके हरेक प्रयत्नका विरोध करनेकी कला सीखनी चाहिए।

'हरिजन सेवक',

२६-१०-३७

: ८ :

साहित्यमें गंदगी

त्रावणकोरके एक हाईस्कूलके हेडमास्टर लिखते हैं :

"यह तो आप जानते ही हैं कि त्रावणकोरका राजनैतिक वातावरण इस समय बहुत दुःखपूर्ण हो गया है। हाईस्कूल तकके छात्र हड़ताल कर रहे हैं और दूसरोंको स्कूलमें जानेसे रोक रहे हैं। इन लोगोंमें कुछ ऐसी भावना काम कर रही है कि आप विद्यार्थियोंकी, और छात्रोंकी हड़तालके पक्षमें हैं। मैं यह पसंद करूंगा कि इस विषयपर आप अपनी राय आम विद्यार्थियोंको लिखनेकी कृपा करें। इससे स्थिति साफ हो जायगी।"

मेरा खयाल है कि विद्यार्थियों और छात्रोंकी हड़तालोंके खिलाफ मैंने काफी मौकोंपर लिखा है, बहुत ही कम प्रसंग मैंने छोड़े होंगे। मैं यह मानता हूं कि विद्यार्थियोंका राजनैतिक प्रदर्शनों और दलगत राजनीतिमें हिस्सा लेना बिलकुल गलत चीज है। इस किस्मका जोश उनके गंभीर अध्ययनमें हस्तक्षेप करता है, और उन्हें होनहार नागरिकोंके रूपमें काम करनेके अयोग्य बना देता है। अलबत्ता, एक चीज ऐसी जरूर है कि जिसके लिए विद्यार्थियों या छात्रोंका हड़ताल करना उनका फर्ज है। लाहौरके 'यूथ्स वेल्फेयर असोसिएशन' के अवैतनिक मंत्रीका मुझे एक पत्र मिला है। इस पत्रमें अश्लीलता और कामुकतासे भरे काफी नमूने पाठ्य पुस्तकोंसे उद्धृत किये गए हैं, जिन्हें विभिन्न विश्वविद्यालयोंने अपने पाठ्यक्रमोंमें रक्खा हैं। यह ऐसे गंदे अवतरण हैं कि पढ़नेमें घिन मालूम होती है। हालांकि यह पाठ्यक्रमकी पुस्तकोंमेंसे लिये गए हैं। मैंने जितना भी साहित्य पढ़ा है, उसमें इतनी गंदगी कभी मेरी नजरसे नहीं गुजरी। इन अवतरणोंको निष्पक्ष रीति से संस्कृत, फारसी और हिन्दीके कवियोंकी रचनाओंमेंसे लिया गया है। मेरा ध्यान इस ओर सबसे पहले वर्धाके महिला-आश्रमकी लड़कियोंने

आकर्षित किया था, और हालमें मेरी पुत्रवधूने, जोकि देहरादूनके कन्या-गुरुकुलमें पढ़ रही है, इन अश्लील कविताओंकी तरफ मेरा ध्यान खींचा है। उसकी कुछ पाठ्यपुस्तकोंमें जैसी अश्लीलता भरी हुई है, वैसी कभी उसकी नजर से नहीं गुजरी थी। उसने मेरी इसमें सहायता चाही। मैं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अधिकारियोंसे इस संबंधमें लिखा-पढ़ी कर रहा हूं। पर बड़ी-बड़ी संस्थाएं धीरे-धीरे ही कदम आगे रखती हैं। लेखकों और प्रकाशकोंका स्वार्थ सुधार नहीं होने देता, उनका एकाधिकार आड़े आ जाता है। साहित्यकी वेदी तो खास धूपकी अधिकारिणी है। मेरी पुत्र-वधूने मुझे यह सुझाया और मैं तुरन्त उसके साथ सहमत हो गया कि वह अपनी परीक्षामें अनुत्तीर्ण होनेकी जोखिम ले लेगी, पर अश्लील और कामुकतापूर्ण साहित्य नहीं पढ़ेगी। उसकी यह एक नर्म-सी हड़ताल है, पर है उसके लिए यह बिलकुल हितकर और पूरी प्रभावकारक। पर यह एक ऐसा प्रसंग है जो विद्यार्थियों या छात्रों द्वारा की हुई हड़तालको न सिर्फ उचित ही ठहराता है, बल्कि मेरी रायमें, उनका यह फर्ज हो जाता है कि ऐसा साहित्य अगर उनके ऊपर जबरन लादा जाय तो उसके खिलाफ वे विद्रोह भी करें।

किसीको चाहे जो पढ़नेकी स्वतंत्रता देना, यह एक बात है। पर यह बिलकुल अलग बात है कि युवा लड़के-लड़कियोंको ऐसे साहित्यका परि-चय कराया जाय, जिससे निश्चय ही उनके काम-विकारोंको उत्तेजन मिलता हो, और ऐसी चीजोंके बारेमें वाहियात कुतूहल मनमें पैदा हो कि जिनका ज्ञान आगे चलकर उचित समयपर और जरूरी हदतक उन्हें जरूर हो जायगा। बुरा साहित्य तब कहीं अधिक हानि पहुंचाता है जबकि वह निर्दोष साहित्यके रूपमें हमारे सामने आता है और उसपर बड़े-बड़े विश्वविद्यालयोंके प्रकाशनकी छाप होती है।

विद्यार्थियोंकी शांतिपूर्ण हड़ताल एक ऐसा तरीका है, जिससे अत्या-वश्यक सुधार जल्द-से-जल्द हो सकता है। ऐसी हड़तालोंमें कोई शोरगुल या उपद्रव नहीं होना चाहिए। सिर्फ इतना काफी होगा कि जिन परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेके लिए आपत्तिजनक साहित्यका अध्ययन आवश्यक हो, उनका

परीक्षार्थी बहिष्कार कर दें। अश्लीलताके विरुद्ध विद्रोह करना हरेक शुद्ध मनोवृत्तिवाले विद्यार्थीका कर्तव्य है।

उक्त असोसिएशनने मुझे लिखा है कि मैं कांग्रेसी मंत्रियोंसे यह अपील करूं कि वे पाठ्यक्रममेंसे ऐसी पुस्तकों या उन अंशोंको जो आपत्तिजनक हैं, हटवा देनेके लिए जो भी उपाय संभव हो, वह करें। मैं इस लेख द्वारा सहर्ष ऐसी अपील न केवल कांग्रेसी मंत्रियों, बल्कि सभी प्रांतोंके शिक्षा-मंत्रियोंसे करता हूं। निश्चय ही, विद्यार्थियोंकी बुद्धिके स्वस्थ विकासमें तो सभी एक-सी दिलचस्पी रखते हैं।

'हरिजन सेवक',
१५-१०-३८

: ९ :

आर्यसमाज और गन्दा साहित्य

कन्यागुरुकुल देहरादूनके श्री धर्मदेव शास्त्रीने और उनके बाद गुरुकुल कांगड़ीके आचार्य अभयदेवने मुझे लिखा है कि मैंने अपने 'साहित्यमें गन्दगी' शीर्षक लेखमें जो अपनी पुत्रवधूका उल्लेख किया है, जो कन्या गुरुकुलमें अध्ययन कर रही है और जिसने अपनी परीक्षामें की कुछ पाठ्य पुस्तकोंकी गन्दगीके विषयमें लिखा था, उसका कहीं-कहीं यह अर्थ लगाया गया है कि आर्यसमाजके अधिकारी इस प्रकारके गन्दे साहित्यको प्रोत्साहन देते हैं। इन दोनों ही सज्जनोंने इसका जोरदार खंडन किया है। आचार्य अभयदेवने मुझे लिखा है कि गुरुकुल तो इस विषयमें इतना सतर्क रहा है कि कालिदास-जैसे महाकवियोंकी रचनाओंके लिए भी उसका यह आग्रह है कि शकुन्तला जैसी प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियोंके ऐसे संस्करणोंका ही अध्ययन उसके विद्यार्थी करें, जिनमें से अश्लीलताके अंश बिलकुल निकाल दिये गए हों। यह तो बादकी बात है कि गुरुकुलने अपने विद्यार्थियोंको साहित्य-सम्मेलनकी परीक्षाओंमें बैठनेकी अनुमति दी। सम्मेलन ऐसी पुस्तकोंको अपने पाठ्यक्रममें रखना बर्दाश्त कर रहा है, जिनमें गन्दे साहित्यको स्थान मिला हुआ है। मैं समझता हूं कि गुरुकुलके अधिकारियोंने सम्मेलनके प्रबन्धकोंका ध्यान इस विषयकी ओर आकर्षित किया है और उनसे कहा है कि वे ऐसी पुस्तकोंको अपने पाठ्यक्रममें से निकाल दें, जिनमें आपत्तिजनक अंश हो। मुझे आशा है कि जबतक वे परीक्षार्थियोंकी पाठ्य-पुस्तकोंमें के गन्दे साहित्यके खिलाफ छेड़ी हुई इस लड़ाईमें सफलता प्राप्त न कर लेंगे, तबतक उन्हें संतोष न होगा।

'हरिजन सेवक',

१९-११-३८

: १० :

मेरा जीवन

'बंबई क्रॉनिकल'में उसके इलाहाबाद-स्थित संवाददाता द्वारा प्रेषित नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित हुआ है :

"गांधीजीके बारेमें कॉमन्स-सभामें जो बातें फैल रही हैं, उनके सम्बन्धमें बड़ी चौंका देनेवाली खबरें प्रकाशमें आई हैं। कहा जाता है कि अंग्रेज इतिहासकार मि० एडवर्ड टॉमसनने, जो हालहीमें इलाहाबाद आये थे, इंग्लैण्डमें फैली हुई विचित्र मनोवृत्तिपर कुछ रोशनी डाली है। मि० टॉमसन यहां कुछ राजनैतिक नेताओंसे भी मिले थे, जिनसे उन्होंने गांधीजीके सम्बन्धमें कॉमन्स-सभामें फैली हुई इन तीन बातोंके सम्बन्धमें कहा बताते हैं—

"१. गांधीजी ब्रिटिश सरकारके साथ बिला किसी शर्तके सहयोग करना चाहते थे।

"२. गांधीजी अब भी कांग्रेसपर प्रभाव डाल सकते हैं।

"३. गांधीजीके कामुक जीवनके सम्बन्धमें कई कहानियां चली थीं। खयाल यह था कि गांधीजी अब वह संत पुरुष नहीं रहे हैं।

"मि० टॉमसनका खयाल है कि गांधीजीके 'कामुक जीवन'के सम्बन्धमें जो धारणाएं बनी हैं, वे कुछ मराठी-पत्रोंके आधारपर हैं। उन्होंने, जहांतक कि मुझे पता है, इसकी चर्चा सर तेजबहादुर सप्रूसे की, जिन्होंने इसका खंडन किया। बादमें, उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू और श्री पी० एन० सप्रूसे भी वह चर्चा की। उन्होंने भी जोरोंके साथ इसका खंडन किया।

"ऐसा जान पड़ता है कि इंग्लैण्डसे रवाना होनेके पहले मि० टॉमसन कॉमन्स-सभाके कई सदस्योंसे मिले थे। इलाहाबादसे रवाना होनेके पहले मि० टॉमसनने नेहरूजीकी सलाहसे, एक पत्र कॉमन्स-सभाके सदस्य मि०

ग्रीनउडसे पास भेज दिया था, और इस पत्रमें उन्होंने गांधीजीके बारेमें फैली हुई कहानियोंको बिलकुल निराधार बताया था।"

मि० टॉमसनने सेगांव आनेकी भी कृपा की थी। उन्होंने इस रिपोर्टको मूलतः ठीक बताया।

तीसरे अभियोगके बारेमें कुछ स्पष्टीकरण जरूरी है। दो दिन पहले चार-पांच गुजराती भाइयोंने मेरे नाम एक चिट्ठी भेजी, उसके साथ एक समाचार-पत्र था, जिसका एकमात्र उद्देश्य यही जान पड़ता है कि वह मेरे चरित्रको उतना काला चित्रित करे जितना कि किसी मनुष्यका हो सकता है।

पत्रके शीर्षकके अनुसार उसका उद्देश्य 'हिन्दुओंका संगठन' करना है। मेरे खिलाफ जो इल्जाम लगाये गए हैं वे अधिकतर मेरे इकरारोंके आधार-पर ही हैं और उन्हें तोड़ा-मरोड़ा गया है। दूसरे कई इल्जामोंके साथ कामुकताका इल्जाम सबसे बड़ा है। कहा जाता है कि मेरा 'ब्रह्मचर्य' मेरी कामुकता छिपानेका एक साधन है। बेचारी डॉक्टर सुशीला नैयरको मेरी मालिश करने व मुझे औपचारिक स्नान करानेके अपराधपर जनताकी दृष्टिके सामने घसीटकर लाया गया है। ये दो बातें ऐसी हैं, जिनके लिए मेरे आस-पासके व्यक्तियोंमें वह सबसे अधिक योग्य हैं। उत्सुक व्यक्तियोंकी जानकारीके लिए यह बतला दूं कि वे काम तनहाईमें कभी नहीं किये जाते। ये काम डेढ़ घंटेसे भी अधिक तक होते रहते हैं, और इनके बीच मैं प्रायः सो जाता हूं, और महादेव, प्यारेलाल या दूसरे साथियोंके साथ काम भी करता रहता हूं।

जहांतक कि मुझे पता है, इन अभियोगोंका आरम्भ अस्पृश्यताके विरुद्ध चलाये गए मेरे आन्दोलनके साथ हुआ। यह उस समयकी बात है, जब कि अस्पृश्यता-निवारण कांग्रेसके कार्यक्रममें शामिल था। मैंने इस विषयपर सभाओंमें बोलना आरम्भ किया था और हरिजनोंके सभाओं व आश्रमोंमें आनेपर जोर देने लगा था। उस समय कुछ सनातनी, जो मेरी सहायता करते और मुझसे मित्रता रखते थे, मुझसे अलहदा हो गए, और उन्होंने मुझे बदनाम करनेका एक आन्दोलन ही आरम्भ कर दिया। उसके बाद एक बहुत प्रभावशाली अंग्रेज इस आन्दोलनमें शामिल हो गया।

उसने स्त्रियोंके साथ मेरी स्वतन्त्रतापर टीका-टिप्पणी की, और मेरे 'महात्मापन' को पापपूर्ण जीवन बताया। इस आन्दोलनमें एक-दो प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी भी शामिल थे। गोलमेज़ कान्फ्रेंसके अवसरपर अमरीकन अखबारोंने मेरा बड़ा निर्दय मज़ाक़ उड़ाया था। मीराबेन, जो उस समय देखरेख करती थीं, इन मज़ाक़ोंका लक्ष्य बनीं। मि० टॉमसन उन सज्जनोंसे परिचित हैं, जो इन इल्ज़ामोंके पीछे हैं, और जहांतक मैं उनकी बात समझ सका, साबरमती-आश्रमकी सदस्या प्रेमाबहन कंटकके नाम लिखी गई मेरी चिट्ठियां भी मेरे पतनको सिद्ध करनेके लिए काममें लाई गई हैं। प्रेमाबहन एक ग्रेजुएट महिला और योग्य कार्यकर्त्री हैं। वह ब्रह्मचर्य और इसी प्रकारके दूसरे विषयोंपर प्रश्न पूछा करती थीं। मैं उन्हें पूरे जवाब भेजता था। उन्होंने यह सोचकर कि ये जवाब सर्वसाधारणके लिए भी उपयोगी होंगे, मेरी इजाजतसे उन्हें प्रकाशित कर दिया। मैं उन्हें बिलकुल निर्दोष और पवित्र मानता हूं।

अभीतक मैंने इन इल्जामोंको नज़रन्दाज़ किया है; लेकिन मि०टॉमसन की बातें और गुजराती संवाददाताओंका आग्रह, जो कहते हैं कि उन्होंने इस तरहकी निन्दाके जो अंश भेजे वे तो मेरे बारेमें जो कुछ कहा जा रहा है उसके नमूनेभर हैं, मुझे उनका खण्डन करनेके लिए बाध्य करते हैं। मेरे इस जीवनमें कोई गोपनीयता नहीं है। कमज़ोरियां मुझमें भी हैं ज़रूर। लेकिन अगर कामुकताकी ओर मेरा रुझान होता, तो मुझमें इतना साहस है कि मैं उसको क़बूल कर लेता। जब मेरे अन्दर अपनी पत्नी तकके साथ विषय-सम्बन्ध रखनेकी अरुचि काफ़ी बढ़ गई और इस सम्बन्धमें मैंने अपनी काफ़ी परीक्षा कर ली तभी, और अच्छाईके साथ देश-सेवा करनेके लिए, मैंने १९०६ में ब्रह्मचर्यका व्रत लिया था। उसी दिनसे मेरा खुला जीवन शुरू हो गया है। सिर्फ़ उस अवसरको छोड़कर, जिसका कि मैंने 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' के अपने लेखोंमें उल्लेख किया है, और कभी मैं अपनी पत्नी या अन्य स्त्रियोंके साथ दरवाज़ा बन्द करके सोया या रहा होऊं, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। और वे रातें मेरे लिए सचमुच काली रातें थीं। लेकिन, जैसा कि मैंने बार-बार कहा है, अपने बावजूद ईश्वरने मुझे

बचाया है। मुझमें अगर कोई गुण हो तो मैं उसके श्रेयका अपने लिए कोई दावा नहीं करता। मेरे लिए तो सब गुणोंका दाता वही तारनहार प्रभु है और उसीने अपनी सेवाके लिए सदा मेरी रक्षाकी है।

जिस दिनसे मैंने ब्रह्मचर्य शुरू किया, उसी दिनसे हमारी स्वतंत्रताका आरम्भ हुआ है। मेरी पत्नी मेरे स्वामित्वके अधिकारसे मुक्त हो गई, और मैं अपनी उस वासनाकी दासतासे मुक्त हो गया, जिसकी पूर्ति उसे करनी पड़ती थी। जिस भावनामें मैं अपनी पत्नीके प्रति अनुरक्त था, उस भावनामें और किसी स्त्रीके प्रति मेरा आकर्षण नहीं रहा है। पतिके रूपमें उसके प्रति मैं बहुत वफ़ादार था और अपनी माताके सामने किसी अन्य स्त्रीका दास न बननेकी मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसके प्रति भी मैं वैसा ही वफ़ादार था। लेकिन जिस तरह मेरे अन्दर ब्रह्मचर्यका उदय हुआ, उसके कारण अदम्य रूपसे स्त्रियोंको मैं मातृभावसे देखने लगा। स्त्रियां मेरे लिए इतनी पवित्र हो गईं कि मैं उनके प्रति कामुकतापूर्ण प्रेमका ख़याल ही नहीं कर सकता। इसलिए तत्काल हरेक स्त्री मेरे लिए बहन या बेटीकी तरह हो गई। फ़िनिक्समें मेरे आसपास काफ़ी स्त्रियां रहती थीं। उनमेंसे कई तो मेरी रिश्तेदार ही थीं, जो मेरे कहनेसे दक्षिण अफ्रीका आई थीं। दूसरी मेरे साथियों या रिश्तेदारोंकी पत्नियां थीं। वेस्ट-परिवार तथा अंग्रेज भी इन्हींमें थे। वेस्ट-परिवारमें, वेस्ट, उनकी पत्नी और सास इतने व्यक्ति थे। उनकी सास उस छोटी-सी बस्तीकी बूढ़ी दादी बन गई थीं।

जैसी कि मेरी आदत है, किसी नई और अच्छी बातको मैं अपनेतक ही सीमित नहीं रख सकता। इसलिए मैंने सभी बाशिन्दोंको ब्रह्मचर्य ग्रहण करनेके लिए कहा। सभीने उसे पसन्द किया और कुछ यह व्रत लेकर इस आदर्शके प्रति सच्चे भी रहे। पर मेरा ब्रह्मचर्य उसका पालन करनेके लिए बने हुए कट्टर नियमोंके बारेमें कुछ नहीं जानता। मैंने तो जब जैसी जरूरत देखी, उसके अनुसार अपने नियम बना लिये। लेकिन मेरा यह विश्वास कभी नहीं रहा कि ब्रह्मचर्यका उपयुक्त रूपमें पालन करनेके लिए स्त्रियोंके किसी भी तरहके संसर्गसे बिलकुल बचना चाहिए। जो

संयम अपने विपरीत वर्गके सब संसर्गसे, फिर वह कितना ही निर्दोष क्यों न हो, बचनेके लिए कहे वह बलात् संयम है, जिसका कोई महत्त्व नहीं। इसलिए सेवा या कामकाजके लिए स्वाभाविक संसर्गोंपर कभी कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा। और मुझे तो दक्षिण अफ्रीकामें अंग्रेज व हिन्दुस्तानी अनेक बहनोंका विश्वास प्राप्त था। और जब दक्षिण अफ्रीकामें मैंने भारतीय बहनोंको निष्क्रिय प्रतिरोध-आन्दोलनमें भाग लेनेके लिए निमंत्रित किया, तो मुझे लगा कि मैं भी उन्हींमेंसे एक हूं। मुझे इस बातका पता चल गया कि स्त्री-जातिकी सेवाके लिए मैं खास तौरसे उपयुक्त हूं। इस कहानीको (जोकि मेरे लिए बड़ी रोमांचकारी है) संक्षेपमें खत्म करनेके लिए मैं कहूंगा कि भारत लौटनेपर यहां भी जल्दी ही मैं भारतीय स्त्रियोंमें हिलमिल गया। मेरे लिए यह एक रुचिकर रहस्योद्घाटन था कि मैं उनके हृदयोंतक किस आसानीसे पहुंच जाता हूं। दक्षिण अफ्रीकाकी तरह यहां भी मुसलमान स्त्रियोंने मुझसे कभी परदा नहीं किया। आश्रममें मैं स्त्रियोंसे घिरा हुआ सोता हूं, क्योंकि मेरे साथ वे अपनेको हर तरह सुरक्षित महसूस करती हैं। मुझे यह भी याद दिला देनी चाहिए कि सेगांव-आश्रममें कोई पोशीदगी नहीं है।

अगर स्त्रियोंके प्रति मेरा कामुकतापूर्ण झुकाव होता तो, अपने जीवनके इस कालमें भी, मुझमें इतना साहस है कि मैंने कई पत्नियां रख ली होतीं। गुप्त या खुले स्वतंत्र प्रेममें मेरा विश्वास नहीं है। उन्मुक्त प्रेमको मैं तो कुत्तोंका प्रेम समझता हूं। और गुप्त प्रेममें तो, इसके अलावा, कायरता भी है।

'हरिजन सेवक',
४-११-३९

: ११ :

स्त्री-धर्म क्या है ?

एक बहुत पढ़ी-लिखी बहनका पत्र, कुछ हिस्से निकाल देनेके बाद, यहां देता हूं :

"आपने अहिंसा और सत्याग्रहके ज़रिए दुनियाको आत्माका गौरव दिखा दिया है। मनुष्यके पशु-स्वभावको जीतनेकी समस्या इन्हीं दो शब्दोंसे हल हो सकती है।

"उद्योगके ज़रिये शिक्षा एक महान् कल्पना ही नहीं है, बल्कि हम अपने बच्चोंको स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं तो शिक्षाका एकमात्र सही तरीका भी यही है। आपहीने यह बात कही है और एक ही वाक्यमें शिक्षाकी सारी विशाल समस्या हल कर दी है। उसकी तफ़सील तो हालात और तजरुबेसे ही तय हो सकती है।

"मेरी अर्ज़ है कि स्त्रियोंका सवाल भी ज़रूर हल कर दें।

"राजाजी कहते हैं कि हम स्त्रियोंका सवाल ही नहीं है। शायद राजनैतिक मानेमें न हो। कदाचित्, धर्मके बारेमें भी कानून द्वारा हमें निश्चिन्त बनाया जा सकता है, अर्थात् सभी पेशे औरत-मर्द सबके लिए समान रूपमें खुले कर दिये जा सकते हैं।

"मगर फिर भी हम स्त्री हैं और स्त्रीके गुण-दोष पुरुषसे भिन्न हैं, इस बातमें अन्तर नहीं पड़ता। हमें अपने स्वभावके दोषोंको दूर करनेके लिए अहिंसा और सत्याग्रहके अलावा कुछ और सिद्धान्त भी चाहिएं।

"पुरुषकी तरह स्त्रीकी आत्मा भी ऊंचा उठनेकी कोशिश करती है, मगर जैसे नरको अपनी आक्रमणकारी भावना, काम-वासना और दुःख पहुंचानेकी पशु-वृत्ति आदिसे छुटकारा पानेके लिए अहिंसा और ब्रह्मचर्यकी जरूरत है, ठीक उसी तरह नारीको भी कुछ ऐसे उसूलोंकी आवश्यकता है,

जिनसे वह अपने स्वभावके दोष दूर कर सके, क्योंकि वे दोष पुरुषोंके दोषोंसे अलग तरहके हैं और आम तौरपर कहा जाता है कि वे प्रकृतिसे ही स्त्रीके साथ लगे हुए हैं। स्त्री होनेके कारण ही उसके जो स्वाभाविक गुण-दोष हैं, उसका जिस तरह लालन-पालन और शिक्षण होता है और उसके लिए जैसा वातावरण पैदा हो जाता है वह सब उसके विरुद्ध पड़ता है। और ये चीजें, यानी उसका स्वभाव, उसकी तालीम और उसका वायुमंडल, उसके काममें हमेशा खलल डालते, उसका रास्ता रोकते और आमतौर-पर यह कहनेका मौका देते हैं कि 'आखिर तो औरत ही है।' जब मैं कहती हूं कि स्त्री होना ही उसके गलेका हार हो गया है, तो मेरा मतलब यही है।

"मेरे खयालसे हमारी समस्या ठीक तौरपर हल हो जाय और अपने सुधारका सही तरीका हमारे हाथ लग जाय तो सहानुभूति और कोमलता आदि जो हमारे स्वभाविक गुण हैं, उन्हें बाधक होनेके बजाय हम साधक बना सकती हैं। जैसा आपने पुरुषों और बच्चोंके बारेमें हल बताया है उसी तरह हमारा सुधार भी हमारे ही भीतरसे होना चाहिए।

"मैंने स्वभाव, शिक्षा और वातावरणकी बात कही है। अपनी बात साफ समझानेके लिए मैं एक मिसाल देती हूं।

"कुदरतने औरतको कोमल, नरम-दिल, हमदर्द और बच्चोंकी मां बनाया है। इन चीजोंका असर उसपर अनजानमें भी बहुत होता है। इसलिए जब उसे कुछ करना पड़ता है तो वह बेहद भावुक हो जाती है। मर्दोंके सम्पर्क में आनेपर वह बड़ी-बड़ी गलतियां कर बैठती है। जिस वक्त उसे सख्त रहना चाहिए उस वक्त उसका दिल पिघल जाता है। वह जल्दी ही खुश और नाराज हो जाती है, उसे आसानीसे अपनेपर गर्व हो जाता है और आम तौरपर भोलेपनके काम करती है।

"जब मैं आपसे मिलने आई तब, हालांकि उस मुलाकातकी मुझे बड़ी उत्सुकता थी और पहली रात उसका विचार करते-करते मुझे नींद भी नहीं आई थी, फिर भी जब मैं आपके सामने गई और आपने मुझे बैठ जानेको कहा तो मैं श्री देसाईकी लम्बी-चौड़ी पीठकी आड़में जा बैठी। वहांसे न मैं आपकी बात सुन सकती थी और न आपका मुंह देख सकती थी। यह

मेरा कितना भोलापन था ! इतना ही नहीं, मैंने देख लिया कि मैं अपनी बात भी नहीं समझा सकती, मेरी जबान ही नहीं चलती थी। इसकी वजह मैं यह समझती हूं कि मेरे स्वभावपर भावुकता सवार रहती है और आसानीसे काबूके बाहर हो जाती है। अवश्य ही, यह ख़ास दोष तो उचित तालीमसे निकल जाता, मगर मैं कह सकती हूं कि सम्भव है, मैं और कोई ऐसा ही भोलेपनका काम कर बैठूं।

"मेरी एक सखीने मुझे वे उत्तर दिखाए थे जो उसने राष्ट्रीय-योजना उपसमितिकी स्त्रियोंके कामके बारेकी प्रश्नावलीपर लिख भेजे थे। आप जरूर जानते होंगे कि ये सवाल नम्बरवार होते हैं और कुछ इस तरहके हैं : देशके जिस भागमें आप रहती हैं वहां किस हदतक स्त्रियोंको अपने हकसे सम्पत्ति रखने, हासिल करने, उत्तराधिकारमें मिलने, बेचने या दे डालनेका अधिकार है ? जिन अनेक काम-धंधोंमें अलग-अलग योग्यताकी स्त्रियोंको लगानेकी जरूरत हो सकती है, उनके लिए स्त्रियोंको उचित शिक्षा और तालीम देनेका क्या बन्दोबस्त और सुविधाएं हैं ? वगैरह-वगैरह।

"मेरी सखीने प्रश्नोंका उत्तर न देकर यह लिखा है : 'यह कहना जरा भी सच नहीं है कि प्राचीनकालमें स्त्रियोंको शिक्षा जैसी कोई चीज मिलती ही न थी।' उसने यह भी लिखा है कि 'वैदिक युगमें विवाह होनेपर पत्नीको कुटुम्बमें तुरन्त प्रतिष्ठाका स्थान दिया जाता था और वह अपने पतिके घरकी मालकिन बन जाती थी।' आदि, आदि। उसने मनुस्मृतिसे प्रमाण भी दिये हैं।

"मैंने उससे पूछा कि जब सवाल आजके जमानेके बारेमें पूछे गए हैं तो पुराने रीति-रिवाजका हाल लिखनेकी क्या जरूरत थी ? वह यह सोचकर कि निबन्धके रूपमें उत्तर बढ़िया रहता है, कुछ मुंह-ही-मुंहमें कहती रही और फिर तेज होकर बोली, 'श्रीमती .. अमुकका जवाब तो मुझसे भी बुरा है।'

"मेरी समझसे मेरी सखीकी यह भूल ठीक तालीम न मिलनेके कारण हुई है और तालीम उसे स्त्री होनेके कारण ही नहीं दी गई। यह तो एक मुहर्रिर भी जानता है कि जब कोई सवाल पूछा जाता है तो उसके जवाबमें दूसरे ही विषयपर निबन्ध नहीं लिखना चाहिए।

"मेरे खयालमें मुझे उदाहरण देते जाने और अपनी बात समझाते रहनेकी जरूरत नहीं है। आपको सब प्रकारकी स्त्रियोंका विशाल अनुभव है कि आप जान गए होंगे कि मेरा यह कहना सही है या नहीं कि जिस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तसे स्त्रियां सुधर सकती हैं वही उन्हें मालूम नहीं है।

"आपने मुझे 'हरिजन' पढ़नेकी सलाह दी थी। मैं शौकसे पढ़ती हूं। मगर अबतक अन्तरात्माके लिए कोई सलाह मेरे देखनेमें नहीं आई। राष्ट्रीय आजादीके लिए कातना और लड़ना तो उस तालीमके कुछ पहलू ही हैं। उनमें समस्याका सारा हल समाया हुआ नहीं दीखता, क्योंकि मैंने ऐसी स्त्रियां देखी हैं जो कातती और कांग्रेसके आदर्शोंपर अमल करने-की कोशिश तो जरूर करती हैं; लेकिन फिर भी वही बड़ी-बड़ी भूलें कर बैठती हैं, जिनका कारण उनका स्त्री होना ही है।

"मैं पुरुषोंके जैसी नहीं बनना चाहती। लेकिन जैसे आपने पुरुषोंकी पशु-प्रकृतिके सुधारनेके लिए अहिंसा सिखाई है, वैसे हमें भी वह पाठ पढ़ा दीजिए जिससे हमारे भोलेपनका दोष दूर हो जाय। कृपा करके बताइए, हम कैसे अपने स्वभावका सदुपयोग करें और अपनी बाधाओंको सुविधा बनालें।

"यह स्त्री होनेका भार हमेशा मेरे मनपर रहता है। जब कभी मैं किसीको नाक-भौं सिकोड़कर यह कहते सुनती हूं कि 'आखिर स्त्री है' तो मेरी आत्मामें वेदना होती है (अगर आत्मामें भी वेदना हो सकती हो तो)। एक पुरुषसे मैंने इन बातोंकी चर्चाकी तो वह मेरी हँसी उड़ाकर कहने लगा, 'आपने हमारे मित्रके घर उस बच्चेको देखा था। वह गाड़ी बनाकर खेल रहा था और किटकिट करता जब खंभेके सामने पहुंचा तो उसके चौत-रफ़ा घूमनेके बजाय उसने अपने कंधोंसे धक्का देकर उसे गिरानेकी कोशिश की। वह अपने बाल-स्वभावसे यह समझता था कि मैं इसे गिरा दूंगा। आपकी बातसे मुझे वह याद आता है। आप जो कहती हैं वह मनोवैज्ञानिक बात है। आप उसे समझने और सुलझानेका जो प्रयत्न करती हैं, उसपर मुझे हँसी आती है।' "

मैं तो यह समझकर खुश था कि सत्याग्रहकी खोजके साथ स्त्रियोंके उद्धार-कार्यमें मेरी निश्चित सहायता शुरू हो गई है। मगर पत्र-लेखिका की यह राय है कि स्त्रियोंको पुरुषोंसे अलग तरहका इलाज चाहिए। अगर ऐसी बात है तो मैं नहीं समझता कि कोई भी पुरुष सही हल निकाल सकेगा। वह कितनी ही कोशिश करे, असफल ही रहेगा, क्योंकि प्रकृतिने उसे स्त्रीसे भिन्न बनाया है। जिसके लगती है वही जानता है कि पीड़ा कहां हो रही है। इस कारण अन्तमें तो स्त्रियोंको ही यह तय करनेका अधिकार है कि उन्हें क्या चाहिए। मेरी अपनी राय तो यह है कि जैसे मूलमें स्त्री और पुरुष एक हैं, ठीक उसी तरह उनकी समस्याका तत्त्व भी असलमें एक ही है। दोनोंमें एक ही आत्मा विराजमान है। दोनों एक ही प्रकारका जीवन बिताते हैं। दोनोंकी एक ही भांतिकी भावनाएं हैं। दोनों एक दूसरेका पूरक हैं। एककी असली सहायताके विना दूसरा जी नहीं सकता।

मगर किसी-न-किसी तरह अनन्त कालसे स्त्रीपर पुरुषने आधिपत्य रखा है। इस कारण स्त्रीमें अपनेको नीचा समझनेकी मनोवृत्ति आगई है। पुरुषने स्वार्थवश स्त्रीको यह सिखाया है कि वह उससे नीचे दर्जेकी है और स्त्रीने इस शिक्षाको सच्चा मान लिया है। मगर ज्ञानी पुरुषोंने उसका दर्जा बराबरका ही माना है।

फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि एक जगह पहुंचकर दोनोंके काम अलग-अलग हो जाते हैं। जहां यह बात सही है कि मूलमें दोनों एक हैं, वहां यह भी उतना ही सच है कि दोनोंकी शरीर-रचना एक-दूसरेसे बहुत भिन्न है। इसलिए दोनोंका काम भी अलग-अलग ही होना चाहिए। मातृत्वका धर्म ऐसा है जिसे अधिकांश स्त्रियां सदा ही धारण करती रहेंगी। मगर उसके लिए जिन गुणोंकी आवश्यकता है उनका पुरुषोंमें होना जरूरी नहीं है। वह सहनेवाली है, वह करनेवाला है। वह स्वभावसे घरकी मालिकन है, वह कमानेवाला है। वह कमाईकी रक्षा करती और बांटती है। वह हर मानेमें पालक है मानवजातिके दुधमुंहे बच्चोंको पाल-पोसकर बड़ा करनेकी कला उसीका विशेष धर्म और एकमात्र अधिकार है। वह संभाल न रखे तो मानवजाति नष्ट हो जाय।

मेरी रायमें इसमें स्त्री और पुरुष दोनोंका पतन है कि स्त्रीको घर छोड़कर घरकी रक्षाके लिए बन्दूक उठानेको कहा या समझाया जाय। यह तो फिरसे जंगली बनना और नाशकी शुरुआत करना हुआ। जिस घोड़ेपर पुरुष सवार होता है उसीपर स्त्री भी चढ़नेकी कोशिश करती है तो वह दोनोंको गिराती है। पुरुष अपनी जीवन-संगिनीसे भय या प्रलोभन दिखाकर उसका खास काम छुड़ायगा, तो इसका पाप पुरुषके ही सिर होगा। वीरता जितनी बाहरी हमलेसे अपने घरको बचानेमें है, उतनी ही उसे भीतरसे स्वच्छ और व्यवस्थित रखनेमें है।

मैंने करोड़ों किसानोंको उनकी स्वाभाविक हालतमें देखा है और छोटे-से सेगांवमें रोज देखता हूं,तो स्त्री और पुरुषके काम,कुदरती बंटवारे-की तरफ मेरा ध्यान जोरके साथ गया है। स्त्रियां लुहार और बढ़ई नहीं हैं, मगर खेतोंमें स्त्री-पुरुष दोनों काम करते हैं। अलबत्ता, भारी काम पुरुष ही करते हैं। स्त्रियां घरोंकी देख-रेख और व्यवस्था रखती हैं। वे कुटुम्बके थोड़ेसे साधनोंमें कुछ वृद्धि जरूर करती हैं, मगर मुख्य कमाई पुरुष ही करता है।

कामके बंटवारेकी बात मान लेनेके बाद, साधारण गुणों और संस्कृति-की जरूरत करीब-करीब दोनोंके लिए एक-सी ही है।

व्यक्तिका सम्बन्ध हो या राष्ट्रका, स्त्री-पुरुषकी महान् समस्याको सुल-झानेमें मैंने यह सहायता दी है कि जीवनके हर पहलूमें सत्य और अहिंसाको स्वीकृतिके लिए पेश कर दिया। मैंने यह आशा बांध रखी है कि इस काममें निर्विवाद रूपसे स्त्री ही अगुआ बनेगी और मानवीय विकासमें इस तरह अपना योग्य स्थान पाकर वह अपनेको नीचा समझनेकी वृत्ति छोड़ देगी। ऐसा करनेमें वह सफल हो सकी तो वह दृढ़तापूर्वक इस नई शिक्षाको माननेसे इन्कार कर देगी कि सब बातोंका फैसला और व्यवहार कामवासना से ही होता है। मुझे डर है कि मैंने कहीं यह बात जरा भद्दे ढंगसे तो नहीं कह दी। लेकिन मैं आशा करता हूं कि मेरा अर्थ स्पष्ट है। मुझे मालूम नहीं कि जो लाखों पुरुष युद्धमें क्रियात्मक भाग ले रहे हैं उनके मनपर काम-देवका ही भूत सवार है। न अपने खेतोंमें साथ-साथ काम करनेवाले

किसानोंको उसकी चिन्ता या भार ही सता रहा है। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं है कि जो कामवासना प्रकृतिने ही पुरुष और स्त्री दोनोंमें भर दी है उससे ये लोग मुक्त हैं। मगर इतना तो बिलकुल निश्चित है कि उनके जीवनमें इस चीजकी उतनी प्रधानता नहीं है जितनी कि उन लोगोंके जीवन-में दिखाई देती है, जो आजकलके स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी साहित्य में डूब हुए हैं। जब स्त्रीको या पुरुषको जीवनकी कठोर और भयंकर सचाईका मुकाबला करना पड़ता है तो किसीको इन बातोंके लिए फुर्सत ही नहीं मिलती।

मैंने इस अखबारमें रायदी है कि स्त्री अहिंसाकी मूर्त्ति है। अहिंसाका अर्थ है अनंत प्रेम और उसका अर्थ है कष्ट सहनेकी अनंत शक्ति। पुरुषकी माता, स्त्रीसे बढ़कर इस शक्तिका परिचय अधिक-से-अधिक मात्रामें और किससे मिलता है ? नौ महीनेतक बच्चेको पेटमें रखकर, उसे अपना रक्त पिलाकर और इसमें जो कष्ट होता है उसीमें आनन्द मानकर वही तो यह परिचय देती है। प्रसूतिकी वेदनासे बढ़कर और कौन-सी पीड़ा हो सकती है? मगर वह संतानकी खुशीमें इसे भूल जाती है और फिर रोज-ब-रोज बच्चे-को बड़ा करनेमें जो तकलीफें होती हैं, वह कौन बर्दाश्त करता है ? वह अपना यह प्रेम सारे मानव-समाजको दे डाले और भूल जाय कि वह कभी पुरुषके भोगविलासकी चीज भी हो सकती है, फिर देखे कि उसे पुरुषके बराबर, उसकी माता, जननी और मूक-पथप्रदर्शक बनकर खड़े होनेका गौरवपूर्ण दर्जा मिलता है या नहीं ? युद्धमें फंसी हुई दुनिया आज शांतिका अमृतपान करनेके लिए तड़प रही है। यह शांति-कला सिखानेका काम भगवानने स्त्रीको ही दिया है। वह सत्याग्रहमें अगुआ बन सकती है,क्योंकि उसके लिए पुस्तकोंसे मिलनेवाले ज्ञानकी जरूरत नहीं होती। उसके लिए तो तगड़ा दिल चाहिए, जो कष्ट-सहन और श्रद्धासे बनता है।

सासून-अस्पतालमें मेरी मेहरबान दाईने बरसों पहले, जब मैं वहां बीमार पड़ा था, तब एक स्त्रीका किस्सा सुनाया था। उस स्त्रीको एक दुखदायी चीरा लगवाना था, मगर उसने बेहोशीकी दवा सूंघनेसे इसलिए इंकार कर दिया कि उसके पेटमें जो बच्चा था, उसकी जानकीजोखिम न हो। उसके लिए बेहोशीकी दवा अपने बच्चेका प्रेम ही था। उसको

बचानेकी खातिर वह बड़े-से-बड़ा कष्ट सहनेको तैयार थी। स्त्रियोंमें ऐसी वीरांगनाएं बहुत हो सकती हैं, इसलिए उन्हें कभी अपने स्त्रीत्वको नीचा नहीं समझना चाहिए और न पुरुष न होनेपर दुःख मानना चाहिए। अक्सर जब उस वीरांगनाका खयाल आता है तो मुझे स्त्रीके दर्जेपर ईर्ष्या होती है। क्या अच्छा हो कि वह भी इसे पहचाने। स्त्रीको पुरुष-जन्म पानेकी जितनी लालसा हो सकती है उतनी पुरुषको स्त्री-जन्म पानेकी हो सकती है! मगर यह इच्छा व्यर्थ है। हमें तो भगवानने जिस योनिमें जन्म दिया है और प्रकृतिने हमारा जो धर्म निश्चित कर दिया है उसीमें सुखी रहना चाहिए।

सेगांव,

१२-२-४०

: १२ :

पुरुष और स्त्रियां

प्रश्न—मैं जानना चाहता हूं कि क्या आप पुरुष और स्त्री सत्याग्रहियों-का स्वच्छंदता-पूर्वक मिलना-जुलना और उनका एकसाथ काम करना पसन्द करेंगे, अथवा अलग इकाइयोंके रूपमें उनका संगठन करना और हरेकके कार्य-क्षेत्रकी स्पष्ट सीमा निर्धारित कर देना ज्यादा अच्छा होगा ? मेरा अनुभव तो यह है कि पहले ढंगसे निश्चित रूपसे पर्याप्त परिणाम-में अनुशासनहीनता तथा भ्रष्टता पैदा होगी, और ऐसा हुआ भी है। अगर आप मुझसे सहमत हैं तो इस संभवनीय बुराईका मुकाबला करने के लिए आप कौन-से नियम सुझाएंगे ?

उत्तर— मैं तो अलग इकाइयां रखना ही पसन्द करूंगा। औरतोंके पास औरतोंके बीच करनेके लिए काफीसे ज्यादा काम है। हमारा स्त्री-वर्ग बुरी तरह उपेक्षित है और उनके बीच काम करनेके लिए विशुद्ध सच्चाईवाली सैकड़ों बुद्धिमती स्त्री कार्य-कर्त्ताओंकी जरूरत है। सिद्धांत-की दृष्टिसे भी मैं स्त्री-पुरुष दोनोंके अलग-अलग अपना काम करनेमें विश्वास रखता हूं। लेकिन इसके लिए कोई कठोर नियम नहीं बना सकता। दोनोंके बीचके सम्बन्धपर विवेकका नियंत्रण होना चाहिए। दानोंके बीच कोई अन्तराय न होना चाहिए। उनका परस्परका व्यवहार प्राकृतिक और स्वेच्छापूर्ण होना चाहिए।

'हरिजन सेवक',

१-६-४०

: १३ :

एक विधवाकी कठिनाई

प्रश्न—मैं एक बंगाली ब्राह्मण विधवा हूं। अपने रंडापेके दिनसे— इन २४ सालोंमें—अपने भोजनके बारेमें कठोर नियमोंका पालन करनेका मुझे अभ्यास है। अपने ही कुटुम्बके बीच भी मुझ विधवाका अपना अलग चौका है और बर्तन भी मेरे अलग हैं। मैं आपके सत्य और अहिंसाके आदर्श में विश्वास रखती हूँ। १९३० से मैं आदतन खादी पहनती हूं और नियमित रूपसे कातती हूं। ढाकाके एक हरिजन गांवमें हमारे महिला-समाजने एक हरिजन स्कूल खोल रखा है। मैं वहां जाती और हरिजनोंमें शरीक होती हूं; मैं अपनी मुसलमान बहनोंसे भी खुले तौरपर मिलती-जुलती हूं, जिनके लिए मेरे हृदयमें शुभेच्छा है। लेकिन मैं हरिजनों या दूसरे अ-ब्राह्मण जातियोंके साथ खा-पी नहीं सकती।

क्या मेरी जैसी कट्टर विधवाएं सत्याग्रहियों, निष्क्रिय या सक्रिय, में नहीं भरती हो सकतीं ?

उत्तर—कांग्रेस-विधानकी दृष्टिसे भरती होनेका तुम्हें पूरा अधिकार है। तुम अपने अधिकारपर अमल भी कर सकती हो। किन्तु जब तुम मुझसे पूछती हो तो मैं तुम्हें भरती होनेसे विरत करूंगा। मैं जानता हूं कि बंगाली विधवाएं कितनी बारीकीसे उन नियमोंका पालन करती हैं जिन्हें कि प्रथाने उनके लिए नियत कर रखा है। लेकिन जिन विधवाओंने अपनेको देशके कामके लिए समर्पित कर दिया है और वह भी अहिंसात्मक रीतिसे, उन्हें किसीके साथ खाने-पीनेमें कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। मैं इस बातमें विश्वास नहीं करता कि लोगोंके साथ खानेसे, फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो, आध्यात्मिक उन्नतिमें कोई बाधा पड़ती है। प्रधान चीज तो मनोभाव है। अगर कोई विधवा प्रत्येक कामको सेवाकी भावना-

से करती है, तो उसका भला ही होगा। कोई विधवा खान-पान तथा अन्य नियमोंका बड़ी सावधानीसे पालन करती है; फिर भी यदि वह पवित्र हृदयकी नहीं है, तो वह सच्ची विधवा नहीं है। इसे तुम भी जानती हो और मैं भी जानता हूं कि किसी समाजका नियंत्रण करनेके लिए जो नियम होते हैं, उनका दिखाऊ तौरपर पालन करके कितने ही पाखण्डी अपनेको छिपा लेते हैं। इसलिए मैं तुम्हें सलाह दूंगा कि अन्तर्जातीय भोज तथा ऐसी ही बातोंपर जो बाधाएं हैं, उन्हें आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय प्रगतिमें बाधक समझकर उनकी परवा मत करो और हृदयके संस्कारपर ही ध्यान लगाओ। सत्याग्रह-दलमें मैं आत्मतुष्ट आदमियोंको नहीं बल्कि उनको लेना पसन्द करूंगा, जिन्होंने अपने विवेकसे काम लिया है और जीवनका एक ऐसा मार्ग चुन लिया है जो उनके मस्तिष्क और हृदय दोनोंको श्रेयस्कर प्रतीत हुआ है।

'हरिजन सेवक',

१५-६-४०

: १४ :

गृहस्थ आश्रम

एक बहनने, जो अच्छी कार्यकर्त्री हैं और जो अधिक अच्छी तरहसे देश-सेवा करनेके उद्देश्यसे अविवाहित रहना चाहती थीं, अब अपनी पसंदका साथी पाकर हाल हीमें विवाह कर लिया है। लेकिन उनका विचार है कि ऐसा करके उन्होंने गलती की और जो ऊंचा आदर्श अपने सामने रखा था उससे गिर गईं। मैंने उनका यह भ्रम दूर करनेकी कोशिश की है। इसमें संदेह नहीं कि सेवाके लिए बालिकाओंका अविवाहित रहना अच्छी बात है। लेकिन लाखोंमें से एकाध ही ऐसा कर सकती हैं। जीवनमें विवाह एक स्वाभाविक चीज है और इसे किसी तरहकी गिरावट समझना भारी भूल है। जब आदमी किसी कामको पतन समझता है तो वह कितना ही प्रयास क्यों न करें, उससे ऊपर उठना अति कठिन हो जाता है। आदर्श यह है कि विवाहको पवित्र माना जाय और विवाहित अवस्थामें आत्म-संयमसे जीवन बिताया जाय। हिन्दू धर्ममें चार आश्रमोंमेंसे एक आश्रम गृहस्थ है। वस्तुतः, अन्य तीन इसपर आधारित हैं। परन्तु दुर्भाग्यसे आजकल विवाह मात्र शारीरिक गठजोड़ माना जाता है। अन्य तीन आश्रम तो नामशेष हो गए हैं।

उपरोक्त बहन और अन्य बहनोंका, जो उन्हींकी तरह सोचती हैं, कर्तव्य है कि वे विवाहको घृणित न मानें, बल्कि उसे उसका उचित स्थान दें और उसकी पवित्रताको बनाये रक्खें। अगर वे आवश्यक आत्मसंयमसे काम लेंगी तो वे अपने भीतर सेवा-शक्ति बढ़ती हुई पाएंगी। जो सेवा करना चाहती हैं, वे स्वभावतः अपने लिए वैसे ही विचारोंका जीवन-साथी चुनेंगी और उन दोनोंकी मिली-जुली सेवाओंसे देशको अधिक लाभ होगा।

यह दुःखके साथ कहना पड़ता है कि साधारणतः आजकल लड़कियोंको मातृत्वके कर्तव्य नहीं सिखाये जाते। लेकिन अगर विवाहित जीवन धर्म-विधि है तो मातृत्व भी वैसा ही समझा जाना चाहिए। आदर्श मां बनना आसान चीज नहीं है। सन्तान-उत्पत्तिका कार्य पूरी जिम्मेदारीसे संभालनेकी जरूरत है। माताको यह पूरा ज्ञान होना चाहिए कि बच्चेके गर्भमें आनेसे लेकर उसके जन्मतक उसका क्या कर्तव्य है। और वह मां, जो देशको प्रतिभावान, स्वस्थ और सुसंस्कृत बच्चे देती है, निश्चय ही देशकी सेवा करती है। वे बच्चे बड़े होकर सेवामें तत्पर रहेंगे।

सच तो यह है कि जिनकी आत्माएं सेवाभावसे ओतप्रोत हैं वे किसी भी दशामें क्यों न हों, सदा सेवा करते रहेंगे। ऐसा जीवन वे कभी न अपनाएंगे जो सेवामें रुकावटका कारण बने।

सेगांव,
३-३-४२

: १५ :

भरोसेकी सहायता

आत्म-संयमके लिए एक भाईने तीन तरीके बताये हैं, जिनमें दो बाहरी और एक अन्दरूनी है। 'अन्दरूनी' मददके बारेमें वे यों लिखते हैं :

"तीसरी चीज जो आत्म-संयममें मदद करती है, 'रामनाम' है। इसमें कामवासनाको ईश्वर-दर्शनकी पवित्र इच्छामें बदल देनेकी बहुत बड़ी शक्ति है। वास्तवमें अनुभवसे मुझे लगता है कि करीब-करीब सभी मनुष्योंमें जो कामवासना पाई जाती है, वह एक तरहकी 'कुण्डलिनी शक्ति' है, जो अपने-आप बढ़ती और विकसित होती रहती है। जिस तरह सृष्टिके शुरूसे ही इंसान कुदरतके खिलाफ लड़ता आया है, उसी तरह अपनी 'कुण्डलिनी'की इस स्वाभाविक गतिके खिलाफ भी उसे लड़ना चाहिए, और उसे नीचेकी तरफ न जाने देकर ऊपरकी ओर ले जाना चाहिए— ऊर्ध्वरेता बनना चाहिए। जहां एक बार 'कुण्डलिनी' का ऊपर चलना शुरू हुआ कि वह मस्तिष्ककी तरफ चलने लगती है और आदमी धीरे-धीरे ऊर्ध्वरेता बनकर स्वयं अपने-आपमें और अपने चारों तरफ दिखाई देनेवाले दूसरे आदमियोंमें एक ही ईश्वरको देखने लगता है।" इसमें कोई शक नहीं कि 'रामनाम' सबसे ज्यादा भरोसेकी सहायता है। अगर दिलसे उसका जप किया जाय तो वह हरएक बुरे खयालको फौरन दूर कर सकता है, और जब बुरा खयाल मिट गया तो उसका बुरा असर होना संभव नहीं। अगर मन कमजोर है तो बाहरकी सब सहायता बेकार है, और मन पवित्र है, तो वह सब अनावश्यक है। इसका यह मतलब कदापि नहीं समझना चाहिए कि एक पवित्र मनवाला आदमी सब तरहकी छूट लेते हुए भी बेदाग बचा रह सकता है। ऐसा आदमी खुद ही अपने साथ कोई छूट न लेगा। उसका सारा जीवन उसकी अन्दरूनी पवित्रताका

सच्चा सबूत होगा। गीतामें ठीक ही कहा है कि आदमीका मन ही उसे बनाता है और वही उसे बिगाड़ता भी है। मिल्टन जब यह कहता है कि 'इन्सानका मन ही सबकुछ है; वही स्वर्गको नरक और नरकको स्वर्ग बना देता है', तो वह भी इसी विचारकी व्याख्या करता है।

शिमला,
२-५-४६

: १६ :

ब्याह और ब्रह्मचर्य

सूरतके पाटीदार आश्रमसे जिन भाईने श्री नरहरि पारीखको 'हरिजनों और सवर्णोंके ब्याह'के बारेमें सवाल पूछा है, उन्होंने यह दूसरा सवाल भी उठाया है :

"शादी करना, और जबतक स्वराज न मिले, ब्रह्मचर्यका पालन करना, ये दोनों चीजें एक साथ बैठती नहीं हैं। अगर ब्रह्मचर्य ही रखना हो तो शादी करनेकी क्या जरूरत ? और अगर शादी करना हो, तो ब्रह्मचर्यको बीचमें क्यों लाया जाय ? इन्सान सभ्य प्राणी है। ब्याह-जैसा पवित्र रिवाज दाखल करके उसने समाजमें व्यवस्था और इन्साफ कायम करनेकी कोशिश की है। अगर शादीका रिवाज न होता, तो जातीय सवालपर घर, बाजार और गांवमें तरह-तरहके झगड़े खड़े होते रहते। शादी करनेके बाद कामवृत्तिकी बागडोर खुली छोड़ देनेको तो कोई नहीं कहता। उसमें संयमके लिए जगह है। और संयमसे ही गृहस्थाश्रमकी खूबसूरती बढ़ती है। शादीका पहला हेतु तो साथ रहकर एक-दूसरेको आगे बढ़ाना है। यह मानना ही पड़ेगा कि इसमें कामवृत्तिको मर्यादामें रखकर उसकी प्यास बुझाना मुख्य उद्देश्य रहा है। स्वराज न मिलनेतक नये ब्याहे जोड़ेसे ब्रह्मचर्य-पालनेकी प्रतिज्ञा कराना उनकी जिन्दगीमें झूठ और दिखावा दाखिल करना है। इससे उनमें विकृति भी पैदा हो सकती है। जो मर्द-औरत अनोखे दरजेके होंगे, वे तो शादीके बन्धनमें पड़ेंगे ही नहीं। शादी करनेवाले तो आम लोग ही होंगे।......अच्छा हुआ कि पतिने बादमें बापूजीको कह दिया कि वह पत्नीके माता बननेके हकको छीन नहीं सकते। इससे बापूजीकी एक तरहसे इज्जत बच गई। नहीं तो ईस तरह ब्रह्मचर्यकी बातसे झूठ और दिखावे या ढोंगको मदद मिलनेके सिवा दूसरा नतीजा शायद ही निकलता।

"स्वराज मिलनेतक ब्रह्मचर्य पालनेकी प्रतिज्ञाका मर्म या भेद बापू समझावें, यह जरूरी है। मुझे तो यह एक हंसीकी बात लगती है।"

इस सवालमें यह मान लिया गया है कि ब्याह करनेमें पहली चीज विषय-भोग है। यह दुःखकी बात है। सचमुच तो ब्याहका मतलब औरत और मर्दकी गाढ़ी-से-गाढ़ी मित्रता होना चाहिए, और है। उसमें विषय-भोगको तो जगह ही नहीं। जिस शादीमें विषय-भोगको जगह है, वह सच्ची शादी ही नहीं, सच्ची मित्रता ही नहीं। ऐसी शादियां मैंने देखी हैं, जहां शादीका हेतु सिर्फ एक-दूसरेका साथ और सेवा ही रहा है। यह सच है कि ऐसी शादियां मैंने इंग्लैण्डमें ही देखी हैं। मेरी अपनी मिसाल यहां बेमौका न गिनी जाय, तो मैं कहूंगा कि भरी जवानीमें विषय-भोगको छोड़नेके बाद ही हम जिन्दगीका सच्चा रस लूट सके। तभी हमारी जोड़ी सचमुच खिली और हम साथ मिलकर हिन्दुस्तानकी और इन्सानकी सच्ची सेवा कर सके। यह बात मैं'मेरे सत्यके प्रयोगों'में लिख चुका हूं। हमारा ब्रह्मचर्य अच्छी-से-अच्छी सेवा-भावनाओंसे पैदा हुआ था।

हजारों ब्याह तो आमतौर पर जैसे हुआ करते हैं, हुआ करेंगे। उनमें विषय-भोग पहली चीज रहेगी। अनगिनत लोग स्वादकी खातिर खाते हैं। इससे स्वाद इन्सानका धर्म नहीं बन जाता। थोड़े ही लोग ऐसे हैं कि जो जिन्दा रहनेके लिए खाते हैं। वे ही खानेका धर्म जानते हैं। इसी तरह थोड़े ही लोग औरत और मर्दके पवित्र रिश्तेका स्वाद लेनेके लिए, ईश्वरको पहचाननेके लिए शादी करते हैं। सच्ची शादीका धर्म तो वही पहचानते हैं और पालते हैं।

मालूम होता है कि तेन्दुलकर और इन्दुमतीके ब्याहके बारेमें पूरी बातें सवाल पूछनेवाले भाई नहीं जानते। उनके ब्याहकी प्रतिज्ञामें दोनों-की इच्छाकी बात थी। प्रतिज्ञा हिन्दुस्तानीमें लिखी गई थी। अखबार-वालोंने अपना ही अंग्रेजी तरजुमा छापा। इतनी बात पक्की है कि दोनों-की ब्रह्मचर्य पालनेकी इच्छा थी। वह शादी विषय-भोगकी खातिर नहीं थी। दोनों एक-दूसरेको बरसोंसे पहचानते थे। इन्दुमतीको घरके लोगोंकी इजाजत कड़ी कसौटीके बाद मिली थी। बादमें तेन्दुलकरकी कैद उनके

रास्तेमें आई। दोनोंके बड़ोंकी ख्वाहिश थी कि शादी आश्रममें हो तो अच्छा। इन्दुमतीको आश्रममें आसरा मिला था। वहां उसे तसल्ली मिली थी। मैंने माना था कि दोनोंमें खूब सेवाभाव है। मैं समझता हूं कि अभी भी ऐसा ही है। मैंने उनके लिए ब्रह्मचर्य स्वाभाविक चीज मानी थी।

यह सब होते हुए भा ब्रह्मचर्यमें ढोंगको जगह हो सकती है। इसमें कसूर ब्रह्मचर्यका नहीं, ढोंग का है। एक अंग्रेज कवि ने कहा है कि ढोंग अच्छे गुणोंकी तारीफ ह। जहां सच्चे सिक्केकी कीमत है, वहां झूठा सिक्का सच्चे सिक्केकी छायामें रहेगा ही। जहां अच्छे गुणोंकी कदर है वहां अच्छे गुणोंका दिखावा भी रहेगा। दिखावेके डरसे अच्छे गुणोंको छोड़ना, यह कैसी दुःख और हैरानीकी वात है।

पूना जाते हुए, रेलमें,

३०-६-४६

: १७ :

बहनोंकी दुविधा

सवाल—जब बदमाश लोग किसी औरतपर हमला करे तो उसे क्या करना चाहिए ? वह भाग जाय या हिंसासे उनका सामना करे ? यानी वह भाग जाने के लिए डोंगियां । हथियारोंसे अपना बचाव करनेको तैयार रहे ?

जवाब—इस सवालका मेरा जवाब बहुत सीधा-सादा है, क्योंकि मेरे खयालमें हिंसाकी कोई तैयारी नहीं हो सकती । अगर ऊंची-ऊंची किस्मकी हिम्मत बढ़ानी हो तो हमें अहिंसाके लिए ही सारी तैयारी करनी चाहिए। कायरताकी अपेक्षा हिंसाको हमेशा तरजीह देनेकी निगाहसे हिंसा बरदाश्त की जा सकती है । इसलिए मैं खतरेके समय भाग निकलनेके लिए डोंगियां तैयार न रक्खूंगा । अहिंसक आदमीके लिए खतरेका का कोई समय होता ही नहीं । उसे तो मौतकी खामोश और शानदार तैयारी करनी होती है । इसीलिए कहींसे कोई मदद न मिलनेपर भी अहिंसक औरत या मर्द हँसते-हँसते मौतका सामना करेगा, क्योंकि सच्ची मदद तो भगवानसे ही मिलती है । मैं इसके सिवा दूसरी कोई बात सिखा नहीं सकता और जो मैं सिखाता हूं उसीपर अमल करनेके लिए यहां आया हूं । मैं नहीं जानता कि ऐसा कोई अवसर मुझे कभी मिलेगा या दिया जायगा । जो औरतें गुंडोंके हमला करनेपर बिना हथियारके उनका सामना नहीं कर सकतीं उन्हें हथियार रखनेकी सलाह देनेकी जरूरत नहीं । वे तो वैसा करेंगी ही । हथियार रखने या न रखनेकी इस हमेशाकी पूछताछमें जरूर ही कोई-न-कोई दोष है। लोगोंको स्वाभाविक रूपसे आजाद रहना सीखना होगा । अगर वे मेरी इस खास नसीहतको याद रक्खें कि अहिंसासे ही सच्चा और कारगर मुकाबला किया जा सकता है तो वे इसीके अनुसार अपना व्यवहार बना लेंगे । और बिना सोचे-समझे ही क्यों न हो, मगर दुनिया यही तो करती रही है, क्योंकि दुनियाकी

हिम्मत ऊंचे-ऊंचे नमूनेकी, यानी अहिंसासे पैदा हुई हिम्मत नहीं है, इसलिए वह अपनेको अटम बमसे लैस रखनेकी हदतक पहुंची है। जो लोग उसमें हिंसाकी व्यर्थताको नहीं देख पाते, वे कुदरती तौरपर अपनेको अच्छेसे-अच्छे हथियारोंसे लैस रखे बिना न रहेंगे।

जबसे मैं दक्षिणी अफ्रीकासे लौटा हूं तभीसे हिन्दुस्तानमें अहिंसाकी सोची-समझी शिक्षा बराबर दी जाती रही है और उसका जो नतीजा निकला है, सो हम देख चुके हैं।

सवाल—क्या किसी औरतको गुंडोंके सामने झुकनेके बजाय आत्महत्या करनेकी सलाह दी जा सकती है?

जवाब—इस सवालका ठीक-ठीक जवाब देनेकी जरूरत है। नोआखलीके लिए रवाना होनेके पहले मैंने दिल्लीमें इसका जवाब दिया था। कोई औरत आत्म-समर्पण करनेके बजाय निश्चय ही आत्महत्या करना ज्यादा पसंद करेगी। दूसरे शब्दोंमें, जिन्दगीकी मेरी योजनामें आत्म-समर्पणकी कोई जगह नहीं। लेकिन मुझसे यह पूछा गया था कि आत्महत्या या खुदकुशी कैसे की जाय? मैंने तुरंत जवाब दिया कि आत्महत्याके साधन सुझाना मेरा काम नहीं। और, ऐसी हालतोंमें आत्महत्याकी स्वीकृति देनेके पीछे यह विश्वास था, और है कि जो आत्महत्या करनेके लिए तैयार हैं, उनमें ऐसे मानसिक विरोध और आत्माकी ऐसी पवित्रताके लिए वह जरूरी ताकत मौजूद है, जिसके सामने हमला करनेवाला अपने हथियार डाल देता है। मैं इस दलीलको आगे नहीं बढ़ा सकता, क्योंकि उसे आगे बढ़ानेकी गुंजाइश नहीं है। मैं कबूल करता हूं कि के इसके लिए जिस पक्के सबूतकी जरूरत है, वह मिल नहीं रहा।

सवाल—अगर अपनी जान देने और हमला करनेवालोंकी जान लेनेमें से किसी एकको चुननेका सवाल हो, तो आप क्या सलाह देंगे?

जवाब—जब अपनी जान देने या हमला करनेवालेकी जान लेनेमेंसे किसी एकको पसन्द करनेका सवाल हो तो बेशक, मैं पहली चीजको पसंद करूंगा।

पाल्ला, २७-१-४७

: १८ :

मैंने कैसे शुरू किया ?

'हरिजन' के लिए जीवनके शाश्वत भागोंपर चर्चा करना ठीक लगता है। उनमें एक ब्रह्मचर्य है। दुनिया मामूली चीजोंकी तरफ दौड़ती है। शाश्वत चीजोंके लिए उसके पास समय ही नहीं रहता। तो भी हम विचार करें तो देखेंगे कि दुनिया शाश्वत चीजोंपर ही निभती है।

ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं? जो हमें ब्रह्मकी तरफ ले जाय, वह ब्रह्मचर्य है। इसमें जननेन्द्रियका संयम आ जाता है। वह संयम मन, वाणी और कर्मसे होना चाहिए। अगर कोई मनसे भोग करे और वाणी व स्थूल कर्मपर काबू रखे तो यह ब्रह्मचर्यमें नहीं चलेगा। 'मन चंगा तो कठौतीमें गंगा'। मनपर पूरा काबू हो जाय, तो वाणी और कर्मका संयम बहुत आसान हो जाता है। मेरी कल्पनाका ब्रह्मचारी स्वाभाविक रूपसे स्वस्थ होगा, उसका सिरतक नहीं दुखेगा, वह स्वभावतः दीर्घजीवी होगा, उसकी बुद्धि तेज होगी, वह आलसी नहीं होगा, शारीरिक या बौद्धिक काम करनेमें थकेगा नहीं और उसकी बाहरी सुघड़ता सिर्फ दिखावा न होकर भीतरका प्रतिबिम्ब होगी। ऐसे ब्रह्मचारीमें स्थितप्रज्ञके सब लक्षण देखनेमें आवेंगे।

ऐसा ब्रह्मचारी हमें कहीं दिखाई न पड़े तो उसमें घबरानेकी कोई बात नहीं।

जो स्थिरवीर्य हैं, जो ऊर्ध्वरेता हैं, उनमें ऊपरके लक्षण देखनेमें आवें तो कौन बड़ी बात है? मनुष्यके इस वीर्यमें अपने जैसा जीव पैदा करनेकी ताकत है, उस वीर्यको ऊंचे ले जाना ऐसी-वैसी बात नहीं हो सकती। जिस वीर्यके एक बूंदमें इतनी ताकत है, उसके हजारों बंदोंकी ताकतका माप कौन लगा सकता है?

यहां एक जरूरी बातपर विचार कर लेना चाहिए । पातंजलि भगवानके पांच महाव्रतोंमेंसे किसी एकको लेकर उसकी साधना नहीं की जा सकती । यह हो सकता है कि सिर्फ सत्यके बारेमें ही, क्योंकि दूसरे चार तो सत्यमें छिपे हुए हैं, और इस युगके लिए तो पांचकी नहीं, ग्यारह व्रतोंकी जरूरत है । विनोबाने उन्हें मराठीमें सूत्ररूपमें रख दिया है ।

अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह ,
शरीरश्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन ।
सर्वधर्मी, समानत्व, स्वदेशी, स्पर्शभावना ,
हीं एकादश सेवावीं नम्रत्व व्रतनिश्चये ।

ये सब व्रत सत्यके पालनमेंसे निकाले जा सकते हैं । मगर जीवन इतना सरल नहीं । एक सिद्धांतमेंसे अनेक उपसिद्धांत निकाले जा सकते हैं । तो भी एक सबसे बड़े सिद्धान्तको समझनेके लिए अनेक उप-सिद्धान्त जानने पड़ते हैं ।

यह भी समझना चाहिए कि सब व्रत समान हैं । एक टूटा कि सब टूटे । हमें आदत पड़ गई है कि सत्य और अहिंसा व्रत-भंगको हम माफ कर सकते हैं । इन व्रतोंको तोड़नेवालेकी तरफ हम अंगुली नहीं उठाते । अस्तेय और अपरिग्रह क्या है, सो तो हम समझते ही नहीं । मगर माना हुआ ब्रह्मचर्यका व्रत टूटा तो तोड़नेवालेका बुरा हाल होता है । जिस समाजमें ऐसा होता है, उसमें कोई बड़ा दोष होना चाहिए । ब्रह्मचर्यका संकुचित अर्थ लेनेसे वह निस्तेज बनता है, उसका कुछ पालन नहीं होता, सच्ची कीमत नहीं आंकी जाती और दम्भ बढ़ता है । कम-से-कम इस व्रतका पूरा स्थूल पालन भी अशक्य नहीं तो बहुत कठिन होता ही है । इसलिए सब व्रतोंको एकसाथ लेना चाहिए । ऐसा हो तभी ब्रह्मचर्यकी व्याख्या सिद्ध की जा सकती है । आजकी भाषामें वही सच्चा ब्रह्मचारी है, जो एकादश व्रतका पालन मनसे, वाणीसे और कर्मसे करता है ।

नई दिल्ली,

२-६-४७

: १९ :

ब्रह्मचर्यकी रक्षा

मैंने पिछले हफ्ते जिस ब्रह्मचर्यकी चर्चा की थी, उसके लिए कैसी रक्षा होनी चाहिए? जवाब तो सीधा है। जिसे रक्षाकी जरूरत हो, वह ब्रह्मचर्य ही नहीं। मगर यह कहना आसान है। उसे समझना और उसपर अमल करना वहुत मुश्किल है।

इतना तो साफ है कि यह बात पूर्ण ब्रह्मचारीके लिए ही सच्ची है। लेकिन जो ब्रह्मचारी वननेकी कोशिश कर रहा है उसके लिए तो अनेक बन्धनोंकी जरूरत है। आमके छोटे पेड़को सुरक्षित रखनेके लिए उसके चारों तरफ बाड़ लगानी पड़ती है। छोटा बच्चा पहले मांकी गोदमें सोता है, फिर पालनेमें और फिर चालन-गाड़ी लेकर चलता है। जब बड़ा होकर खुद चलने-फिरने लगता है तब सब सहारा छोड़ देता है। न छोड़ तो उसे नुकसान होता है। ब्रह्मचर्यपर भी यही चीज लागू होती है।

ब्रह्मचर्य एकादश व्रतोंमेंसे एक व्रत है। यह पिछले हफ्ते मैं कह चुका हूं। इसपरसे यह कहा जा सकता है कि ब्रह्मचर्यकी मर्यादा या बाड़े एकादश व्रतोंका पालन है। मगर एकादश व्रतोंको कोई बाड़ न माने। बाड़ तो खास किसी हालतके लिए ही होती है। हालत बदली और बाड़ भी गई। मगर एकादशव्रतका पालन तो ब्रह्मचर्यका जरूरी हिस्सा है। उसके बिना ब्रह्मचर्य-पालन नहीं हो सकता।

आखिरमें ब्रह्मचर्य मनकी स्थिति है। बाहरी आचार या व्यवहार उसकी पहचान, उसकी निशानी है। जिस पुरुषके मनमें जरा भी विषय-वासना नहीं रही वह कभी विकारके वश नहीं होगा। वह किसी औरतको चाहे जिस हालतमें देखे, चाहे जिस रूप-रंगमें देखे, तो भी उसके मनमें विकार पैदा नहीं होगा। यही स्त्रीके बारेमें भी समझना चाहिए।

मगर जिसके मनमें विकार उठा ही करते हैं उसे तो सगी बहन या बेटी-को भी नहीं देखना चाहिए। मैंने अपने कुल मित्रोंको यह नियम पालने-की सलाह दी थी। और जिन्होंने इसका पालन किया है उन्हें फायदा हुआ है। अपने बारेमें मेरा यह तजरुबा है कि जिन चीजोंको देखकर दक्षिणी अफ्रीकामें मेरे मनमें कभी विकार पैदा नहीं हुआ था, उन्हींसे दक्षिण अफ्रीकासे वापस आनेपर मेरे मनमें विकार पैदा हुआ। और, उसे शान्त करनेमें मुझे काफी मेहतत करनी पड़ी।

यह बात सिर्फ जननेन्द्रियके बारेमें ही सच थी, ऐसा नहीं। इन्सानको शोभा न देनेवाले डरके बारेमें यही सच पड़ी और मैं शरमिन्दा हुआ। बचपनमें मैं स्वभावसे डरपोक था। दीयेके बिना मैं आरामसे सो नहीं सकता था। कमरेमें अकेले सोना अपनी बहादुरीकी निशानी समझता था। मुझे पता नहीं कि आज अगर मैं रास्ता भूल जाऊं शौर काली रातमें घने जंगलमें भटकना होऊं तो मेरी क्या हालत हो? मेरा राम मेरे पास है, यह ख्याल भी उस वक्त भूल जाऊं तो? अगर बचपनका डर मेरे मनमें से बिलकुल निकल न गया हो यो मैं मानता हूं कि निर्जन जंगलमें निडर रहना जननेन्द्रियके संयमसे भी ज्यादा मुश्किल है। जिसकी यह हालत है, वह मेरी व्याख्याका ब्रह्मचारी तो नहीं गिना जायगा।

ब्रह्मचर्यकी जो मर्यादा हम लोगोंमें मानी जाती है उसके मुताबिक ब्रह्मचारीको स्त्रियों, पशुओं और नपुंसकोंके बीच नहीं रहना चाहिए। ब्रह्मचारी अकेली स्त्री या स्त्रियोंकी टोलीको उपदेश न करे। स्त्रियोंके साथ, एक आसनपर न बैठे। स्त्रियोंके शरीरका कोई हिस्सा न देखे। दूध, दही, घी वगैरा चिकनी चीजें न खाये। स्नान-लेपन न करे। यह सब मैंने दक्षिण अफ्रीकामें पढ़ा था। वहां जननेन्द्रियका संयम करनेवाले पश्चिम-के स्त्री-पुरुषोंके बीचमें रहता था। मैं उन्हें इन सब मर्यादाओंको तोड़ते देखता था। खूद भी उनका पालन नहीं करता था। यहां आकर भी न कर सका। दूध, दही वगैरा मैं हठपूर्वक छोड़ता था। उसका कारण दूसरा था। इसमें मैं हारा। अभी भी अगर मुझे कोई ऐसी वनस्पति मिल जाय जो दूध-घीकी जरूरत पूरी कर सके तो मैं फौरन दूध वगैरह प्राणिज चीजें

छोड़ दूं और मेरी खुशीका पार न रहे। मगर यह तो दूसरी बात हुई।

ब्रह्मचारी कभी निर्वीर्य नहीं होता। वह रोज वीर्य पैदा करता है और उसे इकट्ठा करके रोज-रोज बढ़ाता जाता है। उसे कभी बुढ़ापा नहीं आता। उसकी बुद्धि कभी कुंठित नहीं होती।

मुझे लगता है कि जो ब्रह्मचारी बननेकी सच्ची कोशिश कर रहा है, उसे भी ऊपर बताई हुई मर्यादाओंकी जरूरत नहीं है। ब्रह्मचर्य जबरदस्तीसे यानी मनसे विरुद्ध जाकर पालनेकी चीज नहीं। वह जबरदस्तीसे नहीं पाला जा सकता। यहां तो मनको वशमें करनेकी बात है। जो जरूरत पड़नेपर भी स्त्रीको छूनेसे भागता है, वह ब्रह्मचारी बननेकी कोशिश ही नहीं करता।

इस लेखका मतलब यह नहीं कि लोग मनमानी करें। इसमें तो सच्चा संयम पालनेकी बात बताई गई है। दंभ या ढोंगके लिए यहां कोई जगह हो ही नहीं सकती।

जो छुपे तौरसे विषय-सेवन के लिए इस लेखका इस्तेमाल करेगा, वह दंभी और पापी ही गिना जायगा।

ब्रह्मचारीको नकली बाड़ोंसे भागना चाहिए। उसे अपने लिए अपनी मर्यादा बना लेनी है। जब उसकी जरूरत न रहे तब उसे तोड़ देना चाहिए। इस लेखका उद्देश्य तो यह है कि हम सच्चे ब्रह्मचर्यको पहचानें। उसकी कीमत जान लें और ऐसे कीमती ब्रह्मचर्यका पालन करें। इसमें देशसेवाका सच्चा ज्ञान रहा है। इससे देशसेवा करनेकी शक्ति भी बढ़ती है।

नई दिल्ली,

८-६-४७

: २० :

ईश्वर कहाँ है और कौन है ?

ब्रह्मचर्य क्या है, यह बताते हुए मैंने लिखा था कि ब्रह्म यानी ईश्वर तक पहुंचनेका जो आचार होना चाहिए, वह ब्रह्मचर्य है। लेकिन इतना जान लेनेसे ईश्वरके रूपका पता नहीं चलता। अगर उसका ठीक पता चल जाय, तो हम ईश्वरकी तरफ जानेका ठीक रास्ता भी जान सकते हैं। ईश्वर मनुष्य नहीं है। इसलिए वह किसी मनुष्यमें उतरता है या अवतार लेता है, ऐसा कहें तो यह निरा सत्य नहीं है। एक तरहसे ईश्वर किसी खास मनुष्यमें उतरता है, ऐसा कहनेका मतलब सिर्फ इतना ही हो सकता है कि वह मनुंष्य ईश्वरके ज्यादा निकट है। उसमें हमें ज्यादा ईश्वरपन दिखाई देता । ईश्वर तो सब जगह विद्यमान है। वह सबमें मौजूद है, इसलिए हम सब ईश्वरके अवतार हैं। मगर ऐसा कहनेसे कोई मतलब हल नहीं होता। राम, कृष्ण इत्यादिको हम अवतार कहते हैं, क्योंकि उनमें लोगोंने ईश्वरके गुण देखे। आखिर तो राम, कृष्ण आदि मनुष्यके कल्पना-जगतमें बसते हैं, और उसके कल्पित चित्र ही हैं। इतिहासमें ऐसे लोग हो गए या नहीं, इसके साथ इन कल्पनाकी तस्वीरोंका कोई संबंध नहीं। कई बार हम इतिहासके राम और कृष्णको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मुश्किलोंमें पड़ जाते हैं और हमें कई तरहके तर्कोंका सहारा लेना पड़ता है।

सच बात तो यह है कि ईश्वर एक शक्ति है, तत्त्व है, शुद्ध चैतन्य है, सब जगह मौजूद है। मगर हैरानीकी बात यह है कि ऐसा होते हुए भी सबको उसका सहारा या फायदा नहीं मिलता, या यों कहें कि सब उसका सहारा पा नहीं सकते।

बिजली एक बड़ी शक्ति है। मगर सब उससे फायदा नहीं उठा सकते। उसे पैदा करनेका अटल कानून है। उसके अनुसार काम किया जाय तभी

बिजली पैदा की जा सकती है। बिजली जड़ है, बेजान चीज़ है। उसके इस्तेमालका क़ायदा चेतन मनुष्य मेहनत करके जान सकता है। जिस चेतनामय बड़ी भारी शक्तिको हम ईश्वर कहते हैं, उसके प्रयोगका भी नियम तो है ही। लेकिन यह चीज़ बिलकुल साफ़ है कि उस नियमको ढूंढ़नेके लिए बहुत ज़्यादा परिश्रमकी जरूरत है। उस नियमका नाम है ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्यको पालनेका सीधा रास्ता रामनाम है। यह मैं अपने अनुभवसे कह सकता हूं। तुलसीदास-जैसे भक्त ऋषि-मुनियोंने वह रास्ता बताया ही है। मेरे अनुभवका कोई ज़रूरतसे ज्यादा मतलब न निकाले। रामनाम सब जगह मौजूद रहनेवाली रामबाण दवा है, यह शायद मैंने पहले-पहल उरुल्लीकांचनमें ही साफ़-साफ़ जाना था। जो उसका पूरा इस्तेमाल जानता है, उसे जगतमें कम-से-कम बाहरी काम करना पड़ता है। फिर भी उसका काम बड़े-से-बड़ा होता है।

इस तरह विचार करते हुए मैं कह सकता हूं कि ब्रह्मचर्यकी रक्षाके जो नियम माने जाते हैं, वे तो खेल ही हैं। सच्ची और अमर-रक्षा तो रामनाम ही है। राम जब जीवसे उतरकर हृदयमें बढ़ जाता है, तभी उसका चमत्कार पूरा दिखाई देता है। यह अचूक साधन पानेके लिए एकादशव्रत तो हैं ही। मगर कभी साधन ऐसे होते हैं कि उनमेंसे कौनसा साधन और कौनसा साध्य है, यह फ़र्क़ करना मुश्किल हो जाता है। एकादश व्रतोंमेंसे सत्यको ही लें, तो पूछा जा सकता है कि क्या सत्य साधन है और रामनाम साध्य ? या, राम साधन है और सत्य साध्य ?

मगर मैं सीधी बात पर आऊं। ब्रह्मचर्यका आज माना हुआ अर्थ लें तो वह यह है कि जननेन्द्रिय पर क़ाबू पाना। इस संयमका सुनहला रास्ता और उसकी अमर-रक्षा रामनाम है। इस रामनामको सिद्ध करनेके क़ायदे या नियम तो हैं ही।

नई दिल्ली,
१४-६-४७

: २१ :

नाम-साधनाकी निशानियाँ

रामनाम जिसके हृदयसे निकलता है, उसकी पहचान क्या है ? अगर हम इतना न समझ लें, तो रामनामकी फजीहत हो सकती है। वैसे भी होती तो है ही। माला पहनकर और तिलक लगाकर रामनाम बड़बड़ाने वाले बहुत मिलते हैं। कहीं मैं उनकी संख्याको बढ़ा तो नहीं रहा हूं ? यह डर ऐसा-वैसा नहीं है। आजकलके मिथ्याचारमें क्या करना चाहिए ? क्या चुप रहना ही ठीक नहीं ? हो सकता है। लेकिन बनावटी चुपसे कोई फायदा नहीं। जीते-जागते मौनके लिए तो बड़ी भारी साधना-की जरूरत है। उसकी अनुपस्थितिमें हृदयगत रामनामकी पहचान क्या ? इस पर हम विचार करें।

एक वाक्यमें कहा जाय तो रामके भक्त और गीताके स्थितप्रज्ञमें कोई भेद नहीं। ज़्यादा गहरे उतरें तो हम देखेंगे कि रामभक्त पंचमहाभूतों-का सेवक होगा। वह प्रकृतिके क़ानूनपर चलेगा। इसलिए इसे किसी तरह-की बीमारी होगी ही नहीं। होगी भी तो वह उसे पंच महाव्रतोंकी मददसे अच्छा कर लेगा। किसी भी उपायसे भौतिक दुःख दूर कर लेना आत्माका काम नहीं, शरीरका भले ही हो। इसलिए जो शरीरको ही आत्मा मानते हैं, जिनकी दृष्टिमें शरीरसे अलग शरीरधारी आत्मा जैसा कोई तत्त्व नहीं, वे तो शरीरको टिकाये रखने के लिए सारी दुनियामें भटकेंगे, लंका जायेंगे। इससे उल्टे जो यह मानता है कि आत्मा देहमें रहते हुए भी देहसे अलग है, हमेशा स्थिर रहनेवाला तत्त्व है। अनित्य शरीरमें बसता है, शरीरकी संभाल तो रखता है, पर शरीरके जानेसे घबराता नहीं, दुःखी नहीं होता और सहज ही उसे छोड़ देता है, वह देहधारी डाक्टर-वैद्योंके पीछे नहीं भटकता। वह खुद ही अपना डाक्टर बन जाता है। सब काम करते हुए भी वह आत्माका ही खयाल रखता है। वह मूर्च्छामेंसे जागे हुए की तरह बर्ताव करता है।

ऐसा इन्सान हर सांसके साथ रामनाम जपता रहता है। वह सोता है, तो भी उसका राम जागता है। खाते-पीते कुछ भी काम करते हुए राम तो उसके साथ ही रहेगा। इस साथीका खो जाना ही इन्सानकी सच्ची मृत्यु है। इस रामको अपने पास रखनेके लिए या अपने-आपको रामके पास रखनेके लिए वह पंचमहाभूतोंकी मदद लेकर संतोष मानेगा, यानी वह मिट्टी, हवा, पानी, सूरजकी रोशनी और आकाशका सहज और साफ़ और व्यवस्थित तरीकेसे इस्तेमाल करके जो पा सकेगा, उसमें सन्तोष मानेगा। यह उपयोग रामनामका पूरक नहीं; पर रामनामकी साधना-की निशानी है। रामनामको इन मददगारोंकी जरूरत नहीं। लेकिन इसके बदले जो एकके बाद दूसरे वैद्य-हकीमोंके पीछे दौड़े और रामनामका दावा करे, उसकी बात कुछ जंचती नहीं।

एक ज्ञानीने तो मेरी बात पढ़कर यह लिखा कि रामनाम ऐसा कीमिया है कि जो शरीरको बदल डालता है। वीर्यको इक़ट्ठा करना दबाकर रक्खे हुए धनके समान है। उसमेंसे अमोघ शक्ति पैदा करने-वाला तो रामनाम ही है। खाली संग्रह करनेसे तो घबराहट होती है। किसी भी समय उसका पतन हो सकता है। लेकिन जब रामनामके स्पर्शसे वह वीर्य गतिवान होता है, ऊर्ध्वगामी बनता है, तब उसका पतन असभव हो जाता है।

शरीरके पोषणके लिए शुद्ध खून जरूरी है। आत्माके पोषणके लिए शुद्ध वीर्य-शक्तिकी जरूरत है। इसे दिव्यशक्ति कह सकते हैं। यह शक्ति सारी इन्द्रियोंकी शिथिलताको मिटा सकती है। इसलिए कहा है कि रामनाम हृदयमें बैठ जाय, तो नई जिन्दगी शुरू होती है। यह कानून जवान, बूढ़े, मर्द, औरत सबपर लागू होता है।

पश्चिममें भी यह खयाल पाया जाता है। 'क्रिश्चियन साइन्स' नामका संप्रदाय बिलकुल यही नहीं तो क़रीब-क़रीब इसी तरहकी बात करता है।

मैं मानता हूं कि हिन्दुस्तानको ऐसे सहारेकी जरूरत नहीं, क्योंकि हिन्दुस्तानमें तो यह दिव्य विद्या पुराने जमानेसे ही चली आ रही है।

हरिद्वार, २१-६-४७

: २२ :

एक उलझन

विलायतमें अच्छी तरह शिक्षा पाये हुए एक हिन्दुस्तानी भाईके वहां से लिखे पत्रमेंसे कुछ हिस्सा नीचे देता हूं :

"स्त्री और पुरुषके संबंधोंके बारेमें मेरे मनकी हालत कुछ विचित्र-सी है। मैंने आपको लिखा ही है कि कुछ बन्धन और मर्यादाएं मैं रखने ही वाला हूं और रखी भी हैं। लेकिन जब सोचता हूं तो अपनी हालत मुझे त्रिशंकु जैसी दिखाई देती है। एक तरफ़से लगता है कि स्त्री-पुरुषके संबंधको ज्यादा कुदरती बनानेसे बुराई और पापाचार कम होगा। दूसरी तरफसे लगता है कि एक-दूसरेको छूनेसे बुराई पैदा हुए बिना रह नहीं सकती। यहांकी अदालतोंमें जब भाई-बहन और बाप-बेटीके बारेमें मुकद्दमे आते हैं, तब भी ऐसा लगता है कि उन लोगोंने एक-दूसरेका स्पर्श जब शुरू किया, तब उसमें दोष नहीं था। मुझे लगता है कि स्पर्श-सुखकी वजहसे आदमी बदमाश हो, तो एक महीने या एक हफ्तेमें और भला हो तो धीरे-धीरे १० बरसमें भी पापकी तरफ झुके बिना नहीं रह सकता। छुटपनमें जो तालीम पाई है उस परसे जो विचार बन गए हैं और आजकलके विचारोंकी किताबें पढ़नेसे जो विचार आते हैं, उन दोनोंमें हमेशा झगड़ा चला करता है। यह भी खयाल आता है कि स्पर्श-मात्र छोड़ देनेसे क्या काम चल सकेगा? मैं अभी तक किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाया हूं। लेकिन थोड़ेमें मेरी यही स्थिति है।"

बहुतेरे नौजवान लड़के-लड़कियोंकी यही हालत होती है। उनके लिए सीधा रास्ता यही है : उन्हें स्पर्श मात्रका त्याग करना ही चाहिए। किताबोंमें लिखी हुई मर्यादाएं उस समयमें होनेवाले अनुभवसे बनाई गई हैं। लेखकोंके लिए वे जरूरी भी थीं। साधकको अपने लिए उनमेंसे

कुछ मर्यादाएं या दूसरी कुछ नई मर्यादाएं बना लेनी होंगी । अंतिम मंजिल-को बीचमें रखकर उसके आसपास एक दायरा खींचें तो मंजिल तक पहुंच-नेके कई रास्ते दिखाई देंगे । उनमेंसे जिसे जो आसान मालूम हो उस पर चले और मंजिल पर पहुंचे ।

जिस साधकको अपने-आप पर भरोसा नहीं वह अगर दूसरोंकी नकल करने लगे तो जरूर ठोकर खायगा ।

इतना सावधान करनेके बाद मैं कहूंगा कि इंगलैंडकी अदालतोंमें चलनेवाले मुकद्दमोंमें से या उपन्यास पढ़कर ब्रह्मचर्यका रास्ता खोजना आकाश-कुसुम लाने जैसी बेकार कोशिश है । सच्चा इंगलैंड वहांकी अदालतोंमें या उपन्यासमें नहीं । इन दोनोंका अपनी-अपनी जगह भले ही कुछ उपयोग हो मगर ब्रह्मचर्यकी साधना करनेवालोंको इन दोनोंको छूना भी नहीं चाहिए ।

इंगलैंडके बड़े-बड़े साधकोंके दिलमें यह पत्र लिखनेवाले भाईकी तरह उलझनें नहीं पैदा होतीं, क्योंकि वे सब यह जानते हैं कि उनका राम उनके दिलमें बसता है । वे न अपने-आपको धोखा देते हैं और न दूसरोंको । उनकी बहन उनके लिए बहन ही है और मां मां है । ऐसे साधकके लिए सारी स्त्रियां बहन या मां हैं । उसे कभी यह खयाल भी नहीं आता कि स्पर्श-मात्र बुरा है । उसमेंसे दोष पैदा होनेका डर नहीं रहता । वह सारी स्त्रियोंमें उसी भगवानको देखता है, जिसे वह अपनेमें पाता है ।

ऐसे लोग हमने नहीं देखे, इसलिए यह मानना कि वे हो ही नहीं सकते, घमंडकी निशानी है । इससे ब्रह्मचर्यकी महिमा घटती है । ईश्वरको हमने नहीं देखा या ईश्वरको जिसने देखा, ऐसा कोई आदमी हमें नहीं मिला है । इसलिए ईश्वर है ही नहीं यह माननेमें जितनी भूल है, उतनी ही ब्रह्मचर्यकी ताकतको अपने नापसे नापनेमें रही है ।

नई दिल्ली,
२६-६-४७

: २३ :

पुराने विचारोंका बचाव

कुछ दिन पहले मैंने एक पत्रका कुछ हिस्सा 'हरिजन सेवक' में दिया था। उस परसे पत्र लिखनेवाले भाई लिखते हैं :

"मेरे ग्यारह साल पहलेके लिखे हुए खतपर आपने जो विचार बताये हैं, उनमेंसे मैं पूरी तरह सहमत हूं। मगर उनपर चलनेकी हिम्मत मुझमें कम है। मनमें आता है कि सांपकी बांबीमें हाथ डाला ही क्यों जाय ? आप आदर्श पुरुषकी कल्पना जगतके सामने रखें, तो भी लोक-संग्रहकी दृष्टिसे यह अच्छा होगा कि आप लोगोंको मर्यादा और बन्धन रखनेकी सलाह दें। यह ज्यादा रक्षा होगी। स्त्री-पुरुषका भेद माननेकी जरूरत नहीं। यह स्त्री 'मेरी है' यह भाव मनसे निकाल देने चाहिएं। बिलकुल सात्विक भूमिकाका ही प्रचार करके हिन्दुस्तानकी कम्युनिस्ट पार्टीने अनजानमें हमारे समाजको जो नुकसान पहुंचाया है, वह सचमुच भयानक है। श्री किशोरलाल भाई तो यहांतक कहते हैं कि स्त्रीके साथ एक चटाई पर भी न बैठना चाहिए। इसमें उनका पुराण-पंथीपन दीखता हो तो भी उनकी बात सोचने लायक है।

" 'यद्यदाचरते श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः'—गीताकी यह चेतावनी भूली नहीं जा सकती। ऊंचे दरजेको पहुंचे हुए लोगोंको यह डर मनमें रखना चाहिए कि मामूली शक्तिवाले बिना समझे उनकी सिर्फ नकल ही करेंगे। इसलिए बंधन रखकर अपने दरजेसे नीचेका ही आचरण करना चाहिए। मुझे लगता है, इसीमें समाजका भला है। हां, एक सचोट दलील आपके पक्षमें है। वह यह कि ऊंचे दरजे तक पहुंच सकनेकी मिसाल जगतके सामने रखनेवाला कोई न हो, तो समाजकी श्रद्धाका लोप हो जाय। इन्सानके भीतर रहनेवाली भगवानकी ज्योति किसीको तो बतानी ही होगी। इसके

जवाबमें मैं इतना ही कहूंगा कि इस चीजका फैसला जमाखर्चका हिसाब निकालकर बड़ोंको खुद करना होगा।"

यह टीका मुझे अच्छी लगती है। सबको अपनी कमजोरी पहचाननी चाहिए। जान-बूझकर उसे जो छिपाता है और बलवानकी नकल करने जाता है वह ठोकर खायगा ही। इसलिए मैंने तो कहा है कि हरेकको अपनी मर्यादा खुद बांधनी चाहिए। मुझे नहीं लगता कि किशोरलाल-भाई जिस चटाई पर स्त्री बैठी हो, उसपर बैठनेसे इन्कार करेंगे। ऐसा हो तो मुझे ताज्जुब होगा। मैं तो ऐसी मर्यादाको समझ नहीं सकता। मैंने उनके मुंहसे ऐसा कभी नहीं सुना।

स्त्रीकी निर्दोष संगतिकी तुलना सांपके बिलसे करना मैं तो अज्ञान ही मानता हूं। इसमें स्त्री-जातिका और पुरुषका अपमान है। क्या जवान लड़का अपनी मांके पास नहीं बैठेगा? बहनके पास नहीं बैठेगा? रेलमें उसके साथ एक पटरी पर नहीं बैठेगा? ऐसे संगसे भी जिसका मन चंचल होता हो, उसकी हालत कितनी दयाजनक मानी जायगी?

यह मैं मानता हूं कि लोक-संग्रहके लिए बहुत-कुछ छोड़ना चाहिए। मगर इसमें भी समझसे काम लेना होगा। यूरोपमें नंगोंका एक संघ है। उन्होंने मुझे इसमें खींचनेकी कोशिश की। मैंने साफ इन्कार कर दिया और कहा:

'लोग इस तरहकी बात सहन नहीं कर सकते। जबतक उसके लए जरूरी पवित्रता न हो तबतक ऐसी नुमायश नहीं की जा सकती।' तात्त्विक दृष्टिसे मैं यह मानता हूं कि स्त्री-पुरुष बिलकुल नंगे हों, तो भी उससे कुछ नुकसान न होना चाहिए। आदम और हौवा अपने निर्दोष जमानेमें नंगे ही घूमते थे। जब उन्हें अपने नंगेपनका ज्ञान हुआ, तब उन्होंने अपने अंग कने शुरू किये और वे स्वर्गसे निकाल दिये गए। हम गिरे हुए हैं। इसे भूलकर चलेंगे तो नुकसान ही होगा। नंगोंकी मसालको मैं लोक-संग्रहकी आवश्यकतामें गिनूंगा।

मगर लोक-संग्रह की दलील देकर मुझपर दबाव डाला गया कि मैं छुआछूत मिटानेकी बात छोड़ दूं। लोक-संग्रहकी दृष्टिसे नौ बरसकी लड़की-

की शादी करनेका रिवाज चालू रखनेकी बात कही गई है। लोक-संग्रह-की खातिर दरियापार जानेसे रोका जाता था। ऐसी और भी कई मिसालें दी जा सकती हैं। मगर घरके कुएंमें हम तैरें, डूब न मरें।

बन्धन ऐसे तो नहीं होने चाहिएं कि जिससे स्त्री-पुरुषका भेद हम भूल ही न सकें। हमें याद रखना चाहिए कि हमारे अनेक कामोंमें इस फर्कके लिए कोई जगह नहीं है। दरअसल इस भेदको याद करनेका मौका एक ही होता है, वह तब जब काम सवारी करता है। जिन स्त्री-पुरुषों पर सारे दिन ही काम सवार रहता है, उनके मन सड़े हुए हैं। मैं मानता हूं कि ऐसे लोग लोक-कल्याण नहीं कर सकते। इन्सानकी हालत आमतौर पर ऐसी नहीं होती। करोड़ों देहाती अगर सारे दिन इसी चीजका खयाल किया करें, तो वे किसी भी शुभ कामके लायक नहीं रह सकते।

नई दिल्ली,
१३-७-४७

: २४ :

मुश्किल को समझना

पिछले दिनोंके मेरे भाषणोंको पढ़कर, जिनसे हिन्दुस्तानकी पिछली घटनाओंके कारण मुझे होनेवाले दुःखका आभास मिलता है, एक अंग्रेज बहन लिखती हैं :

"क्या इस गहरे दुःख, इन्सानके नरककी ओर लगातार बढ़ते जाने और वातावरणमें निराशाकी भावनाके फैलनेका यह मतलब है कि आपको १२५ बरससे भी ज्यादा अरसे तक जीना चाहिए ? मर जाना कितनी आसान बात है।...इन्सान रात-दिन नरककी तकलीफ महसूस करता है।..."

मैं जानता हूं कि यह बहन मजाकके बतौर मुझसे यह उम्मीद नहीं करतीं कि मुझे १२५ बरससे ज्यादा जीना चाहिए। वे भगवानमें जबरदस्त भरोसा रखनेवाली एक बहादुर महिला हैं। जितने दिनों जीना मेरे भागमें बदा है, उसमें एक दिन भी बढ़ा लेनेका सवाल मेरे साथ नहीं है। एक भाग्यवादीके नाते मैं तो मानता हूं कि भगवानकी इच्छाके बिना एक तिनका भी नहीं हिलता। अभी तक मैंने जो कुछ किया है और आगे भी करना चाहूंगा, वह यह है कि मैं १२५ बरसकी जिन्दगी चाहता हूं, बशर्ते कि वह जिन्दगी इन्सानकी ज्यादा-से-ज्यादा सेवा करनेमें लगे। मगर जबतक ऐसी इच्छाके साथ उसके अनुरूप जरूरी और सही आचरण न किया जाय, तबतक इससे कोई फायदा नहीं। गीतामें अर्जुनके सवाल पूछनेपर भगवान कृष्णने 'स्थितप्रज्ञ' का जो वर्णन किया है, उसका सर एडविन आरनाल्डने अंग्रेजी में तरजुमा किया है। वह वर्णन यों हैं :

'अर्जुन—हे केशव, जिसकी बुद्धि स्थिर हो चुकी है और जो भगवानके ध्यानमें लीन है, उसका क्या लक्षण है ? वह कैसे बोलता है, कैसे चलता ? कैसे बैठता या रहता है ?

'कृष्ण—हे अर्जुन, जब कोई मनुष्य अपने मनमें भरी हुई सारी वासनाओंको छोड़ देता है और अपनी आत्माके लिए आत्मामें ही पूरा सन्तोष पा जाता है, तो उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

'जो दुःख पानेसे घबराता नहीं और सुखकी इच्छा नहीं करता, काम, भय और क्रोध जिसके नष्ट हो गए हैं, उसे मुनि, साधु या स्थितधी कहते हैं।

'सब विषयोंसे जिसका मन हट गया है और भला-बुरा कुछ भी हुआ हो, उससे जिसे न खुशी है न दुःख है, ऐसा आदमी स्थिर बुद्धिवाला होता है।

'जैसे कछुआ अपने चारों पांव सिकोड़ लेता है, इसी तरह जो मनुष्य अपनी इन्द्रियोंको विषय-भोगसे खींचकर अपने काबूमें कर लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

'इन्द्रियोंको विषयोंसे अलग रखनेपर वे विषय तो नष्ट हो जाते हैं, मगर उनकी वासना बनी रहती है। वह भी ब्रह्मके दर्शन होनेपर नष्ट हो जाती है।

'हे अर्जुन, बुद्धिमान आदमीके अपनी इन्द्रियोंको दबानेकी कोशिश करते हुए भी ये बलवान इन्द्रियां जबरन उसका मन अपनी तरफ खींच लेती हैं।

'इसलिए मनुष्यको उन्हें वशमें करके अपना मन पूरी तरह मुझमें लगाना चाहिए, क्योंकि जिस पुरुषकी इन्द्रियां उसके वशमें होती हैं, उसकी ही बुद्धि स्थिर होती है।

'इन्द्रियोंके विषयोंका ध्यान करते-करते उनमें प्रीति पैदा हो जाती है, उस प्रीतिसे इच्छाको जोर मिलता है। जब इच्छा पूरी नहीं होती तो गुस्सा आने लगता है और गुस्सेसे सम्मोह यानी बेवकूफी पैदा होती है, बेवकूफीसे स्मरणशक्ति घट जाती है। इसके घटनेसे बुद्धिका नाश होता है शौर जब बुद्धिका नाश हो जाता है तो ऐसा व्यक्ति पूरी तरह बरबाद हो जाता है।

'मगर प्रीति और द्वेष छोड़कर जिसने अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें कर लिया है उसके विषय-सेवन करनेपर भी उसे शान्ति ही मिलती है।

'मनके प्रसन्न होने से सब दुःखोंका नाश हो जाता है और प्रसन्न मन-वालेकी बुद्धि जल्दी ही स्थिर होती है ।

'जिसका मन अपने वशमें नहीं है, उसे आत्मज्ञान नहीं होता और जिसे आत्मज्ञान नहीं, उसे शान्ति नहीं मिलती और जिसे शान्ति नहीं मिली, उसे सुख कैसे मिलेगा ?

'जिसका मन इन्द्रियोंकी इच्छानुसार चलता है, उसकी बुद्धिको मन उसी तरह नष्ट कर देता है, जिस तरह समुद्रमें पड़ी हुई नावको तूफान नष्ट कर देता है ।

'इसलिए, हे अर्जुन, जो आदमी अपनी इन्द्रियोंको उनके विषयों से सब तरह खींचकर उन्हें अपने वशमें कर लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर होती है ।

'अज्ञानी लोगोंके लिए जो रात है, उसमें योगी पुरुष जागता है और जिस अज्ञानरूपी अंधेरेमें, सब प्राणी जागते हैं उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

'अज्ञानी लोगोंके लिए जो रात है, उसमें योगी पुरुष जागता है और जिस अज्ञानरूपी अंधेरेमें सब प्राणी जागते हैं, उसे योगी पुरुष रात समझता है ।

'जैसे लबालब भरे हुए समुद्रमें कई नदियां मिलती हैं, पर उसे अशान्त नहीं कर पातीं, उसी तरह जिस स्थिर बुद्धिवाले पुरुषमें सारे भोग किसी प्रकारका विकार पैदा किये बिना समा जाते हैं उसे ही पूरी शान्ति मिलती है, न कि भोगोंकी इच्छा रखनेवालेको ।

'जो व्यक्ति सारी कामनाओंको छोड़कर, ममता और अहंकारको दिलसे हटाकर और इच्छा-रहित होकर बरतता है, उसे शान्ति मिलती है ।

'हे अर्जुन, इस हालतको 'ब्राह्मीस्थिति' कहते हैं । उसके मिल जानेके बाद आदमी फिर मोह में नहीं पड़ता । और अगर इस हालतमें रहते हुए वह मर जाय, तो 'ब्रह्मनिर्वाण' पाता है ।'

मैं स्वीकार करता हूँ कि इस स्थितिको पहुंचनेकी कोशिश करने पर भी मैं अभी उससे बहुत दूर हूं । मैं अनुभव करता हूं कि जब हमारे आसपास इतना तूफान मचा हुआ है, तब उस स्थितिको प्राप्त करना कितना कठिन है !

इसा पत्रमें वह बहन लिखती हैं :

"खुशीकी बात सिर्फ इतनी ही है कि इन्सान चाहे थोड़े ही क्यों न हों ईश्वरसे अलग रहने में अपनी स्वाभाविक कमजोरीको समझ गये हैं।"

इन बहनके पत्रके प्रारंभमें यह आदर्श वाक्य लिखा हुआ है :

"जा दिल नन्हे बच्चोंकी तरह इतने पवित्र हैं कि वे किसीसे दुश्मनी कर ही नहीं सकते, उन्हींमें इन्सानको आजाद करानेके उपाय भरे रहते हैं।"

यह बात कितनी सच है और साथ ही कितनी मुश्किल है ! !

नई दिल्ली,
२२-७-४७

: २५ :

एक विद्यार्थीकी उलझन

एक विद्यार्थीने अपने शिक्षकको एक पत्र लिखा था। उसका नीचेका हिस्सा शिक्षकने मेरी राय जाननेके लिए मेरे पास भेजा है। विद्यार्थीका पत्र अंग्रेजीमें है। उसकी मातृभाषा क्या होगी, यह मैं नहीं जानता।

"मुझे दो बातोंने घेर लिया है : एक तरफसे मेरे देश-प्रेमने और दूसरी तरफसे तेज विषय-वासनाने। इससे मुझमें विरोधी भावनाएं पैदा होती हैं और मेरे निर्णय हिल जाते हैं। मुझे अपने देशका पहले नम्बरका सेवक बनना है। लेकिन साथ ही मुझे दुनियाका आनंद भी लेना है। मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि ईश्वर में मेरी श्रद्धा नहीं है, हालांकि कितनी ही बार मुझे ईश्वरका डर मालूम होता है। सच पूछा जाय तो सारा जीवन ही एक समस्या है। मैं क्या जानूं कि इस जीवनके बाद मेरा क्या होनेवाला है ? मैंने बहुत-सी जलती चिताएं देखी हैं। आखिरी चिता मैंने अपनी मान ली है। जलती चिताके दृश्यने मुझपर भयंकर असर पैदा किया। क्या मेरे भी ऐसे ही हाल होंगे ? यह विचार भी मैं सहन नहीं कर सकता। किसी घायल को देखता हूं तो मेरे सिरमें चक्कर आने लगता है। बादमें मेरी कल्पना काम करने लगती है और कहती है कि तेरे शरीरका भी किसी दिन यही हाल होगा। मैं जानता हूं कि किसी शरीरको इस हालतमें से मुक्ति नहीं मिलती। साथ ही, ऐसा लगता है कि मौतके बाद जीवन नहीं है, और इसलिए मुझे मौतका डर लगता है।

"इस हालतमें मेरे पास सिर्फ दो ही रास्ते हैं। या तो मैं इस उलझन में फंसकर जलता रहूं या दुनियाके ऐश-आराममें लिपट कर दूसरी बातोंका खयाल तक न करूं। दूसरे किसीके सामने मैंने यह बात कबूल

नहीं की, लेकिन आपके सामने कबूल करता हूं कि मैंने तो दुनियाका आनंद लूटनेका रास्ता ही पकड़ा है।

"यह दुनिया ही सच्ची है और किसी भी कीमत पर उसका आनंद लूटना ही है। मेरी पत्नी अभी-अभी मरी है। मेरे मनमें उसके लिए प्रेम था। लेकिन मैं देखता हूं कि उस प्रेमकी जड़में उसका मरना नहीं था, बल्कि मेरा यह स्वार्थ था कि उसके मरनेसे मैं अकेला रह गया। मरनेके बाद तो कोई गुत्थी सुलझानेको रहती नहीं और जीवित आदमी-के लिए तो सारा जीवन ही एक गुत्थी है। शुद्ध प्रेममें मेरी श्रद्धा नहीं है। जिसे प्रेमके नामसे पहचाना जाता है वह प्रेम तो सिर्फ विषय-भोग-का होता है। अगर शुद्ध प्रेम जैसी कोई चीज होती तो अपनी पत्नीकी अपेक्षा अपने मां-बापसे मेरा आकर्षण ज्यादा होना चाहिए था। लेकिन हालत तो इससे बिलकुल उल्टी थी, मां-बापकी अपेक्षा पत्नीमें मेरा आक-र्षण ज्यादा था। यह सच है कि मैं अपनी पत्नीके प्रति वफादार था। लेकिन उसे मैं यह गारन्टी नहीं दिला सकता था कि उसके मरनेके बाद भी उसकी तरफ मेरा प्रेम बना रहेगा। उसके मरनेके बाद मुझे जो दुःख होगा, वह तो उसके न रहनेसे पैदा होनेवाली मुसीबतोंका दुःख होगा। आप इसे एक तरहकी बेरहमी कह सकते हैं। सो जैसा भी हो, लेकिन सच्ची हालत यही है। अब मेहरबानी करके मुझे लिखिये और रास्ता बताइये।"

पत्रके इस हिस्सेमें तीन बातें आती हैं। एक, विषय-वासना और देश-प्रेमके बीच खड़ा होनेवाला विरोध, दूसरी, ईश्वरमें और मरनेके बाद भविष्यमें श्रद्धा, और तीसरी शुद्ध प्रेम और विषय-वासनाका द्वन्द्व-युद्ध।

पहली उलझन ठीक ढंगसे रखी गई मालूम होती है। उसका सार यह है कि विषय-भोगकी इच्छा सच्ची बात है और देश-प्रेम बहते प्रवाहमें खिंच जानेके समान है। यहां देश-प्रेमका अर्थ होगा सत्ता पानेके प्रपंचमें पड़ना, ताकि उसके साथ विषय-वासना पूरी करनेका मेल बैठ सके। इस तरहके बहुतसे उदाहरण मिल सकते हैं। देश-प्रेमका मेरा अर्थ यह है कि प्रजाके गरीब लोगोंके लिए भी हमारे दिलमें प्रेमकी आग जलती हो। यह आग विषय-वासना जैसी चीजको हमेशा जला डालती है।

इसलिए मैं देश-प्रेम और विषय-वासनाके बीच कोई झगड़ा देखता ही नहीं। उलटे, यह प्रेम हमेशा विषय-वासनाको जीत लेता है। ऐसे विश्व-प्रेमको, जो वृत्ति तोड़ सके, उसे पोसनेका समय भी कहां बच सकता है ? इसके खिलाफ जिस आदमीको विषय-वासनाने अपने वशमें कर लिया है, उसका तो नाश ही होता है।

ईश्वरके बारेमें और मरनेके बाद भविष्यके बारेमें अश्रद्धा भी ऊपर-की वासनामें ही पैदा होती है, क्योंकि यह वासना औरत और मर्दको जड़से हिला देती है। अनिश्चय उन्हें खा जाता है। विषय-वासनाके नाश हो जानेपर ही ईश्वर पर रहनेवाली श्रद्धा जीती है। दोनो चीजें साथ-साथ नहीं रह सकतीं।

तीसरी उलझनमें पहलीको ही दुहराया गया मालूम होता है। पति और पत्नीके बीच शुद्ध प्रेम हो तो वह दूसरे सब प्रेमोंकी अपेक्षा आदमीको ईश्वरके ज्यादा पास ले जाता है। लेकिन जब पति-पत्नीके बीचके प्रेममें विषय-वासना मिल जाती है, तब वह मनुष्यको अपने भगवानसे दूर ले जाती है। इसमेंसे एक सवाल पैदा होता है, अगर औरत और मर्द का भेद पैदा न हो, विषय-भोगकी इच्छा मर जाय तो शादीकी जरूरत ही क्या रह जाय !

अपने पत्रमें विद्यार्थीने ठीक ही स्वीकार किया है कि अपनी पत्नीकी तरफ उसका स्वार्थ-भरा प्रेम था। अगर वह प्रेम निःस्वार्थ होता तो अपनी जीवन-संगिनीके मरनेके बाद विद्यार्थीका जीवन ज्यादा ऊंचा उठता, क्योंकि साथीके मरनेके बाद उसकी यादमें से पिछड़े हुए लोगोंकी सेवामें उस भाईकी लगन ज्यादा बड़ी होती।

नई दिल्ली,
१२-१०-४७

: २६ :

शंकाओं के जवाब

[१९३२-३३ के बीच श्री मणिबहन, लेडी ठाकरसी और मीराबहनके साथ यरवदा जेलमें बापूसे मुलाकात करनेका मुझे सौभाग्य मिला था। मैं जब साबरमती वापस आ गया, तब बापूजीने नीचे लिखा बगैर तारीखका पत्र मेरे नाम भेजा। —पी० जी० मेथ्यु]

"प्रिय मेथ्यु,

"मुझे आपके तीन पत्र मिले। बुद्धिकी अपनी जगह तो है ही, लेकिन उसे हृदयकी जगह पर नहीं बैठना चाहिए। आप अपने जीवनके या किसी भी पहचानके बुद्धिशाली आदमीके जीवनके किन्हीं चौबीस घण्टोंको जांचकर देखेंगे, तो आपको मालम होगा कि इस समयमें किये हुए करीब-करीब सभी काम भावनासे किये हुए होंगे, बुद्धिसे नहीं। इससे यह नसीहत मिलती है कि बुद्धिका एक बार विकास हो जानेके बाद वह अपने स्वभावके अनुसार अपने-आप ही काम करती है, और अगर हृदय शुद्ध हो, तो जो कुछ भी वहमभरा या अनीतिमय हो उसे वह छोड़ देती है। बुद्धि एक चौकीदार है और अगर वह अपने दरवाजे पर सदा जाग्रत और अटल हालतमें रहे, तो कहा जा सकता है कि वह अपनी जगह पर है। और मेरा दावा है कि वह आश्रममें यह काम बजाती ही है। जीवन यानी कर्तव्य यानी कर्म, जब बुद्धिसे तर्कसे कर्मोंको खतम कर दिया जाता है, तब वह दूसरेकी जगह लेनेवाली बन जाती है और ऐसी बुद्धिको हटाना जरूरी है।

"अब आपका दूसरा पत्र लेता हूं। मैं यह नहीं कहता कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी का धन्धा अख्तियार करना चाहिए। मेरा कहना तो यह है कि जिस तरह हमारे शरीरका रंग और बहुतसी दूसरी बातें हमें विरासतमें मिलती

हैं, उसी तरह धन्धा भी मिलता है। जो कुदरतमें हो रहा है, मैंने वही बात कही है। अपनी खुदकी राय मैंने नहीं बताई है। पीढ़ी-दर-पीढ़ीसे चले आनेवाले स्वभावके कारण शक्तिका संग्रह होता है, और नीतिमान मनुष्यके लिए वह जरूरी है। लेकिन इस नियमका मतलब इतना ही है कि हम अपने नजदीकके तथा दूरके पूर्वजोंसे विरासतमें मिली हुई भौतिक और मानसिक वृत्तियोंके साथ जन्म लेते हैं। लेकिन ये वृत्तियां बदली जा सकती हैं। और जब वे नुकसानदेह हों या जब उनमें अपने स्वार्थके लिए नहीं, बल्कि दूसरोंकी सेवाके लिए परिवर्तन करनेकी जरूरत पैदा हो, तब उन्हें बदलना ही चाहिए।

"स्त्री और पुरुष दोनोंको चाहे जब भोगसे दूर रहनेका हक है। संभोग पूरी तरहसे दोनोंकी इच्छाका काम होना चाहिए। इसलिए जब दोनोंमेंसे कोई एक जिन्दगी भरके लिए भोग छोड़ देनेका निश्चय करे, और यदि पति या पत्नी अपनी विषय-वासनाको काबूमें न रख सके तो उसे दूसरा साथी खोज लेनेकी स्वतंत्रता है। लेकिन यह तो तभी हो सकता है, जब विवाह-बन्धनमें बंधे हुए पति-पत्नीमें सच्चा प्रेम न हो यानी दूसरे शब्दोंमें, विवाहके सच्चे अर्थमें उनका विवाह ही न हो। विवाह-सम्बन्ध तो स्त्री-पुरुषके बीच जीवन भरकी मित्रता है। इससे उसमें उन्हे शरीर-सम्बन्ध रखनेकी स्वतंत्रता भले ही हो, लेकिन फिर भी उसमें पशु वृत्तिको रोकनेकी ओर उनकी प्रवृत्ति बढ़ती ही रहती है। जब इस तरह की मित्रता हो, तब राजी-खुशीसे शारीरिक तृप्ति न मिले, तो भी उससे लग्न-बन्धन नहीं टूटता। इसमें ऊंच-नीचका सवाल ही नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि जो एकके लिए ठीक है, वह सबके लिए ठीक होगा ही। लेकिन मैं इतना तो जानता हूं कि ईश्वरके भक्तके पास पशु वासनाओंको तृप्त करनेका समय ही नहीं रहता और इसलिए इस संबंधमें उसका सारा रस मिट जाता है। यदि ब्रह्मचर्यका यही अर्थ करें, तो वह इससे ज्यादा ऊंची स्थिति है।

"विवाह होने देने या उन्हें रोकनेका सवाल मेरे या और किसीके भी हाथमें नहीं है। मैं तो बस इतना ही कह सकता हूं कि पसन्दगीके क्षेत्रको

सीमित रखनेमें ही समझदारी है। इसमें अपवाद इतना ही है कि दूसरी किसी तरहकी मित्रता के समान इसमें भी मर्यादा नहीं है। लेकिन इसमें जीवन भरमें सिर्फ एक ही मित्र हो सकता है। इसलिए यदि विवाहके क्षेत्रको मर्यादित कर दिया जाय, और वह जाने हुए क्षेत्रमें होनेपर भी बहुत ही परिचित सम्बन्धमें न किया जाय, तो यह शोध ज्यादा आसान होती है और उसमें जोखम भी कम रहता है।

"साधारण तौरसे जन धर्ममें भी आत्मघातको पाप माना जाता है। परन्तु जब मनुष्यको आत्मघात और अधोगतिके बीच चुनाव करनेका प्रसंग आवे, तब यही कहा जा सकता है कि उस हालतमें उसके लिए आत्मघात ही कर्तव्य रूप है। एक उदाहरण लीजिये। किसी पुरुषमें विकार इतना बढ़ जाय कि वह किसी स्त्रीकी आबरू लेनेपर उतारू हो जाय और अपने-आपको रोकनेमें असमर्थ हो, लेकिन यदि उस वक्त उसमें थोड़ी भी बुद्धि जाग्रत हो और वह अपनी स्थूल देहका अन्त कर दे, तो वह अपने-आपको इस नरकसे बचा सकता है।

"आश्रममें उपवासका कुछ दुरुपयोग जरूर हुआ है, लेकिन उसकी छूत अधिक फैलना सम्भव नहीं। क्योंकि उसका दुरुपयोग करना आसान नहीं है। भूख बड़ी बलवान होती है।

"यह कभी नहीं हो सकता कि किसी व्यक्तिमें अहिंसाका जरूरतसे ज्यादा विकास हुआ हो। लेकिन सामान्य जैनोंने अनशनकी तरह ही अहिंसाकी भी विडम्बना कर रखी है। साधारण जैन तो अहिंसाका छिलका ही लेता है और अन्दरका गूदा छोड़ देता है। अहिंसा यानी सब जीवोंके लिए अनन्त प्रेम। और इसलिए उसमें दूसरेको बचानेके लिए अपने जीवनकी कुरबानी करनेकी सदा तैयारी रहनी चाहिए।

"मुझे आशा है कि इससे आपको शान्ति मिलेगी। लेकिन जबतक सेवाके किसी स्थायी काममें आपको पूरा-सन्तोष न मिले, तबतक सच्ची शान्ति मिलना सम्भव नहीं।"

'हरिजन सेवक',

१२-१२-४८

: २७ :

ब्रह्मचर्य द्वारा मातृ-भावनाका साक्षात्कार

[ब्रह्मचर्य पालनेकी इच्छा रखनेवाली एक लड़कीको हिन्दीमें लिखे पत्रका अंश ।]

ब्र चर्य पालनेमें सबसे बड़ी चीज मातृ-भावनाका साक्षात्कार करना है । हम सब एक पिताके लड़के-लड़कियां हैं । उनमें विवाह कैसे ! खाना केवल औषधि रूप, स्वाद के लिए नहीं । मनको और शरीरको सेवाकार्यमें रोके रखना । सत्यनारायणका मनन करना । बाल कटानेका धर्म स्पष्ट हो जाय, तो लोकलज्जा छोड़कर कटवाना । ईश्वर-भक्तिके लिए नित्य मनुष्य सेवामें लीन रहना । मनोविकार हमारे सच्चे शत्रु हैं, यह समझकर उनसे नित्य युद्ध करना। इसी युद्धका महाभारतमें वर्णन है।